कोमल वा कठोर न होकर कठोर और कोमल दोनों भावको ही अवलम्बन करो। जैसे वेगगामी जलके जरिये सब तरहसे परिपूरित तट सदा विदारण करनेसे उसमें बाधा होती है, वैसे ही राजाके प्रमत्त होनेपर उसके राज्यमें बाधा हुआ करती है। हे पुरन्दर! राजा साम, दान, दण्ड और भेद इन सब उपायोंको एक ही समय शत्रुके ऊपर प्रयोग न करे; परन्तु मेधावी राजा समस्त उपाय प्रयोग करनेमें समर्थ होनेपर भी उसे न करके बुद्धिमानोंके बीच जो पुरुष निपुण हों उनके ऊपर ही इन उपायोंमेंसे एक एकको बांटकर प्रयोग करे। जब हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त अनेक पदाति और यन्त्रोंसे परिपूरित षड़ाङ्गिनी सेना अनुरक्त होवे, और जिस समय राजा शत्रुसे अपने बलको अनेक भांतिसे वृद्धि समझे, उस समय विचार न करके प्रकाश्य भावसे शत्रुओंके वध करनेमें प्रवृत्त होवे। शत्रुके ऊपर साम उपाय प्रयोग करना उत्तम नहीं है, इससे राजा उसे न करके शत्रुके विषयमें रहस्य दण्डका विधान करे; परन्तु कोमल दण्ड, युद्धके वास्ते यात्रा, शस्यनाश, विष आदिसे जल दूषित करना और बार बार प्रकृति विचार न करे। किन्तु उनके ऊपर अनेक तरहकी माया, उन्हें परस्पर उत्तापर आदि और जिससे अपनेको अपयश न हो, वैसो कपट उपाय करे; अनन्तर उन लोगोंको निज पुर वा राष्ट्रमें प्रविष्ट होनेपर आप्त पुरुषोंको उनके निकट रखे। हे बल-वृत्रसूदन! राजा लोग शत्रुओंके अनुगामी होकर उन लोगोंके पुर और राज्यमें स्थित सब भोग्य वस्तुओंको जय करके निजपुरीमें विधिपूर्व्वक नीति स्थापित करें। हे राजन्! राजा लोग हम लोगोंको गूढ़ धन प्रदान करके निज भोग्य वस्तुओंमें सङ्कोच करते हुए मेरे सब सेवक दुष्ट हैं, ये लोग मुझे त्यागके दूसरे राजाके शरणागत हुए हैं,— लोगोंके समीप उन लोगोंके इसी प्रकार दोष वर्णन करके उन्हें पराये देश वा पर राज्यमें नियोजित करें। और दूसरे शास्त्रवित्, उत्तम रीतिसे सज्जित, शास्त्र विधानके जाननेवाले सुशोभित तथा भाष्य कथा विशारद सेवकोंके जरिये शत्रुपुरीके बीच मृत्युके अधिष्ठाती देवताको स्थापित करें।

इन्द्र बोले, हे द्विजसत्तम! दुष्टका क्या चिन्ह है? दुष्टको किस प्रकार मालूम करे? इसे मैं पूंछता हूं, आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

बृहस्पति बोले, जो पुरुष परोक्षमें लोगोंके दोष प्रकाशित करे, सदगुणोंसे युक्त मनुष्योंको निन्दा करे और दूसरे किसीके गुणके वर्णन करनेपर पराङ्मुख होकर मौनभावसे स्थित होवे; उसे दुष्ट समझना चाहिये। यद्यपि दुष्ट पुरुषोंके मौनभावसे स्थित होनेपर उसकी दुष्टताका कारण नहीं मालूम होसकता, परन्तु उस समय वह पुरुष लम्बी सास छोड़ता, ओठ काटता शिर कंपाता, और अत्यन्त संसर्ग करता असन्तुष्ट होकर वार्त्तालाप करता, परोक्षमें स्वीकृत कार्य्योंको पूरा नहीं करता और अपरोक्ष होनेपर उस विषयका उल्लेख नहीं करता, स्वयं पृथक् आके भोजन आदि करता है और आज भोजनादि विधिपूर्व्वक नहीं हुआ कहके परोक्षमें उसकी निन्दा किया करता है, इससे असन, शयन और सवारी आदिसे दुष्टोंके अभिप्रायको मालूम करना चाहिये। हे राजन्! जो पुरुष आर्त्त लोगोंके समीप आरत होता और प्रिय पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होता है, उसे ही मित्र जानना चाहिये; इसके विपरीत होनेपर शत्रुका लक्षण मलूम करे। हे त्रिदशनाथ! मैंने तुमसे इन सब लक्षणोंको जिस प्रकार कहा है, उसे विशेष करके मालूम करो; दुष्टोंका स्वभाव अत्यन्त बलवत्तर होता है। हे सुरसत्तम! मेरे कहे हुए इस दुष्टविज्ञानको सुनके शास्त्रके अनुसार इसके यथार्थ तत्वको मालूम करो।

भीष्म बोले, इन्द्रने बृहस्पतिका ऐसा वचन

सुननेके उसके अनुसार शत्रुओंके अनुसन्धानमें रत होके विजयके निमित्त वैसा ही आचरण करके शत्रुओंको वशमें किया था।

१०२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धर्म्मात्मा राजा सेवकोंसे प्रबाधित, कोष और दण्डसे च्युत तथा अर्थलोभमें असमर्थ होकर सुखका अभिलाषी होनेपर कैसा आचरण करे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें क्षेमदर्शी राजाके जिस इतिहासको वर्णन किया करते हैं, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनो। मैंने सुना है, पहिले राजपुत्र क्षेमदर्शी शत्रुके जरिये बलहीन होके तथा घोर आपदमें पडके कालक वृक्षीय मुनिके निकट आके उनसे पूछा था—राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनिसे बोले, हे ब्रह्मन! मेरे समान अर्थभागी पुरुष अर्थ प्राप्तिके वास्ते बार बार यत्नवान होकर राज्य लाभ न कर सकनेपर कैसा आचरण करें? हे मुनिसत्तम! मेरे समान पुरुषोंका मरना, स्तैन्यपर आश्रय और क्षुद्र आचारके अतिरिक्त जो कर्त्तव्य है, उसे कहिये। आपके समान धर्म्मजाननेवाले कृतज्ञ पुरुष ही शारीरिक और मानसिक व्याधिसे युक्त मनुष्योंके आश्रय हुआ करते हैं। पुरुष विषय भोगसे विरक्त होकर शक्ति और प्रीति परित्याग करके बुद्धिमय वस्तु लाभ करनेसे सुख भोगनेमें समर्थ होता है। जो लोग सुखको धनके आधीन समझते हैं, उनके वास्ते मैं शोक करता हूं; क्योंकि स्वप्नके धनकी भांति मेरा बहुतसा अर्थ नष्ट हुआ है। अहो! हम अब इस अविद्यमान धनकी आशा परित्याग नहीं कर सकते, तब जो लोग उपस्थित बहुतसे धनका परित्याग करते हैं, वे लोग कितने कठिन कार्यको करते हैं; हे ब्रह्मन! मैं श्रीभ्रष्ट होकर अत्यन्त ही आर्त्त, दीन और ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूं; इस समय जिसमें सुख-लाभ हो, मुझे वही उपदेश करिये।

महातेजस्वी कालकवृक्षीय मुनि बुद्धिमान कौशल्य क्षेमदर्शीका ऐसा वचन सुनकर बोले, हे राजन्! यद्यपि आप "मैं और मेरा जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, ये सब अनित्य हैं," इस प्रकार जानते हैं, तो पहिले ही आपको ऐसा समझना उचित था। आप जो समझते हैं, कि सब वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी नहीं हैं, ऐसाही समझिये; क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझनेसे अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी दुःखित नहीं होते। जो होगया और जो होगा, वह सब फिर न होवेगा, इसी भांति आप जानने योग्य विषयोंको जानकर अधर्म्मसे मुक्त होंगे। पहिले पूर्व्व राजाओंको जो कुछ धन थे और उसके अनन्तर जो कुछ थे, तुम्हारा वह सब, कुछ भी नहीं है; इससे उन सब विषयोंसे ममता-रहित होके शान्त होइये, कौन पुरुष इसे जानके दुःखित होगा? जो हुआ है, वह फिर नहीं होता; जो नहीं हुआ है, वही हुआ करता है, शोकसे आरत पुरुषोंमें धन उपार्ज्जनकी सामर्थ नहीं रहती; इससे आप किसी प्रकारका शोक न कीजिये, महाराज! देखिये, तुम्हारे पिता और पितामह आज कहां हैं; आज आप उन लोगोंको नहीं देख सकते हैं और वे लोग भी आपको नहीं देखते हैं। आप अपने देहको अनित्यता देखकर उन लोगोंके वास्ते क्यों शोक करते हैं? बुद्धिसे यह विचारिये, कि कोई विषय भी नित्य न होगा। हे राजन्! मैं, आप और आपके सुहृद लोग, निश्चय ही हम कोई न रहेंगे, सब कोई मृत्युग्रासमें पड़ेंगे और सभी वस्तु नष्ट होंगी। जो सब मनुष्य बीस वा तीस वर्षके जीवित हैं, एक सौ वर्षके बीच उन सबको ही मरना होगा। यद्यपि पुरुष महत् वृत्तसे निवृत्त नहीं

होता, तो ऐसा होनेपर मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है, यह समझके अपना दुःखशमन करें। जो लोग अनागत और अतीत वस्तुओंको "मेरी नहीं है" ऐसा समझते और भाग्यको ही बलवान जानते हैं; पण्डित लोग उन्हें ही ममतारहित और साधुओंके समान मानते हैं। आपके समान आर्थ्य वा बुद्धि पौरुष युक्त बहुतेरे मनुष्य जीवित रहते और राज्य भी शासन किया करते हैं। परन्तु आपकी तरह वे लोग शोक नहीं करते; इससे आप भी शोक न कीजिये। आप क्या उन बुद्धि और पौरुष युक्त पुरुषोंसे श्रेष्ठ वा उनके समान नहीं है?

राजाने कहा, हे द्विज! यदृच्छानुसार जो सब वस्तु प्राप्त होती हैं, उसे ही मैं राज्य बोध किया करता हूं और वह सभी महाकालके जरिये नष्ट हुआ करती है। हे तपोधन! इससे मैं यथा प्राप्त धनसे जीविका निर्व्वाह करते हुए स्रोतकी भांति महाकालके जरिये ह्रियमाण उस राज्यका यह फल देखता हूं, कि यदृच्छा प्राप्त राज्य आदिके नाश होनेपर जीवन नष्ट न होकर केवल शोक बढ़ता रहता है।

मुनि बोले, हे कौशल्य! जैसे मनुष्य अनागत और अतीत वस्तुके यथार्थ रूपको निश्चय करके सब विषयोंमें शोक नहीं करते, आप भी उस ही भांति होइये। हे राजन्! आप प्राप्त अर्थकी इच्छा करिये अप्राप्त अर्थकी कभी अभिलाषा न करिये और वर्त्तमान समयके विषयोंका अनुभव कीजिये तथा अनागत विषयके वास्ते शोक न करिये। हे कौशल्य! आप लब्ध धनसे ही सन्तुष्ट रहिये, श्री हीन होने पर शोकसे आर्त्त होकर कभी शुद्ध स्वभावसे विचलित न होइये। पुरुष पूर्व्वक कर्म्मके अनुसार भाग्यहीन बुद्धि होकर सदा विधाताकी निन्दा करते हैं, और यथा लब्ध धनसे सन्तुष्ट नहीं होते। और इस ही कारणसे दूसरे स्नेह आदि श्रीमान् पुरुषोंका सम्मान करके बारम्बार ऐसा ही दुःख अनुभव किया करते हैं। हे राजन्! इससे जैसे बलके अभिमानी मनुष्य ईर्षा और अभिमानके वशमें होकर दूसरेकी बुराई करनेमें प्रवृत्त होते हैं, आप मत्सरयुक्त होकर वैसा न करिये। यद्यपि आपमें वह श्री विद्यमान न रहे, तोभी आप दूसरेकी श्री सह्य कीजिये; कभी द्वेष न करिये, क्योंकि जो मनुष्य मत्सरी होकर लोगोंकी श्रीसे द्वेष करते हैं, लक्ष्मी उनके निकटसे भाग जाती है; और जो मनुष्य मत्सरता रहित होते हैं, वे शत्रुके निकट रहनेवाली लक्ष्मीको भी सदा भोग किया करते हैं। योग धर्म्म जाननेवाले और धर्म्मचारी मनुष्य श्री, पुत्र, और पौत्रोंको स्वयं परित्याग किया करते हैं। दूसरे साधारण पुरुष विधित्सा अर्थात् सब कार्य्योंके अनुपरम और धन, इन दोनोंके अस्थिर अर्थ तथा परम दुर्लभ समझके परित्याग करते हैं। परन्तु आप बुद्धिमान होके भी अकाम्य, पराधीन अस्थिर अर्थकी कामना करते हुए केवल कृपणकी तरह व्यर्थ शोकित होरहे हैं। इससे आप उस बुद्धिको जाननेके अभिलाषी होकर यह सब अर्थ परित्याग कीजिये; क्योंकि सब अनर्थ, रूपी होकर अर्थ रूपसे मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! कितने ही लोगोंका अर्थके ही वास्ते धननाश होता है, कोई उसे अत्यन्त सुखदायक समझके सब भांतिसे श्रीलाभ करनेकी अभिलाष किया करते हैं। जो पुरुष श्रीमें रममाण होकर दूसरा कुछ भी श्रेष्ठ नहीं समझता उस चेष्टमान पुरुषके सब कार्य्य ही नष्ट हो जाते हैं। हे कौशल्य! यदि किसी पुरुषके अभिप्रेय कृच्छ्रलब्ध धन नष्ट होवे, तो वह पुरुष आशा भङ्ग होनेपर उससे निवृत्त हुआ करता है। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य पारलौकिक सुख की इच्छा करते हुए लौकिक कार्य्योंसे विरत होकर केवल धर्म्म कार्य्य किया करते हैं।

धन लोभसे युक्त पुरुष धनके वास्ते जीवन परित्याग करते हैं। ऐसा क्या वे लोग धनके अतिरिक्त जीवनको भी कार्य्यकारी नहीं समझते। वरन उनकी ऐसी कृपणता और निर्बुद्धिता देखिये कि जो लोग मोहके वशमें होकर अनित्य जीवनमें अर्थ दृष्टि अवलम्बन किया करते हैं; उनके बीच कोई विनाशके अनन्तर सञ्चय मरणके अनन्तर जीवन और वियोगके बाद संयोग, इन सबमें चित्त नहीं लगाते। हे राजन्! कभी पुरुष धनको और कभी धन पुरुषको अवश्य परित्याग करता है; इससे जो लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं, वे उस विषयमें कभी शोकित नहीं होते; क्यों कि इसी तरह दूसरेके भी मित्र और धन नष्ट हुआ करते हैं। हे राजन! आप विचार करके देखिये, कि मनुष्य लोग अपनी और दूसरेकी बुद्धिसे आपदमें पतित होते हैं; इससे आप उसे विशेष रूपसे देखकर इन्द्रियनिरोध, मन और वचनको संयम कीजिये; क्यों कि अप्रिलकारी इन्द्रिय, मन और वाक्य इन सबके दुर्ब्बल और सन्निकृष्ट विषयोंमें आसक्त होनेपर कोई भी उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं होता; पर विषय सन्निकृष्ट होनपर ये सब स्वयं निवारित हुआ करते हैं। आपके समान ज्ञानसे तृप्त पराक्रमी पुरुष इन्द्रियोंको दमन किया करते हैं, इससे वे लोग इस विषयमें शोक नहीं करते। इसके अतिरिक्त आपके समान मृदु, धार्म्मिक सुनिश्चित और ब्रह्मचर्य्य युक्त मनुष्य अल्प विषयको अभिलाषासे चञ्चल नहीं होते और उसके वास्ते शोक भी नहीं करते; तथा वे लोग आचार पूर्व्वक कापालीवृत्ति, नृशंसता पापी, दुष्ट और कादरोंके योग्य वृत्तिको अवलम्बन करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन्! इससे आप मन और वचनको संयम करके सब प्राणियोंमें दया प्रकाशित करते तथा महावनमें फल मूलसे जीविका निर्व्वाह करते हुए अकेले ही विहार कीजिये। जैसे ईर्षा समान दांत युक्त हाथी महावनमें अकेले ही विहार करता है, वैसे ही विद्वान पुरुष वनके बीच अरण्यवृत्ति अवलम्बन करके अकेले ही विहार करें। जैसे महाताल पूर्णरीतिसे क्षुभित होकर स्वयं ही प्रसन्न होता है; मैं ऐसी अवस्थायुक्त पुरुषोंको इसी भांति जीवित रहना ही सुख समझता हूं। महाराज! मन्त्री आदिकोंसे रहित मनुष्योंको श्रीअसम्भव है और केवल दैवके ऊपर निर्भर करनेसे आप कौनसा कल्याण समझते हैं?

१०४ अध्याय समाप्त।

---

अनन्तर मुनि बोले, हे राजन! यदि आपको निज शरीरमें कुछ पौरुष है, ऐसा समझते हैं, तो जिसमें आपको फिर राज्य प्राप्त होवे, मैं वैसी नीति कहता हूं; आप यदि उस नीतिका अनुष्ठान करने और कार्य्य करनेमें अपनेको समर्थ समझें; तो मैं आपसे जो सब यथार्थ वचन कहूंगा, उसे चित्त लगाके सुनिये। हे राजन्! मैं जो कहूंगा, आप यदि वैसा ही आचरण करें, तो आप निश्चय ही उस महान् सब अर्थ, राज्य, राज्यके मन्त्र और महती श्रीको फिर प्राप्त करेंगे, इससे मैं आपसे फिर कहता हूं, कि यह आपको रुचता है, वा नहीं वह मुझसे कहिये। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं पौरुषसे युक्त हुआ हूं, आप मुझसे जिस नीतिको कहना चाहते हैं उसे कहिये, आपके साथ मेरा यह समागम सफल होवे।

मुनि बोले, आप दम्भ, काम, क्रोध, हर्ष और भय त्यागके प्रणत भावसे हाथ जोड़के शत्रुओंकी सेवा कीजिये। आप उस सत्यसन्ध विदेहराजको शुद्ध और उत्तम कर्म्मोंसे आराधना कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे आपको वेतन दान करेंगे। इसी भांति क्रमसे सबके विश्वासपात्र होनेपर आप विदेहराजके बाहुस्वरूप

होंगे, अनन्तर उत्साहयुक्त, व्यसनरहित, शुद्ध स्वभाववाले सहायकोंको प्राप्त कर सकेंगे। नीतिशास्त्रके अनुसार चलनेवाले स्थिर चित्त जितेन्द्रिय विदेहराजकी प्रजाको प्रसन्न करके आप स्वयं अपना उद्धार कीजिये। श्रीमान् धैर्य्यशाली उस विदेहराजसे आप सत्कृत होनेपर सबके विश्वासपात्र होकर अत्यन्त ही आदरणीय होंगे। तिसके अनन्तर आप सुहृद्दल लाभ कर उत्तम मन्त्रियोंके साथ विचार करके बेतसे बेल तोड़नेकी भांति शत्रुपक्षीय आन्तरिक पुरुषोंके जरिये शत्रुओंमें भेद अथवा शत्रुओंके साथ सन्धि करके विदेह राजके सब बलको नष्ट कीजिये। शुद्धभाव युक्त मनुष्य, स्त्री, ओढ़नेके वस्त्र, शय्या, आसन, महामूल्यवान सवारी, गृह; पशु, पक्षी, गन्ध, रस और फल आदि जो सब वस्तु अलभ्य हैं, आप उन सबको इस प्रकार सज्जित कराइये, कि जिससे सब शत्रु स्वयं ही नष्ट होवें। हे राजन्! आप सुनीतिके अभिलाषी हैं, शत्रु लोग यदि आपके जरिये इन सब विषयोंमें प्रतिषिद्ध होकर उसे उपेक्षा करें, तो आप कदापि उन लोगोंको निवृत्त न कीजिये। हे राजेन्द्र! आप बुद्धिमान पुरुषोंमें सम्मत होकर शत्रुओंके विषयमें विहार करिये और सदा सावधानी तथा भय-चकित आदि श्वेतकारी उपायसे मित्र धर्म्मका आचरण कीजिये। आप ऐसे ही उपायके अनुसार विदेहराजको दुस्तर महान् आरम्भ सब प्रयोजित करिये और बलवान सेनाके जरिये नदीकी भांति सब विरोध विशेष रूपसे रुद्ध करिये। और विदेहराजके बगीचे, महामूल्य शय्या, आसन तथा कोष इन सबको सुखसे भोग करके उनका कोष खाली करिये। आप ब्राह्मणोंको विदेहराजके उद्देश्यसे यज्ञ और दान आदि कार्य्योंमें नियुक्त करके पीछे अपना मङ्गलार्थ कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे लोग भेड़ियेकी तरह उन्हें भक्षण करते हुए आपका मङ्गल करेंगे। पुण्यशील पुरुष निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसा ही क्यों, वे लोग स्वर्गमें भी पुण्यस्थान लाभ किया करते हैं। हे कौशल्य! धर्म्म और अधर्म्मके जरिये शत्रुओंके कोषको नष्ट कर सके, तो वे लोग धर्म्म और अधर्म्म युक्त पुरुषके वशमें हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रु लोग स्वर्ग और जयके जरिये ही आनन्द अनुभव किया करते हैं; इससे आप उनके स्वर्ग और जयके मूल कोषको विशेष करके नष्ट करें परन्तु मनुष्य-कर्म्म और दैव कर्म्म जय आदि उनके समीप वर्णन करना। दैव परायण मनुष्य शीघ्र नष्ट होता है, यह निश्चय ही है; इससे आप उनसे सर्व्वस्व दान स्वरूप विश्वजित् यज्ञ कराके उन्हें राज्यसे विरत कीजिये, उससे वह सिद्धार्थ होकर गमन करेंगे। इससे आप उस विदेहराजको याग धर्म्म जाननेवाले महाजनोंके पीड़ाका सब वृत्तान्त कहिये, और कुछ पुण्य उपदेश करिये। वह महाजनोंके किसी प्रकारकी पीड़ाका वृत्तान्त सुननेसे ही राज्य त्याग करेंगे तब आप सब शत्रुओंके नाश करनेवाले सिद्ध औषध प्रयोग करके उनके हाथी, घोड़े और मनुष्योंका नाश करियेगा। हे राजन्! इसी प्रकार तथा दूसरे अनेक तरहके दम्भ योग निश्चित हैं, कृतात्मा पुरुष विष प्रयोग करके सबको ही नाश करनेमें समर्थ हुआ करते हैं।

१०५ अध्याय समाप्त।

---

राजाने कहा, हे ब्रह्मन्! मैं कपट और दम्भके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता और अधर्म्म युक्त महत् अर्थको भी अभिलाष नहीं करता। हे भगवन्! कपटता और दम्भ रहनेसे कोई मुझ पर शङ्का करेगा· ऐसा समझ कर और उससे अपनी बुराई होनेकी सम्भावना देखकर मैंने पहिलेसे ही इसे परित्याग किया है। मैं इस लोकमें अनु-

शंस धर्म्मके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा करता हूं ; इससे मैं ऐसा आचरण नहीं कर सकूंगा, और आपसे भी ऐसा होना उपयुक्त नहीं है।

मुनि बोले, हे राजन् ! आपने जैसा कहा है, उससे मैं आपको प्रकृतिस्थ वा बुद्धिस्थ और अनृशंस धर्म्म युक्त बोध करता हूं । मैं आप-दोनोंके मङ्गलके वास्ते यत्न करूंगा और आपके साथ विदेहराजकी जिसमें सदाके वास्ते अक्षय सन्धि होवेगी, वही उपाय करूंगा। महाराज आपके समान सत्कुलमें उत्पन्न बहुश्रुत अनृ-शंस, राज्य प्रणयनमें कुशल पुरुषको पाके कौन राजा अमात्य पद पर नियुक्त न करेगा ? आप क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके राज्यच्युत और अत्यन्त विपदग्रस्त होकर भी जब अनृशंस वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेके अभिलाषी हुए हैं, तब मैं आपको धन्यवाद देता हूं । हे तात ! सत्यसन्ध विदेहराज मेरे गृहपर आवेंगे, मैं उन्हें जिस कार्य्यमें नियुक्त करूंगा, वह उसको ही करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अन न्तर मुनिने विदेहराजको आवाहन करके कहा यह जो क्षेमदर्शी राजकुलमें उत्पन्न हुआ है, मैंने उसके अन्तःकरणको सब भांतिसे परीक्षा करके देखा है, इसका चित्त आरसी और शर दकालके चन्द्रमा समान शुद्ध है ; मैं इसके चित्तमें किसी प्रकारकी कुटिलता नहीं देखता हूं । इससे इसके साथ आपकी सन्धि होवे, आप जैसा मेरा विश्वास करते हैं, वैसे ही इसका भी विश्वास करिये। हे राजन् ! जिस राजाके अमात्य नहीं हैं, वे राज्यको तीन दिन भी अपने शासनमें नहीं रख सकते ; इससे राजा वीरता और बुद्धियुक्त मनुष्यको मन्त्री करे, दोनों पराक्रम और बुद्धिबलसे ही दोनों लोक तथा राजके प्रयोजन सिद्ध हुआ करते हैं । धर्म्मात्मा मनुष्योंको इस प्रकार दूसरी गति कहीं भी नहीं है। यह राजपुत्र क्षेमदर्शी अत्यन्त धार्म्मिक हैं ; विशेष करके इन्होंने साधु-ओंके मार्गको अवलम्बन किया है इस धर्म्मात्मा राजपुत्रको आप संग्रह करके पूर्ण रीतिसे सेवा करनेसे यह आपके शत्रुओंको निग्रह करेगा। यदि ये पिता पितामह पदके वास्ते युद्धकी इच्छा करके आपके साथ क्षत्रियोंके स्वकार्य्य अर्थात् संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे। तो आप भी विजयकी अभिलाषासे इनके सङ्ग युद्ध करि-येगा ; परन्तु ऐसा न करके मेरी इच्छाके अनु-सार हितैषी होकर इन्हें वशमें करिये। आप धर्म्मदर्शी होके अपन समान पुरुषोंसे अनुचित लोभको त्यागकर धर्म्मकी रक्षा करिये ; काम और क्रोधके वशमें होकर निज धर्म्मको त्यागना आपको उचित नहीं है। हे तात। एक पुरु-षको सदा जय और एकको सदा पराजय नहीं होती ; जय-पराजय दोनों ही हुआ करती है ; इससे भोग्य वस्तुओंके जरिये शत्रुके साथ सन्धि करनी उचित है। हे तात ! जय-पराजय दोनों ही आपमें देखी जाती है । निःशेषकारियोंको निःशेष-निबन्धन रूपी भय हुआ करता है। विदेहराज जनक कालक बृक्षीय मुनिका ऐसा वचन सुनकर उन पूजनीय ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिका सम्मान और सत्कार करके बोले, हे ब्रह्मन् ! आप महाबुद्धिमान और महाश्रुत हैं ; इससे आपने हम दोनोंसे मेलकी इच्छा करके जो कुछ कहा वह योग्य है। आपने मुझसे जैसा कहा, मै वैसाही करूंगा, क्यों कि मैं इसे परम कल्याणदायक बोध करता हूं ; इस विषयमें अब मैं कुछ भी विचार न करूंगा। अनन्तर मिथिलापति जनकने कौशल्य क्षेमदर्शीको आवाहन करके कहा, हे राजसत्तम ! मैंने धर्म्म और नीतिसे पृथ्वी जय किया ; परन्तु आपने अपनी अवज्ञा करके निज गुणोंसे मुझे जय किया है ; इससे आप विजयीकी भांति विराज-मान रहिये। यद्यपि मैंने आपको जय किया है, तौभी आपके बुद्धि और पौरुषको अवज्ञा नहीं कर सकता ; इससे आप विजयीकी तरह

विद्यमान रहिये। हे राजन्! इस समय आप यथारीति पूजित होकर मेरे घर चलिये। अनन्तर मिथिलाराज जनक और कौशल्य दोनों ही ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनिकी पूजा करके विश्वासी होकर घर गये। तब विदेहराजने कौशल्यको गृहमें प्रवेश कराके पाद्य, अर्घ और मधुपर्कसे उनकी पूजा करके उन्हें कन्या तथा विविध वस्तु दान की। राजाओंका यही परम धर्म है, जय और पराजयको अनित्य जानना चाहिये।

१०६ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मवृत्त, साधारणके व्यवहार जीवन उपाय और फल, राजाओंके व्यवहार, कोष, कोषस्थापन, जय, सेवकोंके गुण, व्यवहार, प्रजाकी वृद्धि, षाड़्गुण्यके गुण कल्पना, सेनाके व्यवहार, सत् और असत् पुरुषोंके लक्षणका ज्ञान, समान, हीन और अधिक कुच पुरुषोंके यथावत् लक्षण मध्यवित्त और पुरुषोंकी प्रसन्नताके वास्ते वर्द्धित मनुष्यकी जिस भांति रहना होता है, हीन मनुष्योंको ग्रहण और जीविका, उपदेशयुक्त सुगम ग्रन्थोंसे जैसा धर्म वर्णित हुआ है, आपने विजयी पुरुषोंका जैसा व्यवहार कहा है, वह व्यवहार, शूर पुरुषोंकी वृत्ति, शूरलोग पृथक् न होके जिस प्रकार वर्द्धित होवें, वे लोग शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करके किस भांति सुहृद पुरुषोंको प्राप्त करें? हे शत्रुतापन! मैं बोध करता हूं, कि शूर पुरुषोंमें परस्पर भेद ही नाशका कारण है। इससे उन लोगोंमें जिससे भेद न होवे और अनेक पुरुषोंके निकट मन्त्रको छिपाना अत्यन्त कठिन है; वह जिस प्रकार गोपन करना होता है और इन सबके उपाय मैं आपके निकट सुननेकी इच्छा करता हूं। आप यह सब वृत्तान्त विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! राजकुल और गण अर्थात् शूरकुल, ये दोनों ही कुल वैर-सन्दीपक लोभ और क्रोधके वशीभूत हैं। राजा लोभकी इच्छा करे, तो शूर लोग क्रोधकी अभिलाष करते हैं; इससे दोनों कुल क्षय और व्ययसे युक्त होकर परस्परमें एक दूसरेके नाशक हुआ करते हैं। वे लोग दूत, मन्त्र, बल, आदान, साम, दान, भेद, क्षय और भय आदि इन सब उपायोंके जरिये आपसमें परस्परका आकर्षण किया करते हैं। उसमेंसे एक मतके अनुसार चलनेवाले शूरोंमें आदानसे भेद होता है। वे लोग पृथक् होनेसे ही आपसमें चित्तकी अनैक्यताके कारण शत्रुओंके वशमें हुआ करते हैं हे राजन्! जब शूरलोग मत-भेद होनेसे ही नष्ट और शत्रुओंसे पराजित होते हैं; उस समय उन लोगोंको सदा एक मतमें रहनेके वास्ते सब तरहसे यत्न करना उचित है। शूर पुरुषोंके बल और पौरुष एक होनेपर वे लोग अर्थलाभमें समर्थ हो सकते हैं। यहां तक कि उन लोगोंकी वृत्ति एक तरहकी होनेपर अन्य मतावलम्बी शूर पुरुष भी उनके साथ मित्रता करते हैं। जो शूर पुरुष परस्परकी सेवा करते हैं, ज्ञानवृद्ध पण्डित लोग उनकी प्रशंसा किया करते हैं; क्योंकि उन लोगोंकी अभिसन्धि पृथक् न होनेसे ही वे लोग सब भांतिसे सुख भोग कर सकते हैं। जो शूर लोग सब धर्म व्यवहार शास्त्रके अनुसार स्थापित करके उसपर यथावत् दृष्टि रखते हैं, वे समूहके बीच श्रेष्ठ होकर वर्द्धित हुआ करते हैं। शूर पुरुष पुत्र और भाइयोंको सदा युद्धकार्य्यमें विशेष रूपसे शिक्षा देके उन शिक्षित पुत्र और भाइयोंको ग्रहण करनेसे सब गुणोंमें वर्द्धित हुआ करते हैं। हे महाबाहो! जो सब शूर दूत, मन्त्र, उपाय

और कोषके कार्य्योंमें सदा रत रहते हैं, वह सब तरहसे बढ़ते हैं। हे राजन्! जो सब शूर बुद्धिमान, महा उत्साहयुक्त और कार्य्योंमें स्थिर पौरुषवाले, शूरोंको सदा सम्मानित करते हैं, उनकी बढ़ती हुआ करती है। जो सब शूर धनवान, शास्त्रज्ञ और शास्त्रपारग हैं, वे कष्ट-युक्त घोर आपदमें मोहित मनुष्योंका परित्राण किया करते हैं। हे भरतसत्तम! क्रोध, भय, दम्भ, कर्षण, निग्रह और बध, ये सब शूर पुरुषोंको सदा शत्रुओंके वशमें किया करते हैं। हे राजन्! इससे समूहमें मुख्य प्रधान शूरोंका विशेष सम्मान करना उचित है; क्योंकि समस्त लोकयात्रा ही पूर्ण रीतिसे उन शूर पुरुषोंके अधिकारमें हुआ करती है। हे शत्रु कर्षण भारत! मुख्य शूर पुरुष ही दूत और मन्त्रकी रक्षा किया करते हैं इससे वे ही मन्त्रणा सुनने पावें; परन्तु सब शूर पुरुष मन्त्रणा नहीं सुनने पावेंगे। जो समूहके बीच मुख्य हैं, वे सबके साथ मिलके गुप्त भावसे समूहका हित किया करते हैं; परन्तु गणोंके पृथक् भिन्न और विरत होनेपर उसका विपरीत होता है। यहां तक कि निज शक्तिके अनुष्ठानकारी गणोंमें भेद होनेसे सब अर्थ अवसन्न होते और अनर्थ उत्पन्न हुआ करता है। इससे कुलवृद्ध पण्डित लोग मुख्यगणके निकटसे निकृष्ट गणको शीघ्र दूर करें, वे लोग उपेक्षित होनेपर सदा कुलमें झगड़ा करते और गण-भेदके कारण होकर गोत्रनाश किया करते हैं। हे राजन्! इससे भीतरी भयकी यत्नपूर्व्वक रक्षा करके असार बाह्य भयको त्यागना उचित है; क्योंकि आभ्यन्तर भय ही सदा मूलच्छेदन किया करता है। हे राजन्! अकस्मात् क्रोध, मोह और स्वाभाविक लोभके कारण आपसमें एक दूसरेसे बार्त्तालाप न करनेसे उसे ही पराभवका लक्षण मालूम करना चाहिये। सब कोई पराक्रम, बुद्धि, रूप वा धनमें समान होवें, वा न होवें, जाति और कुलमें समान होंगी। शत्रु लोग प्रधान भेद करनेसे ही गण भेद कर सकते हैं; इससे पण्डित लोग गण सम्पत्तिको परम आश्रय कहा करते हैं।

१०७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! यह धर्म्म मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखाओंसे युक्त है; इन सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अत्यन्त अनुष्ठेय कहके आपका सम्मत है? सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अनुष्ठेय और गुरुतर करके आपको अभिमत है? मैं इस लोक और परलोकमें जिस परम धर्म्मका आसरा करूंगा आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता, माता और गुरुजनोंकी पूजा करनी मुझे बहुमत है, मनुष्य इस लोकमें उक्त कर्म्मोंमें नियुक्त रहनेसे ही सब लोकोंको जय करते हुए महत् यशस्वी होते हैं। हे तात युधिष्ठिर! पूजनीय पिता, माता और गुरु जिस कर्म्मको करनेकी आज्ञा दें, वह धर्म्म ही हो, वा धर्म्म विरुद्ध ही होवे, शङ्का रहित चित्तसे उसे करना ही उचित है। उन लोगोंके निवारण करने पर दूसरे धर्म्मका आचरण न करे, वे लोग जो कुछ आज्ञा दें वही धर्म्म है, यह निश्चय जाने। पिता, माता और गुरु ये तीनों त्रिलोक स्वरूप हैं; ये ही तीनों आश्रय, तीनों वेद और तीनों अग्नि स्वरूप हैं; पिता गार्ह-पत्य, माता दक्षिण और गुरु आहवनीय अग्नि है, ये तीनों अग्नि अत्यन्त बहुत् हैं। पिता, माता, और गुरु इन तीनोंके निकट अप्रमत्त रहनेसे तीनों लोक जय करेगा, पितृपूजासे इस लोक, मातृपूजासे परलोक और गुरु पूजासे अवश्य ही ब्रह्मलोक उत्तीर्ण होगा।

हे भारत! तीनों लोकके बीच इन सबका पूर्णरीतिसे सम्मान करना। तुम्हारा मङ्गल

होवे, तुम महत् यश और धर्म फल प्राप्त करोगे। पिता, माता और गुरुके समीप भोग कार्य्य विषयमें अपनी आधिकता दिखाना, अति भोजन और दोष वर्णन न करे; सदा उन लोगोंकी सेवा करे, यही उत्तम सुकृत है। हे नृपसत्तम! ऐसा करनेसे तुम कीर्त्ति, पुण्य, यश और पवित्र लोकोंको प्राप्त करोगे। पिता माता और गुरुका जो लोग सम्मान करते हैं वे सब लोगोंमें आदरणीय होते हैं, और जो इनका अनादर करते हैं उनके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं। हे शत्रुतापन! उनके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है, ये तीनों गुरु जिसके जरिये सदा अपमानित होते इस लोक और परलोकमें उसका यश प्रकाशित नहीं होता तथा परलोकमें उसका कल्याण कीर्त्तित नहीं होता। पिता माता वा गुरुके उद्देशसे मैं जो सब अर्थ संग्रह करके परित्याग करूं, तो मेरे पक्षमें वह सौगुणा वा सहस्रगुणा हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण मेरे वास्ते तीनों लोक प्रकाशित हैं। दस श्रोत्रियोंसे एक साधु आचार्य्य मुख्य है; दश उपाध्यायसे पिता मुख्य है; दश पितासे माता मुख्य है, और क्या कहूं, माता गौरवसे समस्त पृथ्वीको अभिभव किया करती है, इससे माताके समान गुरु नहीं है। मेरे विचारमें पिता और मातासे गुरु ही गौरवयुक्त है; माता पिता दोनों ही जन्मके विषयमें कारण हैं? हे भारत! पिता माता दोनोंसे ही इस शरीरकी उत्पत्ति होती है; और आचार्य्यके उपदेशके अनुसार जो जन्म होता है, वह अजर और अमर है। पिता माता अपकार करनेपर भी सदा अवध्य हैं। अपराध युक्त पिता माताका बध न करनेसे दोषी नहीं होना पड़ता। राजा जैसे वध्य पुरुषोंके बध न करनेसे दूषित होता है, उस भांति अपराधी गुरुका बध न करनेसे दूषित नहीं होता। धर्मके वास्ते यत्नमान अर्थात् दुष्ट माता पिताके प्रतिपालनके निमित्त जो लोग यत्न करते हैं, महर्षि और देवता लोग उन्हें अनुग्रह भाजन समझते हैं। जो सत्य वचनसे वेदके विषयमें अनुग्रह प्रकाशित करते और जो सत्य वचनके जरिये अमृत प्रदान करते हैं उन्हें ही पिता माता समझना चाहिये; तथा उनके कार्य्यको मालूम करके कभी उनके विषयमें अनिष्ट आचरण न करे। जो लोग विद्या पढ़के कृत्यकृत्य होकर गुरुके विषयमें कार्य्यके जरिये मनही मन उनका आदर नहीं करते, उन लोगोंको भ्रूणहत्यासे भी अधिक पाप हुआ करता है, इस लोकमें उनसे बढ़के अधिक पापी दूसरे कोई भी नहीं हैं।

गुरुजन शिष्योंको जैसा मानें, शिष्य लोग भी उनको वैसी ही पूजा करें; इससे जो लोग प्राचीन धर्मकी कामना करते हैं, उनके पक्षमें गुरुजन पूजनीय, यत्नसे संविभाज्य और अर्च्चनीय होते हैं। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं; और जिसके जरिये माताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे पृथ्वी पूजित होती है, तथा जिन कर्म्मोंसे उपाध्यायको प्रसन्न किया जासकता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है, इससे पिता माताकी अपेक्षा गुरु ही पूजनीय है। किसी प्रकारके कार्य्यसे गुरु अवज्ञाभाजन नहीं होसकते; गुरुका जैसा मान्य करना होता है, पिता-माताका वैसा नहीं। पिता, माता और गुरु कभी अवमान भाजन नहीं होसकते; उन लोगोंके कार्य्यमें कोई दोष देखना उचित नहीं है। देवता और महर्षि लोग गुरुओंका जैसा सम्मान करना होता है, उसे जानते हैं। जो लोग कार्य्य वा मनसे पिता माताका अनिष्ट करते हैं, भ्रूणहत्यासे भी उनका पाप अधिक प्रबल है और इस लोकमें उनसे अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है। जो औरससे पुत्र पालन-पोषण करनेपर वर्द्धित होकर पिता माताको

प्रतिपालन नहीं करता, उसका वह पाप भ्रूण हत्यासे भी अधिक है, उससे बढ़के पापी दूसरा कोई नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीघाती और गुरुघाती इन चारोंके निष्कृतिका विषय मैंने नहीं सुना। इस लोकमें पुरुषको जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब विस्तारके सहित कहा गया, यही कल्याणकारी और इससे अधिक श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; सब धर्म्म एकत्रित करके उसमें जो सार स्वरूप था, वही कहा गया।

१०८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मनुष्य धर्म्ममार्गमें निवास करनेकी इच्छा करते हुए किस प्रकार वर्त्तमान रहे। हे विद्वन् भरतश्रेष्ठ! मुझ जिज्ञासुको आप वही उपदेश करिये। हे राजन्! सत्य और मिथ्या ये दोनों ही संसारी लोगोंको आवरण करके विद्यमान हैं; उन्हें त्यागना अत्यन्त कठिन है; इससे धर्म्म-निश्चित मनुष्य उन दोनोंके बीच कैसा आचरण करे? सत्य क्या है, मिथ्या क्या है? और सनातन धर्म्म कौनसा है! किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या कहे?

भीष्म बोले, हे भारत! सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, लोकके बीच जो कठिनाईसे जानने योग्य है, उसे कहता हूं। किसी समय सत्य बोलना उचित नहीं और कभी मिथ्या कहो जाती है। जिसमें मिथ्या सत्य और सत्य भी मिथ्या हुआ करता है, जिसमें सत्य निष्ठायुक्त नहीं है, वैसा बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य बध्य होता है। सत्य और मिथ्याका विशेष रूपसे निश्चय कर सकनेसे मनुष्य धर्म्म जाननेवाला हुआ करता है। जैसे व्याधा हिंसक स्वभाववाला है, वह भी अन्धेका बध करनेसे स्वर्गको गया था, वैसे ही अनार्थ्य, हीनबुद्धि अत्यन्त निठुर पुरुष भी महत् पुण्य लाभ कर सकता है; गङ्गाके किनारे सांपिनके स्थापित किये हुवे अण्डोंको भेद कर उलूकने जिस प्रकार महत् पुण्यलाभ किया था; वैसे ही अधर्म्मी मूढ़ पुरुष धर्म्म करनेवाला होकर जो महत् पुण्य प्राप्त कर सकेगा, उसमें आश्चर्य ही क्या है? जिस विषयमें धर्म्म अत्यन्त दुर्लभ और दुर्ज्ञेय है, यह प्रश्न वैसा ही हुआ है। धर्म्मका लक्षण वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, इससे कौन इसे निश्चय करके कह सकता है? जीवोंकी उन्नतिके वास्ते ऋषियोंने धर्म्मका वर्णन किया है; इससे जो अभ्युदय युक्त है, वही धर्म्म कहके निश्चित है। जो धारण करता है, महर्षि लोग उसे ही धर्म्म कहते हैं; धर्म्मसे प्रजा धृत हुई है, इससे जो धारणायुक्त है, वही धर्म्म है, यह निश्चय है। कोई कोई पुरुष श्रुतिको ही धर्म्म कहते हैं, दूसरे उसे अङ्गीकार नहीं करते! मैं उनकी निन्दा नहीं करता; सबमें ही कुछ विहित नहीं होता। जो अन्यायसे किसीके धनको हरनेकी इच्छा करते हैं; उन्हें धनीका सन्धान देना उचित नहीं है; यही धर्म्मरूपसे निश्चित है। चोर लोग धनी को बात पूंछे, तो यदि न कहनेसे उनके समीपसे छुटकारा मिले तो किसी प्रकार भी उनसे न कहे; बिना कहे यदि उनके हाथसे छुटकारा न हो, तो शपथ पूर्व्वक नहीं जानता हूं, ऐसा भी कहे; ऐसे स्थलमें मिथ्या कहनेसे भी दोष नहीं होता इससे ऐसे स्थानोंमें सत्यसे मिथ्या कहना ही उत्तम है। शपथ करने पर भी यदि पापाचारी मनुष्योंके हाथसे छुटकारा मिले तो, वह भी उत्तम है। किसी प्रकारकी सामर्थ्य रहते पापाचारी मनुष्योंको धन दान न करे, पापाचारियोंको जो धन दिया जाता है, वह दाताको ही पीड़ित करता है। उत्तमर्ण (ऋण देनेवाला) यदि ऋणी पुरुषके शरीरको दासत्वमें नियुक्त

करके दिया हुआ धन वसूल करनेकी अभिलाषा करे, उस समय सत्य कहनेके वास्ते लाये गये साक्षी लोग जो कुछ कहें, और उस विषयमें जो कहना योग्य है, उसे यदि न कहें, तो वे सब ही मिथ्यावादी हैं। प्राणनाश और विवाहके समय मिथ्या वचन कहनेसे भी दोष नहीं होता। दूसरेके धर्मके वास्ते और अर्थ रक्षाके निमित्त झूठ कहनेसे दोष नहीं होता; दूसरेकी सिद्धि कामना करते हुए नीच पुरुष ही धर्म-भिक्षुक होते हैं। दोनों मिलके किसी कार्यको करते हुए लाभालाभको समान हिस्से में बांट लूंगा ऐसा निश्चय होनेपर अन्तमें यदि अर्थ नष्ट होवे, तो भी हिस्सेके अनुसार देना उचित है। कोई पुरुष यदि धर्मबन्धनसे च्युत हो, अथवा अधर्मके वशमें होकर यदि जबर्दस्ती करे, तो उसके ऊपर दण्डविधान करना उचित है; और दासत्व प्राप्त करके यदि कोई कपटता करे, तो कपटतासे ही उसे दण्ड देना चाहिये। जिस पुरुषने आसुर-धर्मका सहारा लिया है, वह सदा ही सब धर्मोंसे च्युत है; शठ मनुष्य निज धर्म त्यागके असुर धर्मके जरिये जीविका निर्वाह करनेकी इच्छा करते हैं। लोकमें जिसने भयको ही सर्वस्व रूपसे निश्चय कर रखा है, वही पापी है जो पापी ऐसा जानता है, कि धन ही उत्तम है, धन कल्याण दायक नहीं है; उसे जिस उपायसे होसके वध करना उचित है। जो लोग धर्म-कर्मके वास्ते क्लेश नहीं सहते और दीन दरिद्रोंके सहित धनको विभाग करके भोग नहीं करते, वेही पापके स्थान हैं; वेही देवता और मनुष्योंसे भ्रष्ट प्रेतके समान हैं। जो लोग यज्ञ और तपस्यासे हीन हैं, उनके साथ सहवास मत करो, क्योंकि उन लोगोंको वित्तनाशके वास्ते जो दुःख होता है, वह प्राण वियोगके समान है पापाचारियोंके वास्ते धर्म रूपसे कोई विषय निश्चित नहीं है; इससे इस धर्ममें तुम्हारी अभिरुचि होवे, यत्नपूर्वक उन्हें यह उपदेश देवे; ऐसा पुरुष हो कोई नहीं है। वैसे पुरुषका जो वध करता है, वह पापग्रस्त नहीं होता; वह निज कर्मसे ही मरे हुए पुरुषका वध किया करता है; जो मारा जाता है, वह निज कर्मके जरिये ही मरता है। इन बुद्धिहीन पापाचारियोंके बीच इन सबको मारूंगा, जो पुरुष ऐसा नियम करता है, वह कौआ और गिद्धकी तरह केवल कपटजीवी हैं; वह देह त्यागनेसे इन्हीं सब योनियोंमें जन्म लेता है। जो मनुष्य जिस विषयमें जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना धर्म है; कपटीको कपट व्यवहारोंसे बाधित करना चाहिये और साधु आचरणवाले मनुष्यके समीप सदाचरण करना उचित है।

१०९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिस समय प्राणी जैसी अवस्थामें रहते हैं, उस ही उस अवस्थामें क्रमसे क्लेशित होनेपर जिस उपायके सहारे दुस्तर विषयोंके पार होसकते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, जो सब स्थिर चित्तवाले द्विजाति पहिले कहे हुए आश्रमोंके यथोक्त धर्माचरण करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो दम्भका आचरण नहीं करते, जिनकी चित्तवृत्ति स्थिर है और जो इन्द्रियोंको निग्रह किया करते हैं; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम करते हैं। निन्दा करनेपर जो प्रत्युत्तर नहीं करते, हिंसित होनेपर भी जो हिंसा नहीं करते; दान करते परन्तु किसीसे मांगते नहीं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो प्रतिदिन अतिथियोंको आश्रय देते, कभी किसीकी निन्दा नहीं करते और सदा स्वाध्याय रत अर्थात्

समाधीस्त वेद पाठ करते हैं, वेही दुस्तर विष-योंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब धर्म्म जाननेवाले मनुष्य माता पिताकी वृत्तिका आसरा करते और दिनमें निद्रित नहीं होते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते जो मन वचन कर्म्मसे कुछ पापाचरण और जीवोंके वास्ते दण्ड विधान नहीं करते, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो राजा लोग रजोगुणसे युक्त होकर लोभके कारण धन नहीं हरते, और सब विषयोंको सब तरहसे रक्षा करते हैं, वेही कठिन विष-योंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब अग्नि-होत्र परायण साधु लोग ऋतुकालमें निजरत होकर दूसरी वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो शूर पुरुष युद्धमें मृत्युका भय त्यागके जयकी इच्छा करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। इस संसारमें प्राणत्या-गका समय उपस्थित होनेपर भी जो सत्य वचन कहते हैं, वे जीवोंके निदर्शन स्वरूप मनुष्य दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिनके कार्य्योंमें कोई कपटता नहीं है, वचन सत्य और प्रिय है तथा सब अर्थ सत्का-र्य्योंमें परिणत होता है; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो ब्राह्मण अनध्यायके दिवस वेद पाठ नहीं करते, वे तपस्यामें निष्ठा-वान तपस्वी लोग दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो सब कुमार ब्रह्मचारी विद्या वेद और व्रतमें निष्ठावान होकर तपस्या करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन महात्माओंमें रजोगुण और तमोगुण शान्त होगया है, तथा वे लोग केवल सतोगु-णको अवलम्बन किये हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिसके समीप कोई भयभीत नहीं होते और जो किसीके निकट त्रास युक्त नहीं होते तथा सब प्राणी ही जिसे आत्म समान हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अति-क्रम कर सकते हैं। जो सब पुरुषश्रेष्ठ साधु लोग पराई श्रीको देखके दुःखित नहीं होते और जो ग्राम्य विषयसे निवृत्त रहते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब श्रद्धावान शान्त स्वभाववाले मनुष्य देवता-ओंको प्रणाम करते और सब धर्म्म सुनते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो प्रजाकामनासे शुद्धचित्तसे प्रति तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे सब कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो क्रोधको रोकते और क्रुद्ध पुरु-षोंके पूरी रीतिसे शान्त किया करते हैं, तथा प्राणियोंके ऊपर कोपित नहीं होते; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें सदा मद्य मांसका भोजन परित्याग करते जन्म भर मद्य पान नहीं करते; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं, जो प्राणयात्रा निर्व्वाहके ही वास्ते भोजन करते पुत्र उत्पत्तिके वास्ते भार्य्याका सङ्ग करते, सत्य कहनेके निमित्त वचन बोलते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। सब प्राणि योंके ईश्वर, जगत्‌की उत्पत्ति और लयके कारण नारायण देवकी जो लोग भक्ति करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। हे राजन्! यह जो पद्मके समान लालनेत्रवाले पीताम्बरधारी महाबाहु अच्युत अर्जुनके सुहृद, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं; जो अचि न्त्यस्वभाव पुरुषश्रेष्ठ प्रभु गोविन्द इच्छा करनेसे ही सब लोकोंको चमड़ेकी तरह समेटा करते हैं, जो धनञ्जय तथा तुम्हारे प्रिय और हितकर कार्य्योंमें सदा तत्पर रहते हैं, वह यही पुरुष प्रवर अनभिभवनीय वैकुण्ठ ही पुरुषोत्तम हैं! जो सब भक्त लोग इस लोकमें इस नारायण हरिका आसरा करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं; इस विषयमें कोई विचार नहीं है। जो लोग इस दुस्तर विषयके

अतिक्रमका विवरण पाठ करते, सुनते, वा ब्राह्मणोंके निकट गाया करते हैं, वे भी कठिन विषयोंसे पार होते हैं। हे पापरहित! मनुष्य लोग इस लोक और परलोकमें जिस प्रकार दुस्तर विषयोंसे उत्तीर्ण होते हैं, मैंने यही उस कार्य्यका विवरण तुम्हारे समीप वर्णन किया।

११० अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो प्रिय नहीं हैं, वे प्रिय रूपसे और जो प्रियदर्शन हैं, वे अप्रिय रूपसे दीख पड़ते हैं, इससे ऐसे पुरुषोंको हम किस प्रकार जानेंगे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें गिद्ध गोमायु सम्वाद युक्त जिस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग उदाहरण दिया करते हैं, उसे सुनो। पहिले समयमें श्रीमती पुरीका नाम पुरीके बीच परहिंसामें रत, क्रूर स्वभाववाला पुरुषोंमें अधम पौरिक नाम एक राजा था। वह आयु क्षय होनेपर अनिश्चित गतिको प्राप्त होकर पूर्व्व-कर्म्मके दोषसे जम्बुक हुआ था। वह प्रथम ऐश्वर्य्यको स्मरण करके दुःखको प्राप्त हुआ। दूसरके लानेपर भी वह मांस भक्षण नहीं करता था। वह सब जीवोंके विषयमें हिंसा रहित सत्यवादी और दृढ़व्रती होकर यथा समयमें स्वयं गिरे हुए फलके जरिये आहार-वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करता था। श्मशानमें बास करना ही उसे सम्मत था, जन्मभूमिके अनुरोधके कारण दूसरी जगह निवास करनेकी उसकी इच्छा नहीं होती थी। समान जातिवाले सियारोंने उसकी पवित्रताका सहन नहीं किया, वे सब विनय युक्त वचनसे उसकी बुद्धि विचलित करने लगे। वे सब बोले, तुम भयङ्कर श्मशानमें वास करते हुए शुद्धाचारसे रहनेकी अभिलाष करते हो, तुम जब मांसभक्षी हो, तब तुम्हारी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हुई? इससे तुम हमारे समान रहो, हम लोग तुम्हें भक्ष्य वस्तु देंगे; शुद्ध आचार परित्याग करके भोजन करो; जो हम लोगोंका भोजन है, वही तुम्हारा भक्ष्य होवे। जम्बुकने सजातीय सियारोंका वचन सुनके स्थिर होकर विस्तार पूर्व्वक युक्तियुक्त निठुरतारहित मधुर वचनसे उत्तर दिया, कि मेरे जन्मका कोई प्रमाण नहीं है; स्वभावके अनुसार चाहे जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जिससे यश बढ़े, मैं वैसे कर्म्मकी इच्छा करता हूं, यद्यपि मैं श्मशानमें वास करता हूं; तौभी मेरा नियम सुनो; आत्मा ही कर्म्म फल भोग करता है, आश्रम कोई धर्म्मके कारण नहीं है। आश्रममें रहके जो पुरुष ब्रह्महत्या करते अथवा दूसरे आश्रममें रहके गऊदान करते हैं; उसमें क्या उन लोगोंके पाप वा दान व्यर्थ होते हैं? तुम लोग केवल स्वार्थी और लोभके वशमें होकर केवल भक्षण करनेमें ही रत होरहे हो; परिणाममें जो तीनों दोष वर्त्तमान हैं, मोहित होकर उसे नहीं देखते हो। असन्तोष कारिणी गर्हणीया वृत्ति धर्म्महानिके कारण दूषित होती है, इस लोक और परलोकमें अनिष्ट करनेवाली वृत्तिमें मेरी अभिलाषा नहीं है। कोई विख्यात बली शार्दूल गोमायुको पवित्र और पण्डित समझके स्वयं उसका अपने समान सम्मान करत हुए मन्त्रीके कार्य्यके वास्ते चुना।

शार्दूल बोला, हे प्रियदर्शन! तुम्हारा स्वभाव मालूम हुआ, तुम मेरे साथ राजकार्य्य करनेके वास्ते चलो, अभिलषित भोगकी इच्छा करके प्रचुर भोग परित्याग करो। मैं तीक्ष्ण रूपसे विख्यात् हूं; इससे तुम्हें कोमलता युक्त हितकर वचन कहता हूं, कि तुम्हारा कल्याण होगा।

अनन्तर जम्बुक महानुभाव मृगेन्द्रके वचनका सम्मान करके कुछ नत होकर विनययुक्त वचनसे कहने लगा। सियार बोला, हे मृग-

राज ! तुमने मेरे वास्ते जो वचन कहा, वह तुम्हारे योग्य ही है ; तुम जो धर्म्मार्थ कुशल और पवित्र सहाय खोजते हो, वह उचित ही है, हे वीर ! अमात्यके बिना अथवा शरीरके परिपन्थी दुष्ट अमात्योंके जरिये मङ्गलकी रक्षा करनी अत्यन्त कठिन है। हे महाभाग ! नीतिज्ञ, अनुरक्त, सन्धि कुशल, परस्पर असंसृष्ट, विजिगीषु, लोभरहित, कपट हीन, बुद्धियुक्त, हितमें रत, ऊंचे चित्तवाले सहायकोंका आचार्य्य और पिताकी तरह सम्मान करना होता है। हे मृगराज ! मुझे सन्तोषके कारण दूसरे विषयोंमें इच्छा नहीं होती, मैं सुख भोग और उसके आश्रित ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा नहीं करता ; मेरा चरित्र तुम्हारे पुराने सेवकोंके साथ न मिलेगा। वे शीलरहित सेवक मेरे वास्ते तुमको विभिन्न करेंगे ; दूसरे किसी तेजस्वीका आसरा भी प्रशंसनीय नहीं है। पवित्र चित्तवाले महाभाग पुरुष अग्निसे भी प्रचण्ड है, मैं दीर्घदर्शी महाउत्साहसे युक्त धर्म्मात्मा, महाबलशाली, कृती, अव्यर्थकारी और अनेक भोगोंसे अलंकृत था, मैं थोड़ेमें सन्तुष्ट नहीं होता था और कभी सेवावृत्तिका अनुष्ठान भी नहीं किया है, इससे सेवावृत्तिसे अनभिज्ञ हूं ; केवल स्वच्छन्दताके सहित वनके बीच घूमा करता हूं। जो गृहस्थाश्रममें वास करते हैं, उन लोगोंको ही राजाके निकट निन्दाजनित दोष हुआ करता है, और वनवासियोंका व्रत आचरण आसक्ति रहित तथा निर्भय होता है। राजासे बुलाये जानपर मनुष्यके मनमें जो भय होता है, सन्तुष्टचित्त और फलमूल भोजन करनेवाले वनवासियोंके मनमें वह भय नहीं रहता। अनायास प्राप्त हुए जल और भययुक्त स्वादिष्ट अन्न इन दोनोंके बीच विचार करके देखता हूं, जिसमें निवृत्ति है, उसहीमें सुख है, राजा लोग सेवकोंके अपराधके कारण उस प्रकार दण्डविधान नहीं कर सकते, जैसे आघातसे दूषित होकर वे लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे मृगेन्द्र ! यदि मुझे यह राजकार्य्य करना होवे, तुम ऐसा विचारते हो ; तो मुझे जिस प्रकार रहना होगा, उसका एक नियम करनेकी इच्छा करता हूं। तुम्हारे प्राचीन मन्त्री मेरे माननीय होंगे, परन्तु मेरा हितकर वचन तुम्हें सुनना योग्य है। मेरी जो वृत्ति कल्पित होगी, वह तुम्हारे समीप स्थिर रहेगी, मैं कभी तुम्हारे दूसरे मन्त्रियोंके साथ विचार नहीं करूंगा ; तुम्हारे प्राचीन मन्त्री नीतिज्ञ होनेपर भी मेरे विषयमें व्यर्थ बातें करेंगे। मैं अकेले एकान्तमें केवल तुम्हारे साथ मिलके हितकर वचन कहूंगा ; स्वजनोंके कार्य्यमें तुम मुझसे हिताहितका विषय न पूछना। तुम मेरे साथ सलाह करके फिर दूसरे मन्त्रियोंकी हिंसा न करना, और मेरे आत्मीयगणोंके ऊपर क्रुध होकर तुम दण्डविधान न करना। "ऐसा ही होवे"—मृगेन्द्रने ऐसा वचन कहके जम्बुकका सम्मान किया ; जम्बुक भी सम्मानित होकर व्याघ्रके मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित हुआ। बाघके पूर्व्व स्थित सेवक लोग सियारको निज कार्य्यमें सत्कृत और पूजित देखकर सब कोई दलबद्ध होकर बारम्बार उसके ऊपर द्वेष करने लगे। दुष्टबुद्धि मन्त्रियोंने मित्र भावसे गोमायुको शान्त और प्रसन्न करके अपनी तरह उसे भी दोषी करनेकी इच्छा की। ऐसा न करनेसे पहिले जिन्होंने पराये धनको हरण किये थे, इस समय वे वहां रहने न पाते ; और गोमायुसे निमन्त्रित होके कोई वस्तु ग्रहण करनेमें समर्थ न होते थे। वे सब अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हुए अनेक प्रकारके वचन और वित्तसे गोमायुकी बुद्धि लोभयुक्त करने लगे ; परन्तु वह महाबुद्धिमान जम्बुक किसी प्रकार धीरजसे विचलित नहीं हुआ। अनन्तर सबने षड़यन्त्र करके सियारके नाशके वास्ते व्याघ्रका अभिलषित मांस जो उसके घरमें रखा था ;

उन लोगोंने स्वयं उस मांसको वहांसे लाकर सियारके घरमें रखा। वह मांस जिस कारण जिसके जरिये लाया गया था, और जिसने इस विषयको सलाह की थी; वह सब हाल सियारको मालूम था, उसने केवल अपने वस्तु विच्छेदके निमित्त चमा की थी। वह जब मन्त्री कार्य्यपर नियुक्त हुआ, उस समय यह नियम किया था, कि इस लोकमें सब जीवोंके हितके निमित्त किसीके ऊपर आघात करना उचित नहीं है।

भोष्म बोले, भूखा व्याघ्र भोजन करनेके वास्ते उठने पर भोजनके योग्य उस मांसको न देखा; तब उसने आज्ञा दी, कि किसने मांस चुराया है, उस चोरका पता लगाओ। कपट आचारी सेवकोंने मृगेन्द्रके समीप उस मांसका विषय वर्णन किया, कि तुम्हारे प्राज्ञमानी पण्डित मन्त्रीने उस मांसको हरण किया है। अनन्तर शार्दूलराज सियारकी चपलता सुनने पर कोपित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसका वध करनेकी इच्छा करी। पूर्व्वस्थित मन्त्रियोंने उसका वह छिद्र देखके, वह सियार हम सब लोगोंकी वृत्ति भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हुआ है। उन लोगोंने ऐसा निश्चय करके फिर उसके सब कर्मोंको वर्णन करने लगे, उसका जब ऐसा कर्म है, तब वह क्या नहीं कर सकता? आपने पहिले उसे जिस प्रकार सुना था, वह वैसा नहीं है; वह वचन मात्रका ही धर्मिष्ठ है; परन्तु उसका स्वभाव अत्यन्त दारुण है। इस पापीने कपट धर्म अवलम्बन करके वृथा आचरण परिग्रह किया है, कार्य्य सिद्धके कारण भोजनके वास्ते व्रत विषयमें श्रम किया है। यदि इस विषयमें आपको अविश्वास होवे, तो इस समय आपको दिखा देता हूं—वह मांस सियारके घरमें प्रवेशित हुआ है मांसकी चोरी और उसके वृत्तान्तको सुनकर व्याघ्रने उस समय "गोमायुका वध करो," ऐसी आज्ञा की। अनन्तर शार्दूलकी माता उसका वचन सुनके हितकर वाक्यसे उसे शान्त करनेके वास्ते आई। वह बोली, हे पुत्र! कपट कार्य्य संयुक्त वाक्य ग्रहण करने तुम्हें उचित नहीं है। ईर्षाके कारण उग्रतायुक्त अपवित्र पुरुषोंको संसर्ग जनित दोषके जरिये निर्दोषी पुरुष भी दोषी होता है, कोई पुरुष वैरकारक समुन्नत प्रकृष्ट कर्म नहीं सह सकता, निर्दोषी पुरुषके अभियुक्त होनेपर वह दूषित हुआ करता है; निज कर्म साधन करनेवाले वनवासी मुनियोंके विषयमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन ये तीनों पक्ष उत्पन्न होते हैं। लोभियोंके शुद्ध स्वभाव वाले लोग द्वेषी होते, कादरोंके बलवान, मूर्खोंके पण्डित और दरिद्रोंके महाधनवान मनुष्य द्वेषी हुआ करते हैं, अधार्मिकोंके धर्मात्मा और कुरूपोंके स्वरूपवान मनुष्य द्वेषभाजन होते हैं। बहुतेरे पण्डित मूर्ख, लोभी और मायाजीवी लोग बृहस्पतिके समान बुद्धि-मान् निर्दोषी मनुष्योंके दोष स्थापित किया करते हैं। यद्यपि तुम्हारे सूने गृहसे मांस चुराया गया है, परन्तु जो पुरुष देने पर भी लेने की इच्छा नहीं करता; उस विषयमें वैसा समझना उचित नहीं है। असभ्य लोग सभ्य और सभ्य लोग असभ्यके समान दीख पड़ते हैं। लोगोंके भाव अनेक तरहके देखे जाते हैं; इससे उनके विषयमें परीक्षा करना युक्तियुक्त है। आकाशका तल कड़ाहीके पेट समान दीखता और जुगुनू अग्निकी चिनगारी सदृश दीख पड़ता है; परन्तु आकाशका तल नहीं है और जुगुनू भी अग्नि नहीं है, इससे अप्रत्यक्ष दृष्ट विषयोंकोभी परीक्षा करनी उचित है। परीक्षा करके विषय जाहिर करने पर पीछे दुःखित नहीं होना पड़ता।

हे पुत्र! प्रभु होके दूसरेको नष्ट करना, कुछ कठिन नहीं है; परन्तु इस लोकमें प्रभा-वयुक्त पुरुषोंमें चमागुण ही बड़ाईके योग्य तथा यशदायक है। हे पुत्र! तुमने उसे समस्त

राज्यके बीच स्थापित किया है ? उससे ही वह विख्यात हुआ है ; मन्त्रणा पात्र अत्यन्त कष्टसे प्राप्त होता है ; यह तुम्हारा सुहृद है, इससे इसकी रक्षा करो। पराए दोषसे दूषित पवित्र पुरुषको जो दूसरी भांति समझता है, वह स्वयं अमात्योंको दूषित करते हुए शीघ्र ही नष्ट होता है। जम्बुकके उन शत्रु समूहके बीचसे कोई धर्म्मात्मा आया, उसने जिस प्रकार यह छल हुआ था, वह सब प्रकाशित करके कह दिया। अनन्तर जम्बुकका चरित्र मालूम होनेपर व्याघ्रने उसका सत्कार करके उसे मुक्त किया और बारम्बार प्रीतिके सहित उसे आलिङ्गन किया। नीतिशास्त्रको जाननेवाला वह सियार मृगेन्द्रकी आज्ञा लेके उस ही अमर्षसे दुःखित होकर प्रयोग पवेशन व्रतकी इच्छा की। शार्दूलने प्रीतिके कारण इकटक नत्रसे सम्मान करके उस धर्म्मात्मा सियारको आदरके सहित अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे निवारण किया। सियार बाघको स्नेहवशके कारण संभ्रान्त चितवनसे प्रणत होके गद्गद वचनसे कहने लगा कि तुमने पहिले मुझे पूजित करके पीछे अपमानित किया और मेरे शत्रुओंके आश्रय हुए ; इससे मैं तुम्हारे समीप निवास नहीं कर सका। जो सेवक स्थानभ्रष्ट मानसे हीन हैं, वे स्वयं आगत वा दूसरसे अर्पित होवें ; जो क्षीण, लोभी, क्रोधी, डराङ्क, प्रतारित और हृत सर्व्वस्व होवें और जो मानी तथा महा अर्थ लाभके अभिलाषी होकर आदान होन हुआ करते है ; जो दुःखित वा व्यसनोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वे सब ही प्रीतिरहित और निर्द्धन होकर नष्ट होते हैं। मैं स्थानभ्रष्ट और अपमानयुक्त हुआ हूं, इससे किस प्रकार तुम्हारा विश्वास पात्र होऊंगा ; और कैसे तुम्हारे समीप स्थित होऊंगा ? मुझे समर्थ समझके तुमने मन्त्री पद प्रदान करके परीक्षा की और अपने किये हुए नियमको उल्लङ्घन करके मुझे अपमानित किया है। सभाके बीच शीलवान कहके जिसे विख्यात किया था ; प्रतिज्ञा रक्षा करनेवालेके पक्षमें उसका औगुण कहना उचित नहीं है। मैं जब इस प्रकारसे मालूम हुआ हूं, तब तुम मेरा विश्वास अब न करोगे, तुम्हारे विश्वास न करनेसे मेरा भी चित्त व्याकुल होगा। तुम शङ्कित और मैं भयभीत हूं ; दूसरे छिद्र खोजनेवाले अस्निग्ध और असन्तुष्ट रहेंगे ; इससे ऐसे स्थलमें वास करनेसे बहुतसा छल हो सकता है। जिस स्थानमें पहिले सम्मान पीछे अपमान होता है, उस सम्मानित होके फिर अपमानित होनेवालेको धीर लोग प्रशंसा नहीं करते। पृथक् हुई वस्तु बहुत कष्टसे जुड़ती है और जुड़ी हुई वस्तु अत्यन्त कष्टसे अलग हुआ करती है; जो प्रीति पृथक् होके फिर जुड़ती है, वह स्नेहसे मिश्रित नहीं रहती। कोई पुरुषको अपना पराया दोनोंके अतिरिक्त केवल स्वामीके हितकर कार्य्योंमें रत नहीं देखा जाता सब ही कार्य्यके अनुसार अभिप्राय करते हैं ; इससे स्निग्धबन्धु अत्यन्त दुर्लभ है। राजाओंका चित्त अत्यन्त चञ्चल होता है ; उत्तम पुरुषको समझना बहुत कठिन है ; समर्थ वा शङ्कारहित पुरुष सैकड़ेमें एक पाया जाता है। मनुष्योंकी उन्नति अवनति स्वयं हुआ करती ; शुभाशुभ घटना ही महत्व और तुच्छत्व मालूम करानेमें समर्थ है।

भीष्म बोले, जम्बुकने इसी प्रकार धर्म्म, काम और अर्थसे पूरित युक्तियुक्त शान्त वचन कह बाघको प्रसन्न करके बनको गया। बुद्धिमान सियार उस शार्दूलकी बिनतीको न मान कर व्रत अवलम्बन करके देह त्यागनेके अनन्तर स्वर्गमें गया।

१११ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे सब धर्म्मोंके जाननेवाले पितामह ! राजाको क्या कर्त्तव्य है, और कैसा

कार्य्य करनेसे राजा सुखी होता है इसे आप यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, अच्छा,—मैं तुम्हारे समीप कहता हूं; इस लोकमें राजाको जो कुछ कर्त्तव्य है और जिसके करनेसे वह सुखी होते हैं, उस कार्य्यके विषयमें एकमात्र निश्चय है, उसे सुनो। हे युधिष्ठिर! हमने जिस प्रकार एक ऊंटका महत् वृत्तान्त सुना है, वैसा करना उचित नहीं; इससे उसे सुनो। प्राजापत्य युगमें एक जातिस्मर ऊंट था, उसने जङ्गलके बीच व्रत करके महत् तपस्या की थी। उसकी तपस्या पूरी होने पर सर्व्व-शक्तिमान पितामह प्रसन्न हुए; अनन्तर उन्होंने उसे वर मागनेको कहा।

ऊंट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरी गर्द्दन लम्बी होवे, हे विभु! जिससे मैं उस लम्बी गर्द्दनके जरिये एक सौ योजनसे भी आगेके कण्टक पत्रादिकोंका हरण कर सकूं। वरदाता महात्मा पितामहने कहा "ऐसा ही होवे"। ऊंट भी उत्तम वर पाके निज वनमें गया। अत्यन्त नीचबुद्धि ऊंटने उस समय वरके प्रभावसे आलस्य किया। वह दुष्टात्मा कालसे मोहित होकर चरनेके वास्ते नहीं जाता था; किसी समय उस एक सौ योजन लम्बी ग्रीवाको पसार कर निशङ्क चित्तसे रहा था; उस ही समयमें प्रबल हवा बहने लगी, तब ऊंटने अपने शिर और गर्द्दनका कन्दराके बीच डाल दिया।

अनन्तर जगत्को परिपूरित करती हुई महत् वर्षा आरम्भ हुई। उस ही समय कोई सियार जलसे भीगके शीतसे आर्त्त हुआ; इससे कष्टमें पड़के भार्य्याके सहित शीघ्र ही उस गुफाके बीच प्रवेश किया। हे भरतश्रेष्ठ! वह मांसजीवी जम्बुक परिश्रम और क्षुधासे युक्त होकर ऊंटकी गर्द्दन देखके उसे भक्षण करने लगा। ऊंटने जब अपनेको भक्ष्यमान समझा तब वह अत्यन्त दुःखित होकर ग्रीवा समेटनेके वास्ते यत्नवान हुआ। वह गर्द्दनको ऊपर उठाके नीचेको समेटते समेटते भार्य्याके सहित सियारने उसे भक्षण किया। सियार ऊंटको भक्षण करके वर्षा और वायुके शान्त होने पर गुफासे बाहर हुआ। नीचबुद्धि ऊंट उस समय इसी भांति मृत्युको प्राप्त हुआ था। देखिये, आलसके कारण महत् दोष उपस्थित हुआ, इससे तुम उपाय अवलम्बन करके ऐसे आलस छोड़के सावधान होकर बुद्धिमूलक विषयोंमें वर्त्तमान रहो। हे भारत! मनुने कहा है, बुद्धिमूलक कर्म्म ही उत्तम है; बाहु-बल जनित कर्म्म मध्यम, और पांवसे चलना तथा बोझा ढोना आदि निकृष्ट हैं। जो लोग दक्ष और क्रमसे इन्द्रियोंको निग्रहीत किये हैं, उन्हीं राजाओंका राज्य वर्त्तमान रहता है; और बुद्धिबलसे ही आर्त्त पुरुषोंकी विजय होती है; यह मनुने कहा है।

हे पापरहित युधिष्ठिर! जिन्होंने गुप्त मन्त्रणा सुनी है, जो सहाय युक्त और परीक्षा करके कार्य्य करते हैं; इस लोकमें उनके ही पास सब अर्थ उपस्थित रहते हैं; सहाय युक्त राजा समस्त पृथ्वी शासन करनेमें समर्थ हैं। हे महेन्द्र सदृश स्वभावसे युक्त महाराज! विधि जाननेवाले साधुओंके जरिये पहिले समयमें यह कथा कही गई थी; मैंने भी तुम्हारे समीप शास्त्रदृष्टिके अनुसार इसे वर्णन किया; इससे जैसा कहा है, उस ही भांति बुद्धिसे विचार करके आचरण करो।

११२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ! राजा दुर्लभ राज्य पाके सहाय रहित होके अत्यन्त बलवान शत्रुके निकट किस प्रकार निवास करे?

भीष्म बोले, हे भारत! पुराने लोग इस विषयमें सरित्पति सागर और नदियोंके सम्वाद

पुरुष इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, जो संशय उत्पन्न हुआ था, उस विषयमें सुरा-रिनिलय सरित्पति समुद्र नदियोंसे प्रश्न किया।

समुद्र बोला, हे उत्तमोत्तम नदियो! तुम सब जिस समय मेरे निकट आती हो; उस समय जड़ और शाखाके सहित बड़े बड़े वृक्षोंको नष्ट होते देखता हूं; परन्तु उनके बीच बेतके वृक्षको टूटते हुए नहीं देखता। बेतका वृक्ष छोटा शरीर और अल्प शक्तिवाला तुम्हारे किनारे पर उत्पन्न होता है; इससे तुम लोग उसे अवज्ञाके कारण नहीं लाती हो; वा उसने तुम लोगोंका कुछ उपकार किया है? बेत जो तुम लोगोंके तटको छोड़के नहीं आता, उस विषयमें मैं तुम सब लोगोंके मतको सुननेकी इच्छा करता हूं। इस विषयमें नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा सरित्पति समुद्रसे अर्थ और युक्तियुक्त हृदय-ग्राहक उत्तर देने लगीं।

गङ्गा बोलीं, ये सब वृक्ष यथा स्थानमें रहनेसे नष्ट होते हैं, ये सब हम लोगोंके विरुद्ध आचरण करके अन्तमें निज स्थानसे भ्रष्ट हुआ करते हैं; बेतवृक्ष ऐसा न करनेसे निज स्थानमें ही निवास करता है। वेगको आता देखके बेत नत होता है, दूसरे नत नहीं होते; नदीका वेग घटनेपर बेत निज स्थानमें स्थित रहता है। बेत कालज्ञ, समयज्ञ और सदा वशीभूत, अनुलोम तथा सूखा है; इस ही निमित्त इस स्थानमें नहीं आता। जो सब औषधी, वृक्ष, और लता वायु तथा जल वेगके कारण नीचे और ऊंचे होती हैं, वे अपने पराभवको नहीं प्राप्त होतीं।

भीष्म बोले, जो पुरुष पहिले वध और नाश करनेमें समर्थ प्रबल वैरीके वेगको नहीं सहता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो अपना और शत्रुका सार असार तथा बलवीर्य्यको मालूम करके घूमते हैं, उन बुद्धिमान पुरुषोंको पराभव नहीं होती। इसी भांति जो शत्रुओंको प्रबल पराक्रमी जानके बेतसीवृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनको पराभव नहीं होती; यही प्रकृष्ट ज्ञानका लक्षण है।

११३ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भारत! विद्वान पुरुष मूर्ख वा प्रगल्भके जरिये, कोमल तथा कठोर भावसे निन्दित होकर सभाके बीच कैसा व्यवहार करे?

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! यह विषय जिस प्रकार वर्णित होता है, अर्थात् बुद्धिमान पुरुष अल्पबुद्धि मनुष्योंके अत्याचारको जिस प्रकार सदा सहते हैं, उसे सुनो। जो निन्दक पुरुषोंके ऊपर क्रोध नहीं करते, वे सुकृत फल लाभ किया करते हैं, और जो क्रोधी पुरुषके विषयमें क्षमा करते हैं, वे अपने किये हुए दुष्कृत कर्म्मोंसे छूट जाते हैं। टिट्टिभ पक्षीके शब्दकी भांति कानोंमें कड़वे मालूम होनेवाले क्रोधसे आतुर पुरुषोंके वचनमें उपेक्षा करे। लोक समाजमें जो पुरुष द्वेषभाजन होता है, उसका सब ही निष्फल है; वह उसही पाप कर्म्मके जरिये सदा बड़ाई करता है,—"मैंने जनसमाजके बीच अत्यन्त विख्यात किसी पुरुषको ऐसा वचन कहा था, वह सभामें ऐसा सुनके मुर्दके समान स्थित था।" जो निर्लज्ज पुरुष बड़ाई न करने योग्य कर्म्मोंके जरिये बड़ाई करते हैं, वैसे अधम पुरुषोंके विषयमें यत्नपूर्व्वक उपेक्षा करनी योग्य है। अल्पबुद्धि मनुष्य जो कुछ कहे, बुद्धिमान पुरुष उसे सहन करे, वनके बीच कौवेकी तरह निरर्थक चिल्लाते हुए बुद्धिहीन साधारण पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करके क्या कर सकता है? पाप कर्म्मोंका करना यदि वचनसे कहा जावे, अर्थात् इस पुरुषने यह कर्म्म किया है, ऐसा करने पर वचनमात्रसे दूसरेका दोषसिद्ध आड़ करता है; क्रोधी पुरुषका प्रयोजन सिद्ध

नहीं होता, इससे वचनके जरिये दूषित पुरुष कभी दोषी नहीं होसकता। दुष्ट पुरुष यदि कड़वे वाक्यसे कोई विपरीत वचन कहें, अर्थात् जनसमाजमें यदि कोई पुरुष कड़वे वचनसे गाली देवे, तो जैसे मोर अपना गुह्य दिखाके नाचके नाचते अपनी बड़ाई समझता है, अर्थात् मैं उत्तम नृत्य करता हूं, ऐसे ही अभिमानसे मतवाला होता है, वैसे ही खल तथा नष्ट लोग मैंने सभाके बीच अमुक महत् पुरुषको कड़वे वचन कहा है, ऐसी ही बड़ाई किया करते हैं, उसके वास्ते लज्जित नहीं होते। जगत्में जिसे कुछ भी न करने योग्य अथवा अकार्य्य नहीं है, उन दूषित चित्तवाले मनुष्योंके साथ पवित्र स्वभाव युक्त पुरुषोंको वार्त्तालाप करना उचित नहीं है। जो पुरुष सम्मुखमें प्रशंसा और परोक्षमें निन्दा किया करता है, कुत्तेकी तरह वैसे मनुष्यका ज्ञान और धर्म्म नष्ट होता है। परोक्षमें निन्दा करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पुरुषोंको दान करे, तथा होम करे, तो उस ही समय वह सब निष्फल होजाता है; इससे बुद्धिमान पुरुष सदा वैसे पापी साधुताहीन पुरुषोंको कुत्तेके मांसकी तरह त्याग करें। जो दुष्टात्मा महाजनोंके निकट दूसरेकी निन्दा करते हैं, वे सर्पकी तरह ऊंचा फन दिखाके अपने दोषोंको प्रकाशित किया करते हैं। जो बुद्धिहीन पुरुष निज कर्म्मको करनेवाले खलके प्रतिकार करनेकी इच्छा करते हैं, वह इस प्रकार दुःखमें पड़ते हैं, जैसे गधा अग्निपुञ्जमें प्रवेश करता है। जो पुरुष दूसरेकी निन्दा करनेमें सदा रत रहता है, वह मनुष्यके आकारमें कुत्तास्वरूप है। चिल्लानेवाले उन्मत्त हाथी और अत्यन्त भयङ्कर कुत्तेकी तरह उस नीच पुरुषको परित्याग करना चाहिये। जो पुरुष अधीर सेवित मार्गमें वर्त्तमान और इन्द्रिय दमन तथा विनयसे विरत होता है, उस अविव्रती सदा अनैश्वर्य्यकामी पापबुद्धि पापी मनुष्यको धिक्कार है। नीच लोगोंके कुछ वचन बोलनेपर यदि साधु पुरुष उसका उत्तर देवें, तो उन्हें उत्तर देनेसे निवारण करना उचित है; क्योंकि उसके उत्तर देनेसे आर्त्त होना पड़ता है। स्थिर बुद्धिवाले पुरुष ऊंचे पदवाले पुरुषोंके नीचोंके सहित वार्त्तालाप करनेकी भी निन्दा किया करते हैं। मूढ़ पुरुष क्रुद्ध होनेपर चपेटाघात करता धूलि वा तृष फेंकता अथवा दांत निकालके विभीषिका प्रदर्शित किया करता है; नृशंस तथा मूर्खके कोपित होनेपर ये ही सब कार्य्य प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य सभाके बीच अत्यन्त दुष्टचित्तवाले दुर्ज्जनोंकी की हुई निन्दा सहन करते और इस दृष्टान्तका सदा पाठ करते हैं; उन्हें कोई अप्रिय वचन नहीं प्राप्त होता।

११४ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! आपको मेरा यह महत् संशय दूर करना होगा। आप हमारे कुलको स्थित करनेवाले हैं। हे तात! आपने नीचकर्म्म करनेवाले दुष्टात्मा पुरुषोंके विषयमें ऐसे वचन कहे। इस ही वास्ते आप्हिर करता हूं, कि जो राजतन्त्रके हितकारी और जिससे वंशको सुख प्राप्त होता तथा जो वर्त्तमान और भविष्यकालमें कुशलकी वृद्धि करनेवाला हुआ करता है; जो पुत्र पौत्र आदि क्रमसे चले आते हों, जो राज्यकी बढ़ती करनेवाला हो खानेपीने और शरीरके विषयमें जो हितकर होवे, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये। जो राजा अभिषिक्त होकर राज्यके बीच मित्रोंमें घिरके सुहृदोंसे युक्त होवे वह किस प्रकार प्रजाको प्रसन्न करे? जिसे असत् विषयोंमें अनुराग, प्रीति और प्रबल आसक्ति, तथा इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाले सज्जनोंमें अभिलाष होती है; उसके संसर्गमें उत्पन्न हुए सेवक लोग

गुप्तरहित होजाते हैं और वह राजा सेवकोंके बलसे प्राप्त हुए धनके जरिये गौरवयुक्त नहीं होता। मैं इस ही सन्देहसे युक्त होरहा हूं, आप बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं, इससे इस दुःखसे जानने योग्य सब राज्य-धर्म्मको मेरे समीप कहनेमें आप ही उपयुक्त हैं। हे पुरुष-श्रेष्ठ! आप हमारे वंशके हित करनेमें रत हैं, आप ही सब विषयोंको कहते हैं, और महा-बुद्धिमान विदुर भी हम लोगोंसे सत्कथा कहा करते हैं। आपके समीप वंश और राज्यके हितकर वचन सुनके मैं अमृत पानकी तरह तृप्त होकर सुखसे शयन किया करता हूं। सन्निकृष्ट सेवक कैसे गुणोंसे युक्त होवें और किस प्रकारके सेवकोंके जरिये संसारयात्रा विहित होगी। सेवकोंसे रहित राजा अकेले कभी राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते, सत्‌वंशमें उत्पन्न हुए सब लोग इस राज्यकी इच्छा किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! अकेले राज्यकी शासन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। हे तात! सहायहीन राजा धन प्राप्त करने वा प्राप्त हुए धनको सदा रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते। जिसके सब सेवक ज्ञान विज्ञानके जान-नेवाले, हितैषी सत्कुलमें उत्पन्न हुए और कोम-लता-युक्त हैं, वही राज्य फलभोग करता है। जिसके मन्त्री उत्तम कुलवाले और घूस आदिसे अभेद, सहवास निष्ट राजाके चति दिखानेवाले साधु, सम्बन्ध युक्त ज्ञानके जाननेवाले, अनागत विधाता, कालज्ञानके जाननेवाले होते हैं; और जो बीते हुए विषयोंके वास्ते शोक नहीं करते, वेही राज्यफल भोग करते हैं। जिसकी प्रजा शान्त नहीं होती, सदा प्रसन्न चुद्रता हीन और सत्‌मार्गको अवलम्बन करती है, वह राजा ही राज्यभागी होता है। कोषको बढ़ानेवाले आप्त और सन्तुष्ट पुरुषोंसे जिसके खजानेकी सदा बढ़ती होती है, वही राजा उत्तम है। पहिले सज्जय उसके अनन्तर घूस आदिसे अभेद लोभरहित और विश्वासी मन्त्रियोंसे जिसकी धान्य आदि सामग्रोके जरिये सब लोग प्रतिपालित होते हैं, वह राजा अनेक गुणोंसे युक्त होता है। जिसके नगरमें व्यवहार कार्य्य अर्थात् वादी प्रतिवादियोंके विवादोंका निर्णय हुआ करता है और उन लोगोंको अपराधके मुताबिक दण्ड दिया जाता है मस्तकमें लिखे हुए निदर्शनके अनुसार वह राजा ही धर्म्म फलभागी होता है। राजधर्म्मको जाननेवाला जो राजा विचारके मनुष्योंको संग्रह करता है और सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और समाश्रय इन षड्‌वर्गोंको प्रतिग्रह करता है, वही धर्म्म फल भोग किया करता है।

११५ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं; यह सज्ज-नोंसे आचरित लोक समाजमें सदा परम प्रमाण स्वरूप है। तपोवनमें जामदग्न्य परशु-रामके समीप ऋषियोंने जैसा कहा था, उसे इस वक्ष्माण विषयके सदृश मैंने सुना था। मनुष्य-सञ्चारसे रहित किसी जङ्गलके बीच फल मूल आहार करनेवाले नियममें निष्ठावान जितेन्द्रिय एक ऋषि-वास करते थे। वह दीक्षा दमसे युक्त, शान्त, स्वाध्याय रत, पवित्र, उप-वासके कारण शुद्धचित्त और सदा सतोगुण अवलम्बन करके रहते थे। उस बुद्धिमानके बैठे रहनेपर सब प्राणी उनका सद्भाव देखके उनके समीप जाते थे। सिंह, बाघ मतवाले हाथी, दीप नाम बाघ, गैंड़ा भालू और इसके अतिरिक्त जो सब भयानक रूपवाले जन्तु थे, वे रुधिर पीनेवाले सब जीव उनसे कुशल प्रश्न करते और सब कोई शिष्यकी तरह नम्रभावसे उस ऋषिके प्रियकार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होते

थे। ऊपर कहे हुए जानवर ऋषिके साथ सुख-प्रश्न करके यथा योग्य स्थानों पर गमन करते थे, उनके बीच एक पलुआ कुत्ता उस महा-मुनिको छोड़के नहीं जाता था। हे महा बुद्धि-मान! वह भक्त सदा अनुरक्त, उपवाससे कृषित दुर्ब्बल फल-मूल जलाहारी, शान्त शिष्टाकृतिके समान कुत्ता उस बैठे हुए महर्षिके चरण पर मनुष्यकी तरह गिरा और अत्यन्त स्नेहबद्ध होने लगा। अनन्तर मांसभक्षी महाबली स्वार्थ लाभके वास्ते अत्यन्त सन्तुष्ट क्रूर स्वभाववाला शार्दूल वहां पर उपस्थित हुआ। वह प्यासा बाघ जीभ निकालके और पूंछ खड़ी करके क्षुधासे पीड़ित होकर उस कुत्तेके मांसको भक्षण करनेकी इच्छा कर सुख चाटे उसको ओर आने लगा। हे राजन्! जीनेकी इच्छासे उस कुत्तेने मुनिसे जैसा बचन कहा था, उसे सुनो। महाराज! कुत्ता बोला, हे भगवन्! यह कुत्तोंका शत्रु तेंदुआ मुझे भक्षण करनेकी इच्छा करता है। हे महामुनि! आपकी कृपासे जिस प्रकार इससे मुझे भय न होवे, हे महा-बाहो! आप वैसा ही करिये; आप सर्व्वज्ञ हैं, इसमें सन्देह नहीं है। ऐश्वर्य्य युक्त सब जीवोंकी बोली और भावके जाननेवाले वह मुनि उसके भयका कारण मालूम करके कहने लगे।

मुनि बोले, हे बच्चा! तुम बाघसे मृत्युके वास्ते कुछ मत डरो; तुम निज रूपको त्यागके बाघ बनो। अनन्तर वह कुत्ता सुवर्णके समान आकृतिसे युक्त विचित्र अङ्गवाला शार्दूल हुआ उसके सब दांत बड़े बड़े होगये; तब वह निर्भय होकर वनके बीच स्थित हुआ। अनन्तर बाघ उसे अपने समान पशु देखके उसके साथ कुछ विरुद्ध आचरण न करके क्षणभरमें वहांसे चला गया। अनन्तर महाभयङ्कर विकराल शरीरसे युक्त, रुधिर लालसासे मुख बाये हुए भूखा शेर उस द्वीपीके समीप आने लगा। वह द्वीपी वनवासी दंष्ट्री भूखे शेरको देखके जीवन रक्षाकी इच्छासे ऋषिके शरणमें गया, ऋषि सहवासके कारण उसपर प्रीति करते थे; इस ही कारण उस द्वीपीको उसके शत्रुओंसे भी बलवान शेर बना दिया। महाराज! अनन्तर शेरने उसे निज जाति देखके नहीं मारा। कुत्ता उस समय व्याघ्रत्वको प्राप्त होके बलवान हुआ और मांस भोजन करने लगा, तब उसे फल मूल भोजन करनेमें स्वाद न रहा। महा-राज! मृगराज जैसे सदा वनवासी जीवोंको भक्षण करनेकी इच्छा करता है, वह शेर भी उस समय वैसा ही हुआ।

११६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, वह शेर कुटीके समीप निवास करते हुए मृगोंको मारके उनके मांससे तृप्त होकर शयन कर रहा था, उसही समय उदय हुए बादलके समान एक मतवाला हाथी उस स्थान पर उपस्थित हुआ। उस हाथीका गण्ड-स्थल प्रभिन्न होके मद झर रहा था दोनों कुम्भ बहुत बड़े थे और उसके शरीरमें पद्मचिन्ह विद्यमान था। उस दोनों विशाल दांतोंसे युक्त, अत्यन्त ऊंचा बड़ा शरीर और बादलके समान गम्भीर शब्द करनेवाला बलगर्व्वित मतवाले हाथीको आते देखके वह बाघ हाथीके भयसे डरके उस ऋषिके शरणमें गया। अनन्तर ऋषि सत्तमने उस बाघको हाथी बनाया। असल हाथी उस बाघको महामेघके समान हाथी होते देखके भयभीत हुआ। अनन्तर वह बाघ शल्लकी तथा कमल वनमें पद्मरेणु विभूषित और मदयुक्त होकर घूमने लगा। ऋषिकी कुटीके समीप रहके हाथीको इधर उधर घूमते हुए बहुत समय बीत गया। अनन्तर पहाड़की कन्दरामें रहनेवाले लालवर्णवाली केशरसे युक्त हाथियोंके कुलको नाश करनेवाला एक सिंह

उस स्थान पर आया । हाथी उस सिंहको आते देख उसके भयसे डरके ऋषिकी शरणमें गया । अनन्तर मुनिने उसे सिंह बनाया । तब उसने समान जातिके सम्बन्धके कारण वनके सिंहकी पर्व्वाह न की, उसे सिंह होते देखकर वनका सिंह भयभीत होकर चला गया । नकली सिंह उस महावनके बीच मुनिके आश्रमके समीप वास करनेलगा । उसके भयसे दूसरे पशु भयभीत होके जीवनकी इच्छासे तपोवनके निकट भी नहीं आते थे । किसी समय सब प्राणियोंका नाशक, रुधिर पीनेवाला अनेक प्राणियोंसे भयङ्कर आठ पांव, ऊर्द्ध नेत्रवाला वनवासी बलवान शरभ उस सिंहको संहार करनेके वास्ते मुनिके आश्रममें उपस्थित हुआ । हे शत्रुनाशन ! मुनिने उस समय सिंहको अत्यन्त बलवान शरभ बनाया । जङ्गली शरभ मुनिके प्रचण्ड बलसे युक्त शरभको अपने अगाड़ी देख, शीघ्रताके सहित वनसे भाग गया । वह कुत्ता उस समय मुनिके जरिये शरभत्व प्राप्त करके उनके निकट सुखपूर्व्वक समय बिताने लगा । हे राजन् ! अनन्तर सब पशु उस शरभके भयसे डरके और जीवन रक्षाके लिये यत्नवान होकर दशों दिशाकी ओर दौड़ने लगे । शरभ भी प्रतिदिन प्राणियोंके वधमें रत हुआ, इससे मांसके स्वादसे मोहित होकर फल मूल भोजन करनेकी इच्छा नहीं करता था । कुछ दिनोंके अनन्तर अकृतज्ञ श्वयोनिज शरभ लोहू पीनेकी इच्छासे अत्यन्त मुग्ध होकर मुनिको मारनेकी अभिलाष की । तब वह महाबुद्धिमान मुनि तप बल और ज्ञाननेत्रसे उसकी दुष्ट अभिलाषा जान गये और विदित होने पर उस कुत्ते से कहने लगे ।

मुनि बोले, तू पहिले कुत्ता था, मेरे तपाबलसे तेंदुआ हुआ, तें दुएसे घोर घोर बाघ बना ; बाघसे मद चूनेवाला मतवाला हाथी हुआ । हाथीसे सिंह हुआ ; अन्तमें सिंहसे फिर बल युक्त शरभत्व प्राप्त किया । मैंने तुझ पर प्रीति करके क्रमसे तुझे अनेक तरहसे बदल किया, परन्तु तेरा उन कुलोंके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ; तू अपने कुलके सम्बन्धको त्याग न सका । रे पापी ! तू जब मुझे पापरहित जानके भी मारनेकी इच्छा करता है, तब तू आत्मयोनिको प्राप्त होकर कुत्ता ही होवेगा । अनन्तर मुनि-द्वेषी दुष्टचित्त प्रकृत मूर्ख शरभ ऋषिके शापसे फिर पहिले रूपको प्राप्त हुआ था ।

११७ अध्याय समाप्त ।

——

वह कुत्ता प्रकृतिस्थ होकर परम दीनदशासे ग्रस्त हुआ और ऋषिने उस पापात्माको हुङ्कारके जरिये उस तपोवनसे बाहर किया । इसी तरह बुद्धिमान राजा सत्य, पवित्रता सरलता, प्रकृति सत्व, श्रुतचरित्र कुल, इन्द्रियनिग्रह, दया, बलवीर्य्य प्रश्रय और क्षमा मालूम करके जो सेवक जिस कार्य्यके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्यपर नियुक्त करे । बिना परीक्षा किये मन्त्री नियुक्त करना राजाको उचित नहीं है । जो राजा अकुलीन मनुष्योंसे घिरता है, वह कभी सुखी नहीं होसकता । सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य राजासे निरपराधमें ही विद्यमान होनेपर भी कभी पाप कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होते ; और कुलहीन साधारण पुरुष साधुसंसर्गसे दुर्लभ ऐश्वर्य्य लाभ करके यदि निन्दित होवे, तो उस ही समय शत्रु होजाता है । कुलीन शिक्षित, बुद्धिमान, ज्ञानविज्ञानके जाननेवाले सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्वके जाननेवाले सहनशील स्वदेशीय, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, दानशील, जितेन्द्रिय, लोभरहित, जो कुछ मिले उसहीमें सन्तुष्ट रहनेवाले, स्वामीके मित्रोंके ऐश्वर्य्य लिप्सु, मन्त्रणाकार्य्यके जाननेवाले, जिस देश वा जिस समयमें जैसा कार्य्य करना होता है, उस विषयके जान-

नेवाले प्राणी मात्रके चित्तको प्रसन्न करनेमें अनुरक्त, सदाचारयुक्त, सदायुक्त चित्त, हितैषी आलसरहित, आचार युक्त, अपने विषयमें सन्धि-विग्रहके जाननेवाले, राजाके धर्म-अर्थ और कामके जाननेवाले पुर और जनपदवासी लोगोंके प्यारे, जो पर सेनाको भेद कर सकते हैं; उन लोगोंके सब व्यूहोंके तत्त्वज्ञ, सब सेनाको हर्षित करनेमें निपुण, इङ्गिताकार तत्वज्ञ, यात्रा ज्ञान विशारद, हाथियोंकी शिक्षामें निपुण, प्रगल्भ दानी, धर्मात्मा, बलवान, यथाउचित कार्य्य करनेवाले, पवित्र और पवित्र लोगोंसे घिरे हुए प्रसन्नमुख, सुखदर्शन, नायक, नीतिकुशल, गुण और चेष्टासे युक्त, सावधान, सूक्ष्म अर्थोंके जाननेवाले, मधुर और कोमल भाषासे युक्त धीर, शूर, महा ऐश्वर्य्यसे युक्त, और देशकालके अनुसार कार्य्य करनेवाले पुरुषको जो मन्त्री करता है, और उसकी अवज्ञा नहीं करता, चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान उस राजाका राज्य बढ़ता है। इन सब गुणोंसे युक्त शास्त्र जाननेवाले, प्रजापालनमें तत्पर, धर्ममें निष्ठावान राजाको सभी चाहते हैं। धीर, क्षमावान पवित्र, समयके अनुसार तीक्ष्ण पुरुषके प्रयत्नके जाननेवाले, सेवा युक्त श्रुतवान, श्रोता, तर्कवितर्कके जाननेवाले, मेधावी, धारणायुक्त यथारीतिसे कार्य्योंको करनेवाले, धर्मात्मा सदा प्रिय वचन कहनेवाले, अपकारमें क्षमावान्, दानमें विघ्न न करनेवाले, श्रद्धालु सुखदर्शक, आर्त्तोंके अवलम्ब, सदा सेवक लोग जिसके हितमें रत रहते, अहङ्काररहित, सुख दुःख सहनेवाले, तुच्छ कार्य्योंसे रहित, सेवकोंसे कोई कार्य्य सिद्ध होनेपर उनके उपकार करनेवाले, भक्तोंके प्यारे, लोगोंको संग्रह करनेवाले, सावधानतायुक्त, सदा सेवकोंकी उपेक्षा करनेवाले क्रोधरहित, ऊंचे चित्तवाले, उचित दण्ड देनेवाले, निरपराधीको दण्ड न देनेवाले, धर्म्मकार्य्यके प्रचारक, दूतनेत्र, प्रजाकी रक्षामें तत्पर और सदा धर्म्म-अर्थमें कुशल; ऐसे गुणोंसे युक्त राजा सबके ही अभिलषित होते हैं। हे नरनाथ! राज्य धारणके सहायस्वरूप उत्तम पुरुष-गुणोंसे परिपूरित योद्धाओंको भी खोजना होता है, जो राजा समृद्धिकी इच्छा करे, उसे योद्धाओंकी अवमानना करनी उचित नहीं है। जिस राजाके युद्धमें निपुण, कृतज्ञ, शास्त्र जाननेवाले, धर्मशास्त्रमें रत, पदातियोंसे घिरे हुए निर्भय गजसवार, रथी, घुड़सवार अस्त्रविद्यामें निपुण योद्धा लोग वशमें रहते, हैं यह भूमण्डल उसके हाथके नीचे विलास करता है। जो राजा सब वस्तुओंके संग्रह करनेमें सदा आग्रह युक्त, उद्योगी और मित्रोंसे परिपूरित रहता है, वही राजसत्तम हैं। हे भारत! संग्रहीत मनुष्य और सहस्र घुड़सवार वीरोंके जरिये इस समस्त पृथ्वीको जय किया जा सकता है।

११८ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, जो राजा इसी भांति कुत्ते के समान सेवकोंको निज निज स्थानों तथा कार्य्य विशेषमें नियुक्त करता है, वही राज्य फल भोग किया करता है। कुत्ते का सम्मान करके उसे निज स्थानसे ऊंचे स्थान पर नियुक्त करना उचित नहीं; कुत्ता निज स्थानसे उच्च पद पाके प्रमत्त होता है। स्वजाति गणयुक्त सेवकोंको निज कार्य्योंमें लगाना उचित नहीं है। जो राजा सेवकोंको उचित कार्य्य सौंपता है, वह सेवक गुणसे युक्त राजा श्रेष्ठ फलोंको भोग किया करता है। शरभको जगह शरभ, सिंहको जगह बलवान सिंह, बाघकी जगह बाघ और तेंदुएके ही स्थानमें नियुक्त करना उचित है। जो सेवक जिस कर्म्मके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है; कर्म्म फलको इच्छा करनेवाले सेवकोंको विपरीत रीतिसे नियुक्त करना उचित नहीं है।

जो बुद्धिहीन राजा प्रमाणको अतिक्रम करके उलटी रीतिसे सेवकोंको स्थापित करता है, वह प्रजाको प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख, चुद्र, बुद्धिहीन, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले और अकुलीन मनुष्योंको नियुक्त करना गुणवान राजाका कर्त्तव्य नहीं है। साधु सद्‌वंशमें उत्पन्न हुए, ज्ञानवान निन्दारहित, अचुद्र, पवित्र और दक्ष पुरुष पारिपार्श्विक हुआ करते हैं। जो नम्र, कार्य्योंमें तत्पर, शुद्ध, शान्त, स्वाभाविक गुणोंसे रमणीय और पद पर रहके निन्दित नहीं होते, वेही राजाके बहिश्चर प्राणस्वरूप हैं। सिंहके समीप सिंह ही सदा अनुगत होगा, जो सिंह नहीं है, वह सिंहके साथ मिलनेसे सिंहके समान फल लाभ करता है। जो सिंह होकर कुत्तोंसे घिरा रहता है, और सिंह कर्म्म फलमें रत होता है, वह कुत्तोंसे उपासित होकर सिंहके फलको भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। हे नरनाथ! शूर, बुद्धिमान, बहुश्रुत और कुलीनोंके जरिये सब पृथ्वीको जय किया जासकता है। हे भृत्यवत्सल प्रबल! विद्याहीन, कोमलता रहित वृद्धिहीन अमहाधन सेवकोंको संग्रह करना राजाको उचित नहीं है। स्वामीका कार्य्यसिद्ध करनेमें तत्पर पुरुष बाणको तरह कार्य्यके भीतर प्रवेश करते हैं जो सब सेवक राजाके हितकारी हों, उनके विषयमे प्रिय वचन प्रयोग करना उचित है। राजाओंको प्रयत्नके सहित सदा कोषकी रक्षाकरनी उचित है, कोष ही राजाओंका मूल और बढ़ती करनेवाला हुआ करता है। तुम्हारा धान्यगृह बहुतसे अन्नकी राशिसे सदा परिपूरित और उत्तम सेवकोंसे सदा रक्षित रहे; तुम धन धान्यसे युक्त रहो। तुम्हारे सेवक सदा उद्योगी और युद्धके जाननेवाले होवें घोड़ोंके हांकनेके विषयकी निपुणता इस समय तुम्हें अभिलषित होवे है। हे कौरव नन्दन! तुम स्वजन और बान्धवोंके विषयोंको विचारते हुए मित्र तथा सम्बन्धियोंसे युक्त होके पुरकार्य्यके हितका अन्वेषण करो। हे तात! यही कुत्तेकी उपमासे युक्त प्रजाके विषयमें तुम्हें जैसी नैष्ठिक बुद्धि स्थापित करनी होगी, उसे मैंने वर्णन किया; फिर अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

११९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आपने राजधर्म्मार्थोंके जाननेवाले पहिले राजाओंके आचरित बहुतसे राजवृत्तका वर्णन किया है, वह सब पूर्व्वदृष्ट साधुसम्मत राजधर्म्म जिसे आपने विस्तार पूर्व्वक कहा है,—हे भरतश्रेष्ठ! उसे संक्षिप्त करके जो धारण किया जा सके, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महाराज! सब जीवोंको रक्षा करनी ही क्षत्रियधर्म्म है, यही सबसे श्रेष्ठ है, जिस प्रकार उनको रक्षा करनी होती है, उसे सुनो। सांपोंको खानेवाला मोर जैसे विचित्ररूपको धारण करता है, वैसे ही धर्म्मज्ञ राजा अनेक तरहके रूप धारण करे। क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य और सरलता इन सबके मध्यवर्त्ती होकर जो सतोगुणका अवलम्बन करता है, और वही राजा सुखी होता है, जिस विषयमें जो हितकर होता है, वही उस समयका रूप है अर्थात् दण्डके समय क्रूरता और अनुग्रहके समय शान्त्वना दिखावे, क्योंकि अनेक रूपधारी राजाके सूक्ष्म विषय भी नष्ट नहीं होते। जैसे शरदकालमें मोर मूक हुआ करता है, वैसे ही राजा मौनावलम्बन करके सदा मन्त्रणा गोपन करे; श्रीमान मधुर वचन बोलनेवाला और शास्त्र विशारद होवे। जलके झरनेके समान मन्त्रभेद आदि आपदोंके द्वारपर सदा सावधान रहे; पर्व्वतके समीप वर्षाके जलसे उत्पन्न हुई नदीके जल समान

किल ब्राह्मणोंके निकट पूर्ण रीतिसे आसरा ग्रहण करे; धर्म कामसे युक्त राजा धर्मध्वजीके समान शिखा धारण करे अर्थात् योग्यता चिन्ह क्रूरता आदि प्रदर्शित करे। राजा सदा दण्ड उद्यत करके प्रजा-पालनमें रत रहे; जैसे लोग ऊखको काटके पेरकर रस ग्रहण करते हैं, वैसा न करके जैसे बड़ेवृक्ष ताड़ और खजूर आदिकी रक्षा करके उनके रसको ग्रहण किया जाता है, राजा वैसे ही प्रजा समूहके आय व्ययको देखकर उनकी रक्षा करके उनसे धन ग्रहण करे।

राजा अपने पक्षके लोगोंके साथ शुद्ध व्यवहार करे और विरोधियोंके भूमिमें उत्पन्न हुए शस्य आदिकोंको घोड़े आदिकोंको चराके नष्ट करावे, सहायोंसे युक्त होकर युद्धके लिये यात्रा करे और अपनी विकलता देखके स्थिर रहे। बनमें फूल ग्रहण करनेकी तरह धन हरते हुए शत्रुओंके दोषोंको विस्तारित करे और मृगया आदिके छलसे दूसरेके राज्यमें जाके पराये पक्षको विवासित किया करे। दूसरेके किलेके स्वामीके साथ सन्धि करके देवता दर्शन आदि छलसे दूसरेके किलेमें अकस्मात् प्रवेश करके पर्वतके समान बड़े और उन्नत विरुद्ध राजाओंका विनाश करे; और आवश्यक छायाका आश्रा करके गुप्त रीतिसे रणकार्य्यका निबाहे। रात्रिमें मोरकी तरह प्रावृट् कालमें निर्जन स्थानमें निवास करे; मयूरके गुणका अवलम्बन करके अदृश्य होकर अन्तःपुरमें भ्रमण करे, कभी तलवार परित्याग न करे, आप ही अपनी रक्षा करे; दूतोंके मालूम हुए स्थानोंमें धावा, कञ्चुकी और रसोइये आदि शत्रुओंसे भेदित होनेपर अपनी और आते हुए विषादि रूप पाशको रोके। विष आदिके मालूम होनेमें कठिनता होने पर उस कपट-स्थानमें स्वयं जाके उसे नष्ट करे; विष देनेवाले कुटिल क्रूर पुरुषोंका बध करे।

स्थूल पक्ष अर्थात् सब सेनाके पक्ष-स्थानीय शिबिर सम्बन्धीय वार-वनिता अर्थात् नट-नर्त्तक आदिको नष्ट वा मोरकी तरह दूर कर देवे, दृढ़ मूल सेवक और शूरपुरुषोंको स्थापित करे। सदा मयूरकी तरह निज इच्छानुसार बड़े कार्य्योंका आचरण किया करे। शलभ-समूह जैसे घने बनमें प्रविष्ट होके बनको पत्तोंसे रहित करते हैं, वैसे ही राजा सेनाके सहित मिलकर शत्रु राज्यको आक्रमण करनेमें प्रवृत्त होवे। इसी भांति बुद्धिमान राजा मोरकी तरह निज राज्य पालन करे। बुद्धिसे आत्म-संयम अर्थात् इस प्रकार कार्य्य करना उचित है, ऐसा ही नियम करे; और दूसरेकी बुद्धिके अनुसार उस विषयका निश्चय करना योग्य है; शास्त्रमें कही हुई बुद्धि-शक्तिके जरिये आत्मगुणकी प्राप्ति होती है यही शास्त्रोंका प्रयोजन है। शान्त वचनसे दूसरेको विश्वास उत्पन्न करे और अपनी शक्ति दिखाता रहे, सब तरहसे बीते और अनागत विषयोंके विचारके जरिये ऊहापोह कौशलरूपी बुद्धि शक्तिसे कर्त्तव्य विषयोंके निश्चयका विचार करे। बुद्धिमान पुरुष सान्त्व-याग अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्यके प्रयोजक होवे और निगूढ़ बुद्धि और पृथक विषयमें उपदेशकी अपेक्षा न करे। जलमें डालनेसे जैसे गर्म लोहा उस ही समय शीतल होजाता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष बुद्धिशक्तिके जरिये बृहस्पतिके समान होके भी यदि निकृष्ट बात कहे अर्थात् अपनी निर्बुद्धि-प्रमादसे युक्त होवे, तब वे सदा युक्ति अवलम्बन करके निज भावके स्वास्थ्यकी इच्छा किया करे। राजा अपने वा दूसरेके आगमनके जरिये सब उपदिष्ट कार्य्योंकी जिज्ञासा करे। अर्थ विधानके जाननेवाले राजा कामके स्वभाव और बुद्धिमान तथा शूरपुरुष अथवा दूसरे जो बलशाली होवें, उन्हें निज कार्य्योंमें नियुक्त करे। अनन्तर आयतात्मा जैसे सब सर्दारोंको

अनुवर्त्तिनी होती है, वैसे ही वह उन लोगोंको भिन्न भिन्न योग्यतानुसार कार्य्योंमें नियुक्त रखकर सबका ही अनुवर्त्तन करे, धर्म्मके अनुसार विषयमें प्रिय आचरण करे। जिस राजाको प्रजासमूह 'ये हमारे हैं' ऐसा समझती है, वह पर्व्वतकी तरह अचल हुआ करता है। सूर्य्य जैसे बड़ी किरण मण्डलको प्रकाशित करता है, राजा वैसे ही कार्य्योंको सिद्ध करते हुए प्रिय और अप्रियको विषयके समान समझे सब प्रकारसे केवल धर्म्मकी रक्षा करे। जो लोग कुलके स्वभाव, देश विशेष करके धर्म्मज्ञ, मीठे वचन बोलनेवाले, मध्य अवस्था, निर्दोष, हित विषयमें रत, सावधान, लोभरहित, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्म्ममें निष्ठावान, धर्म्मज्ञ और अर्थ रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन्हीं पुरुषोंको राजा सब कार्य्योंमें नियोजित करे। राजा इसी प्रकार दूतोंके जरिये सब वृत्तान्त मालूम करे और सन्तुष्ट होकर इसी भांति आगम तथा जातिके विषयोंके जाननेमें नियुक्त होके भलीभांति सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। जिसके क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होते और जो स्वयं सब कार्य्योंको देखा करते हैं, तथा आत्मप्रत्ययही जिसका खजाना है, उस राजाके पक्षमें पृथ्वी ही वसुदायी हुआ करती है। जिसकी कृपा स्पष्टरीतिसे मालूम होती है, और जो यथार्थ जानके निग्रह करते है, और जो राजा आत्म-रक्षा करते हुए राज्यको रक्षा किया करते हैं, वेही राजधर्म्मके जाननेवाले हैं। उदय होते हुए सूर्य्य जैसे किरण मण्डलके जरिये मालूम होता है, वैसे ही राजा सदा निज राज्यको देखता रहे, और राज्य तथा पर राज्य विष-यक समाचारोंको मालूम करे और आप निज बुद्धिके प्रभावसे सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। राजा धन प्राप्त करनेके समय धन संग्रह करे और अर्थवत्ताके विषयको किसीके समीप प्रका-शित न करे; बुद्धिमान राजा प्रति दिन गऊ दुहनेकी तरह पृथिवीसे अन्न दुहा करे। जैसे भौंरा यथा क्रम फूलोंसे मधु ग्रहण करता है; वैसे ही राजा धीरे धीरे द्रव्य ग्रहण करके सञ्चय करे। शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान राजा सञ्चय करनेसे जो धन बाकी रहे, उसे ही धर्म्मार्थ और कामार्थमें व्यय करे। सञ्चित अर्थको कभी व्यय न करे, धन थोड़ा होनेपर भी उसे अग्राह्य न करे और शत्रुओंको भी अवज्ञा करनी उचित नहीं हैं। बुद्धिसे अपनेको समझावे और निर्बुद्धि पुरुषोंका विश्वास न करे। सन्तोष, दक्षता, सत्य, बुद्धि, देह, धीरज, वीरता, देश और समयमें अप्रमाद, थोड़े वा बहुत धनके विशेष रूपसे वृद्धि विषयमें ये आठ विषय उद्दीपक हुआ करते हैं। अग्नि थोड़ी होनेपर भी घृतसे युक्त होनेपर बढ़ती हैं, एक बीजसे सहस्र अंकुरे उत्पन्न हुआ करते हैं, इससे बहुतसे आय व्ययके विषयको पूरी रीतिसे सुन-कर थोड़े धनको कभी अवज्ञा न करे। प्राचीन शत्रुके बालक होनेपर भी उसे बालक समझना उचित नहीं है, क्यों कि वह विपक्षियोंको अत्यन्त प्रमत्त देखनेसे ही नष्ट करता है। समय पर अन्य पुरुष उसके मूलको हरण न करें; इससे समयके जाननेवाले पुरुष ही राजाओंके बीच वरिष्ट हैं। शत्रुकी कीर्त्ति हरण करे और उसके धर्म्ममें बाधा देवे और धन विषयक उसके कार्य्योंमें अत्यन्त ही विघ्न किया करे। वैर कर-नेवाला शत्रु निर्बल हो, वा बलवान ही होवे, ऊंचे चित्तवाले मनुष्य शत्रुसे किसी प्रकार हीन न होवें। क्षय, वृद्धि, पालन और सञ्चयका विचार करके बुद्धिमान राजा ऐश्वर्य्य काम और विजयकी इच्छावाले राजाके एकत्र मिलते देखके उसके साथ सन्धि करे; इससे बुद्धिमान पुरुषका आश्रय करना राजाको अवश्य उचित है। तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष बलवान पुरुषको नष्ट कर सकता है, बढ़ा हुआ बल बुद्धिके जरि-येसे ही प्रतिपालित हुआ करता है। बढ़े हुए

बैरीको बुद्धिबलसे नष्ट किया जाता है, इससे बुद्धिके अनुसार जो कार्य्य किया जाता है वह श्रेष्ठ है; दोष रहित और पुरुष सब काम्य विषयोंकी अभिलाष करके थोड़े बलसे ही उसे प्राप्त करते हैं; और जो अपनेको यासमान मनुष्योंसे युक्त होनेकी इच्छा करते हैं, वे अल्पमात्र कल्याण पात्रको पूर्ण नहीं कर सकते, इससे राजा प्रजाके विषयमें प्रीतियुक्त होकर सबके निकटसे लक्ष्मीके मूल धनको ग्रहण करे प्रजाको बहुत समय तक पीड़ित करके बिजली गिरनेको तरह उसके ऊपर पतित न होवे। उद्योगसे ही विद्या, तपस्या और बहुतसा धन होसकता है, वह उद्योग बुद्धिके वशमें होकर देहधारी पुरुषोंमें निवास करता है, इससे सदा उद्योग करनेमें यत्नवान होना उचित है। जिसमें बुद्धिमान मनस्वी लोग, सुरराज विष्णु और सरस्वती सदा वास करती हैं, और सब प्राणी सदा जिसमें स्थित रहते हैं। विद्वान् पुरुष उस शरीरको कभी अवज्ञा न करे। लोभी पुरुषको सदा दानसे वशमें करे, लोभी पराया धन पाके कभी तृप्त नहीं होता। सुख भोगनेमें सभी लोभी हुआ करते हैं; जो पुरुष धनहीन होता है, वह धर्म और कामको त्याग करता है। लोभी मनुष्य दूसरेके धन, भाग, पुत्र, स्त्री और समृद्धि सबकी ही इच्छा करता है। इस संसारमें लोभी पुरुषके विषयमें सब दोष ही सम्भव होसकते हैं; इससे राजा कभी लोभी पुरुषके विषयमें स्नेह प्रकाशित न करे; नीच पुरुषको देखते ही दूर करे; बुद्धिमान पुरुष शत्रुओंके सब कार्य्यों तथा समस्त विषयोंको नष्ट करें। हे पाण्डुपुत्र! ब्राह्मण मण्डलीमें विज्ञान युक्त मन्त्रोंको रक्षा करनी होगी, जो राजा विश्वासी और कुलीन है, वह सबको वश करनेमें समर्थ होता है। हे नरनाथ! यही सब मैंने विधिपूर्व्वक राजधर्मको संक्षेपरीतिसे वर्णन किया तुम इसे बुद्धिशक्तिके जरिये धारण करो। जो पुरुष गुरुका अनुसरण करते हुए यह सब धर्म हृदयमें धारण करते हैं, वेही पृथ्वीको पालन करनेमें समर्थ होते हैं। जिसे राजाके अनीतिके कारण हठ प्रणीत दैवसे प्राप्त हुआ सुख विधिपूर्व्वक दीखता है, उसकी गति तथा उसे श्रेष्ठ राज्य सुख प्राप्त नहीं होता। सन्धि-विग्रह आदि विषयोंमें सावधान राजा धन युक्त बुद्धि तथा शील सम्पन्न युद्धमें दृष्ट-पराक्रमी शत्रुओंको देखकर शीघ्रताके सहित उनका बध करे। अनेक क्रियासे मार्गके सहारे उपायको देखे, अनुपायमें बुद्धि न लगावे; निर्दोष पुरुषोंमें भी जो पुरुष दोष देखता है, वह योग्य स्त्री बहुतसे धन-यशको भोग नहीं कर सकता, सुहृदोंको जानके प्रीतिकी प्रवृत्ति होने पर जब दो मित्र एक कार्य्यमें लगते हैं, उन दोनोंके बीच जो पुरुष बड़े भारको उठाता है, विद्वान् पुरुष उसही श्रेष्ठ मित्रकी प्रशंसा करते हैं। हे राजन्! मेरे कहे हुए इन सब राज-धर्म्मोंका आचरण करो, मनुष्योंका पालन करनेमें बुद्धि लगाओ; इससे अनायास ही पुण्यफल पाओगे, क्योंकि धर्म्म ही सब लोकोंकी जड़ है।

१२० अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, पितामहके जरिये यह सनातन राजधर्म वर्णित हुआ; अत्यन्त बृहत् दण्ड ही सबका नियन्ता है, क्यों कि दण्डसे ही सब विषय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। देव, ऋषि, महानुभाव पितर, यक्ष, राक्षस और पिशाच लोग विशेष करके साध्य तथा तिर्य्यग् योनि आदि सब प्राणियोंके विषयमें सर्व्वव्यापी महातेजस्वी दण्ड श्रेष्ठ है, यह आपने कहा है। देवता असुर और मनुष्योंके सहित चराचर सब लोक ही दण्डमें आसक्त होरहे हैं। हे भरत प्रवर! इससे मैं इसे यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं, दण्ड किसे कहते हैं और वह कैसा है? उसका

कैसा व्यवहार है तथा उसका प्रभु कौन कहा है ? दण्डका कैसा स्वरूप है ? रीति कैसी है ? किस तरहकी मूर्त्ति है ? कैसा तेज है और वह प्रजाके विषयमें सावधान होके किस प्रकार जाग्रत रहता है ? पहिले क्या कहा जाता है, और दण्ड नाम कौन वस्तु है किस तरहकी है, दण्डका आकार किस तरहका है ; और उसकी गति किसे कहते हैं ?

भीष्म बोले, हे कुरुवंशावतंस ! दण्ड और उसका व्यवहार जिस तरहका है, उसे सुनो। इस लोकमें जिसमें सब अधिकार रहे, उसे ही केवल दण्ड कहा जाता है। महाराज ! पूरी रीतिसे धर्म्मका प्रकाश "व्यवहार" नामसे कहा जाता है। लोकके बीच सावधान स्वरूप राजाके विषयमें उस धर्म्मका लोप नहीं होता। इसी भांतिसे व्यवहारका व्यवहारत्व दृष्ट हुआ करता है, अवहार अर्थात् नीच मार्गोंके जरिये दूसरेका धन नहीं हरण किया जाता उसे ही व्यवहार कहते हैं। हे राजन् ! इसके अतिरिक्त पहिले समयमें मनुने यही वचन कहा, कि प्रिय और अप्रिय समान रूपसे उत्तम प्रणीत दण्डके जरिये जो पूर्ण रीतिसे प्रजा पालन करते हैं, वही केवल धर्म्म है। हे नरेन्द्र ! मैंने जो ब्रह्माके कहे हुए महत् वचनको कहा है, पहिले समयमें प्रथम मनुने इस वचनको कहा था ; पहिलेसे ही यह वचन कहा गया था, इस ही कारण पण्डित लोग इसे प्राक्-वचन कहा करते हैं। जिस धर्म्मसे परलोकपरायण दोष निवारित होता है, वही धर्म्म कभी हेतु व्यवहार नामसे कहा जाता है। सुप्रणीत दण्डमें धर्म्म अर्थ, काम ये तीनों सदा विद्यमान रहते हैं ; देव रूप उसके श्रेष्ठ हैं ; उसका रूप जलती हुई अग्निके समान है दण्डका आन्तरिक रूप दुष्टोंको कन्ताप्लित करनेवाला है, इसीसे क्रूरताके कारण अञ्जनकी समानता धारण करता है, दण्डका वर्ण नील कमलके दलके समान

श्यामवर्ण है, अर्थात् राजदण्डमें द्वेष और लोभ आदि रहनेसे उसमें मलिनता है ; उस होसे यह श्यामवर्ण है। कोई मानसदोषके कारण दण्डित होते हैं, कोई धन हरणके कारण दण्डित हुआ करते हैं ; कोई वाक्‌विकलताके सबब दण्ड पाते हैं, कोई प्राणनाशके निमित्त दण्ड भागी होते हैं ; इस ही कारण चारों निबन्धनसे प्राणियोंका वध हुआ करता है ; इससे दण्डको चतुर्द्दंष्ट्र कहा जाता है। प्रजा समूहसे धन वसूल, राज्यसे कर बिना वादी प्रतिवादीसे दूना धन ग्रहण करना और कायर ब्राह्मणोंसे सर्व्वस्व वसूल करना,—दण्डसे ये चार प्रकारके अर्थसंग्रह होते हैं, इसी कारण दण्डको चतुर्भुज रूपी कहा जाता है। वादी प्रतिवादीके निवेदन और उत्तर दान आदिक आठ प्रकारके कारणोंसे दण्ड भ्रमण करता है, इसीसे अष्टपाद कहाता है। राजा, सेवक, पुरोहित आदि बहुतोंसे देखते, इसीसे अनेक नेत्रवाला है। अवश्य सुनने योग्य हैं, इस ही निमित्त शङ्कुकर्ण अर्थात् तीखा श्रवणवाला है ; अत्यन्त उत्फुल्लित है, इसहीसे खड़े हुए रोएंवाला है ; अनेक सन्देहोंसे जटिल है, इसीसे जटी कहाता है। वादी प्रतिवादीके वाक्यके भिन्न मतके सबब दो जीभवाला है। आहवनीय अग्निही दण्डका नेत्र है, इस ही कारण ताम्रास्य कहाता है। काले हरिणके चमड़ेके जरिये दण्डको ढेके रहती है, इस ही कारण मृगराज तनुच्छद नाम हुआ है। दुर्द्धर्ष दण्ड सदा वह प्रचण्डरूप धारण किया करता है। तलवार, धनुष, गदा, भाला, त्रिशूल, मुद्गर, बाण, मूसल, फरसा, चक्र, पाश, दण्ड, ऋष्टि और तोमर आदिक इस लोकमें जो कुछ प्रहार करनेकी वस्तु हैं, दण्ड ही उस सर्व्वात्मा स्वरूपसे मूर्त्तिमान रूपी होकर घूमता है। छेद, भेद, रुज करना, कृन्तन, विदारण, विपाटन, घातन और सम्मुख दौड़ने

हुए दण्ड ही भ्रमण किया करता है। असि, विशसन, धर्म्म, तीक्ष्ण, धर्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, शास्ता, प्राग्वदहर, धर्मपाल, अक्षर, देव, सत्यग, नित्यग, अग्रज, असङ्ग, रुद्रतनय, मनु, जेष्ठ और शिवङ्कर है। हे युधिष्ठिर! दण्डके ये सब नाम वर्णित हुए। दण्ड ही भगवान विष्णु और दण्ड ही प्रभु नारायण है, सदा महत् रूप धारण किया करता है, इस ही निमित्त महत् पुरुष शब्दसे पुकारा जाता है। ब्रह्मकन्या लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, जगद्धात्री दण्डनीति अर्थात् दण्डके सहित नीति ये सभी दण्ड स्वरूप हैं; इससे दण्डका विग्रह अनेक प्रकारका है! हे भारत! अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्माधर्म, बलाबल, दौर्भाग्य, भागधेय पुण्यापुण्य, गुणागुण, काम अकाम, ऋतु मास, दिन, रात्रि, क्षण, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दैव, पुरुषार्थ मोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ, संयम, विष, अविष, अन्त, आदि, मध्य, कृत्य, सबका प्रपञ्चन, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ धैर्य्य, नीति, अनीति, शक्ति, अशक्ति, मान, स्तम्भ, व्यय, अव्यय, विनय विसर्ग, काल, अकाल, मिथ्या, ज्ञान, सत्य, श्रद्धा अश्रद्धा, क्लीवता, व्यवसाय, लाभ, हानि, जय, पराजय, तीक्ष्णता, मृदुता, मृत्यु, आगम, अनागम, विरोध अविरोध, कार्य्य, अकार्य्य, बलाबल, निन्दा, अनिन्दा, धर्म्म, अधर्म्म, अपत्रपा, अनपत्रपा, श्री, सम्पद, विपद, पद, तेज सब कर्म्म, पाण्डित्य, वाक्यशक्ति और तत्त्व बुद्धिता; हे कौरव्य! इसी प्रकारकी इस लोकमें धर्मकी बहुरूपता हुआ करती है। लोकके बीच यदि दण्ड न रहे, तो लोग आपसमें एक दूसरेको प्रमथित करें। हे युधिष्ठिर! दण्डभयसे ही लोग आपसमें प्रहार नहीं करते। हे राजन्! दण्डसे वध्यमान प्रजा सदा राजाको वर्द्धित करती है इससे दण्ड ही परम आश्रय है। हे नरेश्वर! सत्यसे युक्त धर्म्म शीघ्र ही उन सब लोगोंको अवस्थापित करता है; सत्यका पक्षपाती धर्म्म ब्राह्मणमूर्त्ति स्वरूप है। धर्म्मयुक्त सब ब्राह्मण वेदयुक्त हुआ करते हैं। वेदोंसे ही यज्ञ उत्पन्न हुआ है, यज्ञ देवताओंको प्रीतियुक्त किया करता है; देवता लोग प्रसन्न होकर सदा इन्द्रकी स्तुति करते हैं, इन्द्र भी उन सब प्रजा समूहके ऊपर कृपा करके अन्नदान किया करते हैं, सब प्राणियोंका प्राण सदा अन्नसे ही प्रतिष्ठित है, इससे प्रजासमूह भी अन्नमें प्रतिष्ठित हैं और दण्ड इन प्रजासमूहके विषयमें जाग्रत रहता है, इस ही भांति प्रयोजनके अनुसार दण्ड क्षत्रियत्वको प्राप्त हुआ और दण्ड सदा सावधान अक्षय होके प्रजाको रक्षा करते हुए जाग्रत रहता है। ईश्वर, पुरुष, प्राण सत्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन आठ नामोंसे दण्ड उक्त हुआ करता है। जो राजा बलसे युक्त, और धर्म्म व्यवहार, धर्म्म ईश्वर तथा जीव रूपसे पञ्चविध है; ईश्वरने उसे दण्ड और ऐश्वर्य्यदान किया है। हे युधिष्ठिर! सत्वंशमें उत्पन्न हुए धनशाली अमात्य, बुद्धि, आर्जस्विता, तेज और देह इन्द्रिय, वृद्धि-सामर्थ वा अनन्तर स्वाकथ वक्ष्यमान हाथी आदि आहार्य्य सब बल और राजाके कोष-वृद्धिका कारण है। हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, नौका, अवैतनिक बोझा ढोनेवाले, देश विशेषमें उत्पन्न हुए वस्तु और भेड़के रोम आदिकोंसे बने हुए आसन आदि राजाओंके अष्टाङ्ग बलरूपसे वर्णित हुए हैं; अथवा रथी, गजपति, गजारोही, घुड़सवार, पैदल सेना, मन्त्री, चिकित्सक, भिक्षुक, प्राड्विवाक, ज्योतिषी, दैवचिन्तक, कोष मित्र, धान्य सब सामग्री और सप्त-प्रकृति राज्यकी अष्टाङ्गयुक्त शरीर रूपसे समझे जाते हैं; परन्तु दण्ड ही राज्यकी आदि और दण्ड ही राज्यका कारण है। ईश्वरने जगतके भयसे सहित क्षत्रियोंके

निमित्त दण्ड प्रदत्त हुआ है, यह सब प्रिय अप्रिय सब स्वरूप दण्डके ही आधीन है। प्रजापतिके जरिये लोक रक्षाके वास्ते और स्वधर्म स्थापनके लिये, जिस प्रकार धर्म प्रदर्शित हुआ है, उस धर्मस्वरूप दण्डसे बढ़के राजाओंके वास्ते दूसरा कुछ भी पूजनीय नहीं है। स्वामीके विश्वाससे उत्पन्न और वादी, प्रतिवादीके जरिये प्रवर्त्तित व्यवहार, इस अन्यतरका अभ्युपगम जिसका लक्षण हित युक्त दीखता है, वह दण्डका भर्तृ-प्रत्यय लक्षण कहाता है। हे राजन्! परस्त्री गमन आदि दोषको निवृत्तिके वास्ते प्रायश्चित्त आदि जैसा दण्ड बताता वा वेद-प्रत्यय नामसे कहा जाता है; और कुलाचार युक्त व्यवहारमें मौल तथा अपर-दण्ड शास्त्रोक्त नामसे कहा जाता है। उन तीन प्रकारके दण्डके बीच पहिला दण्ड क्षत्रियके आधीन है; क्षत्रियोंमें दण्ड ज्ञान रहना अवश्य उचित है। हे नरेन्द्र-निष्ठ प्रत्यय लक्षणयुक्त दण्ड क्षत्रियोंको अवश्य जानना चाहिये। और परपक्ष क्षेपण तथा निज पक्ष साधनरूप व्यवहार दण्ड प्रत्यय इष्ट और मनु आदि महर्षियोंसे रक्षित होनेपर भी वह वेदार्थ गोचर हुआ है। दूसरे दो व्यवहार धर्ममूलक हैं। वेदसे उत्पन्न हुए धर्मको, गुणदर्शी, कृतात्मा मुनियोंके जरिये धर्मके अनुसार धर्म प्रत्यय कहके वर्णित हुआ है। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मोपदिष्ट व्यवहार प्रजासमूहकी रक्षा करता है, सत्य स्वरूप भूतिवर्द्धन व्यवहार ही तीनों लोकोंको धारण किये हैं। जो दण्ड नामसे कहलाता है, उसे ही सनातन व्यवहार रूपसे देखा जाता है; व्यवहारसे जो दीखता है, वही वेद है; ऐसा निश्चय है, कि जो वेद है, और जो धर्म है, उसे ही सत्मार्ग जाने। पहिले समयमें पितामह ब्रह्मा प्रजापति हुए थे, वह देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य और सर्पोंके सहित सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं, इस ही कारण उनका भूतकर्त्ता नाम हुआ है। उस प्रजापतिसे ही यह भर्तृ-प्रत्यय लक्षण व्यवहार प्रवर्त्तित होता है; उन्होंने इस व्यवहारका निदर्शन किया है, कि जो राजा निज धर्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं; उनके समीप माता, पिता, भाई भार्य्या और पुरोहित इन सबके बीच कोई भी अदण्ड नहीं हैं।

१२१ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, पुराने लोग इस दण्डकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। अङ्ग देशमें वसुहोम नामक एक विख्यात् राजा थे, वह महातपस्वी निज धर्मको जाननेवाले राजा भार्य्याके सहित पितरों और देवर्षियोंसे पूजित होकर मुञ्जपृष्ठमें गये थे सुवर्णमय सुमेरुके निकट उस हिमालयको शिखर पर जहां मुञ्ज वटके नीचे रामने जटा हरण की थी। हे राजेन्द्र! तभीसे व्रत करनेवाले, ऋषि लोग उस रुद्रसेवित प्रदेशको मुञ्जपृष्ठ कहा करते हैं। वह उस समय श्रुतिमय अनेक गुणोंसे युक्त होकर ब्राह्मणोंकी अनुहार तथा देवर्षि समान हुए थे। किसी समय इन्द्रके सम्मानित सखा निर्भय चित्तवाले राजा मान्धाता उनके निकट उपस्थित हुए। मान्धाता वसुहोमको प्रकृष्ट तपसे युक्त देखकर विनीत भावसे उनके सम्मुख स्थित हुए। वसुहोमने भी राजा मान्धाताको पाद्य, अर्घ दिया और सप्ताङ्ग राज्यका मङ्गल अमङ्गल पूंछने लगे। पहिले समयमें साधुओंके आचरणके यथावत् अनुयायी उस मान्धातासे वसुहोमने पूंछा। हे राजन्! मैं आपका क्या कार्य करूं? हे कुरुनन्दन! राजसत्तम मान्धाता परम प्रसन्न होकर बैठे हुए महाबुद्धिमान वसुहोमसे कहने लगे।

मान्धाता बोले, हे नरसत्तम महाराज! आपने बृहस्पतिका सब मत अध्ययन किया है

और शुक्राचार्य्यके सब शास्त्रोंको भी आप जानते हैं; इससे दण्ड किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, मैं इसे जाननेकी अभिलाषा करता हूं। इस दण्डके पहिले क्या जाग्रत रहता है और क्या श्रेष्ठ करके वर्णित होता है? सम्प्रति दण्ड किस प्रकार क्षत्रियोंमें युक्त होकर स्थित होरहा है? हे महाबुद्धिमान्! आप मुझसे यही कहिये, मैं आचार्य्यका वेतन प्रदान करूंगा।

वसुहोम बोले, हे राजन्! प्रजासमूहके विनय रक्षाके निमित्त धर्म्म स्वरूप सनातन लोक संग्रहमें समर्थ दण्ड जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, उसे सुनो। सब लोगोंके पितामह भगवान ब्रह्माने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने समान ऋत्विक किसीको न देखा। मैंने ऐसा सुना है, कि उस देव प्रजापतिने मस्तकके जरिये कई वर्ष पर्य्यन्त गर्भ धारण किया था; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर उसके क्षुत होनेके समय वह गर्भ गिरा। हे शत्रुनाशन! उस ही गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक क्षुप नाम प्रजापति हुआ। हे महाराज! महानुभाव ब्रह्माके यज्ञमें वही ऋत्विक हुए थे। हे राजन्! प्रजापतिके उस यज्ञके आरम्भ होने पर दृष्टरूपका मुख्य कारण वह दण्ड अन्तर्द्धान हुआ। दण्डके अन्तर्द्धान होने पर प्रजा वर्णसङ्कर होने लगी, कार्य्य, अकार्य्य, भोज्य, अभोज्यका कुछ भी विचार न रहा। तब पेय और अपेय विषयोंमें विचार क्यों रहेगा? उस समय गम्य वा अगम्य कुछ भी न रहा, अपना धन और पराया धन समान हुआ; जैसे सारमेय मांसको हरण करते हैं, वैसे ही सब कोई आपसमें एक दूसरेके धनको हरनेमें प्रवृत्त हुए; बलवान लोग निर्ब्बलोंको मारने लगे; सब ही मर्य्यादा रहित होगये।

अनन्तर पितामह ब्रह्मा सनातन देव वरदाता महादेव विष्णुको पूर्व्व रीतिसे पूजा करके बोले, हे केशव! इस विषयमें आपको कृपा करनी उचित है, जिससे प्रजा वर्णसङ्कर न होवे, आप वैसी ही उपाय करिये। अनन्तर देवसत्तम वह शूलधारी भगवान बहुत समयतक विचार करके आपसे ही आपनेको दण्ड रूपसे उत्पन्न किया; उससे धर्म्माचरणके कारण नीतिरूपी सरस्वती देवीने तीनों लोकमें विख्यात दण्डनीतिको उत्पन्न किया। शूलधारी भगवानने फिर कुछ देर ध्यान करके उसही दण्डकालके वास्ते एक एक पुरुषको अधीश्वर कर दिया। और सहस्र नेत्रवाले देवराजको देवताओंका ईश्वर किया; वैवस्वत यमको पितरोंकी प्रभुता दी; धन और राक्षसोंको अपने वशमें रखनेके वास्ते कुवेरके ऊपर भार अर्पण किया, सुमेरुको शैलपति और समुद्रको सरित्पति किया। जल और असुरोंके राज्यपर वरुणको प्रभुत्व करनेका भार दिया। मृत्युको प्राण और कुतापनको तेजका स्वामी बनाया। महानुभाव विशालाक्ष महादेव ईशानको रुद्रगणका रक्षक और प्रभु कर दिया। वशिष्ठको ब्राह्मणों और अग्निको वसुओंका स्वामी बनाया सूर्य्यको तेज और चन्द्रमाको नक्षत्रोंकी प्रभुता दी। अंशुमानको लता समूहका ईश्वर किया और द्वादश राहु कुमार स्कन्दको भूतोंके ऊपर शासन करनेकी आज्ञा दी। हे नरनाथ! संहार करनेवाले कालको सबका ईश्वर किया; शस्त्र, शत्रु, रोग और भोजन मृत्युके ये चार विभाग सुख और दुःख सर्व्वदेवमय राजोंका राजा काल ही सबका ईश्वर है। शूलपाणि सब रुद्रगणोंके स्वामी हैं, ऐसे ही जन श्रुति है। महादेवने प्रजासमूहके स्वामी सब धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ उस ब्रह्माके पुत्र क्षुपको पहिले इस दण्डका रक्षक किया था। अनन्तर उस यज्ञके विधिपूर्व्वक पूर्ण होनेपर महादेवने उस दण्डका सत्कार करके धर्म्म रक्षक विष्णुके ऊपर उसका भार अर्पित किया, विष्णुने उसे अङ्गिराको प्रदान किया, मुनिसत्तम अङ्गिराने इन्द्र और मरीचिको,

मरीचिने भृगुको और भृगुने ऋषियोंको वह धर्म्म युक्त दण्ड दान किया। ऋषियोंने लोक पालोंको और लोकपालोंने उसे क्षुपको दिया, अनन्तर क्षुपने आदित्य पुत्र मनुको उसे अर्पण किया श्राद्धदेवने सूक्ष्म धर्म्म-अर्थके कारणसे पुत्रोंको समर्पण किया। न्याय अन्यायको विचारके धर्म्मके अनुसार दण्ड विधान करना चाहिये; इच्छानुसार दण्ड देना उचित नहीं है। दुष्ट पुरुषोंके निग्रह करनेको दण्ड कहते हैं, सुवर्ण आदि दण्ड लोगोंका विभीषिका दिखाने मात्रके लिये होता है; शरीरको अङ्ग हीनता और वधका दण्ड अल्प कारणसे नहीं होता। शारीरिक दण्ड ऊंचे स्थान परसे गिरना रूपी देह त्याग तथा निजदेशसे निकाल देना ये विविध दोषके दण्ड हैं। सूर्य्य पुत्र मनुने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते उस दण्डको यथा रीतिसे दान किया था; यह दण्ड ही प्रजाका पालन करते हुए जाग्रत रहता है। भगवान इन्द्र सदा जाग्रत होरहे हैं, इन्द्रसे विभावसु अग्नि जाग्रत हैं, अग्निसे वरुण जाग्रत हैं; प्रजापतिसे विनयात्मक धर्म्म निरन्तर जाग्रत रहता है; धर्म्मसे ब्रह्मपुत्र व्यवसाय, व्यवसायसे तेज प्रजा पालन करते हुए जाग्रत है; तेजसे औषधी, ओषधियोंसे पर्व्वत, पर्व्वतोंसे रस और रस गुण जाग्रत रहते हैं; उससे निर्ऋतिदेवी जागरित होती है, निर्ऋतिसे ज्योतिर्गणसे जाग्रत हुआ करते हैं; ज्योतिर्गणसे वेद प्रतिष्ठित होता है, उससे प्रभु हयशिरा जाग्रत होते हैं, उनसे अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जाग्रत हुआ करते हैं; पितामह भगवान शिवस्वरूप महादेव जागरित होते हैं, शिवसे विश्वदेव और विश्वदेवोंसे ऋषि लोग; ऋषियोंसे भगवान चन्द्रमा, चन्द्रमासे सनातन देवता लोग और देवताओंसे जगत्‌के बीच ब्राह्मण लोग जाग्रत रहते हैं; इसे धारण करी, ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय लोग धर्म्मके अनुसार सब लोगोंकी रक्षा करते हैं; क्षत्रियोंसे स्थावर जङ्गम आदि सब प्रजा इस लोकमें जाग्रत ही रही है; और दण्ड उन प्रजा समूहके ऊपर जागरित होके निवास करता है। पितामहकी समान प्रभावसे युक्त दण्ड सबको ही संग्रह करता है; हे भारत! पहिले, मध्य और अन्तमें जाग्रत रहता है। सब लोकोंके ईश्वर महादेव प्रजापति देवोंके देव सर्व्वमय कपर्द्दी शङ्कर रुद्र भव स्थाणु उमापति प्रभु शिव सदा जागरित रहते हैं, आदि, मध्य और अन्तमें इसी भांति दण्ड विख्यात है। धर्म्म जाननेवाला राजा यथारीतिसे इस दण्डकी धारणा करते हुए वर्त्तमान रहे।

भीष्म बोले, हे भारत! जो मनुष्य इस वसुहोमके मतको सुनते और सुनकर पूर्णरीतिसे अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त काम्य विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे राजन्! यही तो दण्डका सब विषय मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; दण्ड ही धर्म्मसे आक्रान्त सब लोकोंका नियन्ता है।

१२२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे तात! धर्म्म, अर्थ और कामके निश्चयको सुननेकी इच्छा करता हूं, लोकयात्रा पूर्णरीतिसे किसमें प्रतिष्ठित हुआ करती है? धर्म्म, अर्थ और कामका मूल क्या है और इस त्रिवर्गकी उत्पत्तिका कारण ही क्या है? ये सब परस्पर मिलित और पृथक् पृथक् होकर किस निमित्त स्थिति करते हैं?

भीष्म बोले, मनुष्य लोग जब जगत्‌के बीच धर्म्मपूर्व्वक अर्थ निश्चय करनेके वास्ते सुचित्त होते अर्थात् मैं गर्भाधानमें कही हुई विधिके अनुसार ऋतुकालमें निज स्त्रीका सङ्ग करके पुत्र लाभ करूंगा; मनुष्यके मनमें जब ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय धर्म्म अर्थ और काम यह त्रिवर्ग काल प्रभव होके एकत्र मिलता है, धर्म्म ही अर्थका मूल है और काम अर्थका

फल है; यह इच्छा उत्पन्न हुआ करता है; और कामका मूल इन्द्रिय प्रीति है, धर्म, अर्थ, काम ये तीनों ही सङ्कल्प मूलक तथा सङ्कल्प रूप आदि विषयात्मक हैं। रूप आदि सब विषय योग-प्रयोजक त्रिवर्गके मूल हैं और निवृत्तिको ही मोक्ष कहते हैं। धर्मके निमित्त शरीरकी रक्षा अर्थात् आरोग्यताके वास्ते धर्मको सेवा करनी उचित है और धर्मके लिये ही धन उपार्जन न करना योग्य है और कामका फल रति है, इससे धर्म, अर्थ, काम, ये तीनों रजोगुण प्रधान हैं। आत्मज्ञान फलरूप सन्निकृष्ट धर्म, अर्थ, काम भी उस आत्मज्ञानके प्रयोजकके कारण उस समय सन्निकृष्ट होते हैं, इस समय उनकी सेवा करनी चाहिये; मनसे भी इनका परित्याग न करे। चित्तशुद्धिके वास्ते धर्म, निष्काम कर्मोंके वास्ते अर्थ और देह धारण मात्रके कारण कामकी सेवा करनी उचित है, तपसे रहित मनुष्य कामके अनन्तर धर्म आदिकोंको मनसे भी परित्याग न करे; इससे स्वरूपसे परित्याग और सुदूर पराहत होवे। धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी निष्ठा सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही विद्यमान है। यदि मनुष्य उस मोक्षके पानेका अभिलाषी हो, तो पहिले उसे निष्काम होना होगा, बिना निष्काम हुए मोक्ष लाभ नहीं होता। धर्मके वास्ते अर्थ और अर्थके लिये धर्म इस विषयमें अज्ञानताके कारण निकृष्ट बुद्धि अर्थात् निर्बुद्धि मूढ़ मनुष्य ऊपर कहे हुए धर्म और अर्थके फलको नहीं पाते; इससे धर्म और अर्थका फल मोक्ष ही अव्यभिचारी है, ऐसे निश्चय जाने। धर्मको फलाभिसन्धि ही मलस्वरूप है; अर्थका दान और भोग न करना ही मलस्वरूप है; केवल प्रीतिके वास्ते काम सेवन कामका मलस्वरूप है; इससे वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, फलाभिसन्धान दान भोग और प्रीतिसे रहित होनेपर फिर बहुत फल अर्थात् चित्तशुद्धि करके ब्रह्मानन्द फल प्रदान किया करता है। इस विषयमें कामन्दक और आङ्गरिष्ट इन दोनोंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको पण्डितोंके आश्रयसे लोग प्रमाण किया करते हैं। राजा आङ्गरिष्टने सुखसे बैठे हुए कामन्दक ऋषिको प्रणाम करके मर्यादा भङ्ग विषयका प्रश्न किया। हे ऋषि! जो राजा काम और मोहके वशमें होकर पापाचरण करता है, उस पश्चात्ताप युक्त राजाका पाप किस प्रकार नष्ट होता है? जो मनुष्य अज्ञानके कारण अधर्मको धर्म समझके आचरण करता है, लोकमें विख्यात उस अधर्मको राजा किस उपायसे निवारित करे?

कामन्दक बोले, जो पुरुष धर्म और अर्थको त्यागके केवल कामका अनुवर्त्ती होता है, वह धर्म, अर्थ परिहार निबन्धनसे इस लोकमें बुद्धिसे हीन हुआ करता है। बुद्धिनाश करनेवाला मोह धर्म, अर्थका नाशक हो जाता है, उससे नास्तिकता और दुराचारकी उत्पत्ति होती है। राजा यदि एकबारगी दुष्ट दुराचारोंको निवारण न कर सके, तो प्रजा घरमें स्थित सर्पके समान उन दुराचारोंसे व्याकुल हुआ करती है। प्रजासमूह, ब्राह्मण और साधु लोग वैसे राजाके अनुवर्त्ती नहीं होते। अनन्तर वह संशय युक्त होकर बध्य होता अथवा अपमानित वा अवनत होकर अत्यन्त दुःखसे जीवित रहता है, अपमान युक्त होके जीवित रहना, वह केवल मृत्युके समान है। पण्डितोंके आचार्योंने इस विषयमें सब प्रकार पापकी निन्दा किये हैं; इससे त्रयी विद्या सेवन और ब्राह्मणोंका सत्कार करना अवश्य उचित है। धर्म विषयमें बड़े चित्तवाला होवे और महत् वंशमें विवाह करे। क्षमाशील मनस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करे, स्नानशील होके जप करे और सदा सुखसे स्थित रहे। दुष्कर्मी मनुष्योंको दूर करके धर्मात्मा पुरुषोंके समीप गमन करे, मीठे वचन अथवा कर्मोंसे सबको प्रसन्न रखे,

दूसरेके गुणोंको वर्णन करते हुए मैं आपही को सबके समीप यह कथा कहूंगा। निष्पाप मनुष्य ऐसा आचरण कर करनेसे शीघ्र ही सबके आदरका पात्र होता है और सब पापोंको नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। गुरु लोग जो परम धर्म्मका विषय कहा करते हैं, तुम उस धर्म्मका वैसा ही आचरण करो; गुरुओंकी कृपासे तुम परम कल्याणको प्राप्त होगे।

१२३ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! भूमण्डलमें ये सब मनुष्य लोग सदा शीलको ही धर्म्मका कारण कहके उसकी प्रशंसा किया करते हैं; इस विषयमें एकबारगी मुझे महान् संशय होरहा है। हे धार्म्मिक प्रवर! यदि उसे जाननेकी मुझमें सामर्थ्य हो, तो वह जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब सुननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तावर भारत! किस प्रकार वह शीलता प्राप्त हो सकती है और उसका कैसा लक्षण है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे मानद महाराज। पहिले दुर्योधनने भाइयोंके सहित इन्द्रप्रस्थमें तुम्हारा वह अतुल ऐश्वर्य्य देखकर सन्तापित और सभामें उपहसित होकर पिताके समीप वह सब वर्णन किया था। तब धृतराष्ट्रने दुर्योधनका वचन सुनके कर्णके साथ बैठे हुए उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! तुम किस कारण सन्तापित होते हो, मैं उसे यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं; सुनने पर यदि मुझे उपयुक्त बोध होगा, तो तुम्हें उपदेश करूंगा। हे पर पुरञ्जय! तुमने परम ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है; भ्राता, मित्र और सम्बन्धी लोग सदा तुम्हारी आज्ञामें रत हैं; बड़े मन्दिर, वस्त्र, गात्रावरण और पक्वान्न भोजन भोग करते हो, उत्तम घोड़े तुम्हें ले चलते हैं; तो भी तुम किस कारणसे पाण्डुवर्ण और कृश होरहे हो?

दुर्य्योधन बोले, हे भारत! युधिष्ठिरके गृहमें दश हजार महानुभाव स्नातक ब्राह्मण लोग नित्य स्वर्णपात्रमें भोजन करते हैं, पाण्डवोंकी दिव्य फल फूलोंसे शोभित वह दिव्य सभा और तीतर पक्षीके समान विचित्र रूपके घोड़े, अनेक तरहके वस्त्र और राज राजके समान बड़ी और शुभकरी समृद्धि देखनेके समयसे ही चिन्ता कर रहा हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे तात नरवर! युधिष्ठिरकी जैसी समृद्धि है, तुम यदि वैसे वा उससे अधिक ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हो, तो तुम शीलवान बनो, हे पुत्र! सद्व्यवहारके जरिये तीनों लोक जय किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है, इस लोकमें शीलवान मनुष्योंसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है। मान्धाताने एक रात्रि, जनमेजयने तीन रात्रि और नाभाग राजाने सात रात्रिमें पृथ्वी लाभ की थी; वे सब राजा शीलवान और दयायुक्त थे; इससे वसुन्धरा गुण क्रीता होकर स्वयं उनके निकट उपस्थित हुई थी।

दुर्य्योधन बोले, हे भारत! जिस शीलके सहारे उन लोगोंने शीघ्र ही पृथ्वीको प्राप्त किया था; किस प्रकारसे वह शील प्राप्त होता है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे भरतवंश प्रसूत पुत्र! महर्षि नारदने शीलका आश्रय करके पहिले जो प्राचीन इतिहास कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उसका प्रमाण दिया करते हैं। प्रह्लादने दैत्य होके भी शील अवलम्बन करके इन्द्रके राज्यको हरण और तीनों लोकोंको अपने वशमें किया था। हे कुरुवंश धुरन्धर! अनन्तर महाबुद्धिमान् मरुत्वान् हाथ जोड़के बृहस्पतिके समीप उपस्थित हुए और बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं। तब भग-

वान् बृहस्पति उस देवेन्द्रके परम आत्माका सम्बन्धीय अर्थात् मोक्षके उपयोगी ज्ञानका विषय कहने लगे। बृहस्पतिने मोक्षके उपयोगी ज्ञानको कथा कहके "यही श्रेय है" ऐसा ही कहा। देवराजने फिर पूछा, कि निःश्रेयससे भी कुछ कल्याणदायक है वा नहीं उसे विशेष रूपसे वर्णन करिये।

बृहस्पति बोले, हे तात सुरराज! इस विषयमें जो कुछ विशेष है, वह महानुभाव भार्गवसे छिपा नहीं है; इससे तुम उनके समीप जाके इस विषयको पूछो; तुम्हारा मङ्गल होगा। महातपस्वी परम तेजस्वी देवराज अपने कल्याण लाभके लिये प्रीतिपूर्वक भार्गवके समीप गये और उस महानुभाव दैत्यगुरुसे अनुज्ञात होकर इन्द्रने उनसे पूछा, कि श्रेय क्या है? सर्वज्ञ शुक्राचार्य्य बोले, महानुभाव प्रह्लादको इस विषयका विशेष ज्ञान है; इन्द्र ऐसा सुनकर हर्षित हुए। अनन्तर मेधावी पाकशासन ब्राह्मणका वेश धरके प्रह्लादके निकट जाकर बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं।

प्रह्लाद बोले, हे द्विजवर! मैं तीनों लोकके राज्यको शासन करनेमें सदा तत्पर रहता हूं, इससे मुझे एक क्षणभर भी फुर्सत नहीं है, इसीसे तुम्हें उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूं।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! जब आपको अवसर मिलेगा, तभी मैं उत्तम आचरणीय विषयके उपदेशको ग्रहण करनेकी अभिलाष करता हूं। अनन्तर राजा प्रह्लाद प्रसन्न हुए और "ऐसा ही होगा"—ब्राह्मणसे यह वचन कहके उस शुभक्षणमें, उसे ज्ञानतत्व प्रदान किया। ब्राह्मण भी यथा न्यायसे जिस प्रकार गुरुके साथ व्यवहार करना होता है और उनके अन्तःकरणमें जैसी अभिलाष थी, सब तरह उसे प्रदर्शित करने लगा, और बारम्बार पूछा, हे अरिन्दम! आपने किस प्रकार तीनों लोकके राज्यको प्राप्त किया है? हे धर्मज्ञ! वह कारण मेरे समीप कहिये। हे महाराज! प्रह्लादने उस समय उस ब्राह्मणके प्रश्नका यह उत्तर दिया।

प्रह्लाद बोले, हे विप्र! मैं अपनेको राजा समझके कदापि ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, इन लोगोंके शुक्राचार्य्यके वचन हुए नीतिशास्त्रकी व्याख्या करनेके समय मैं उसे सुनकर धारण किया करता हूं, वे लोग विश्वासी होकर उसे कहते हुए मुझे नियमित करते हैं। मैं शुक्राचार्य्यके कहे हुए नीतिमार्गमें सदा वर्त्तमान रहता हूं, ब्राह्मणोंकी सेवा करता हूं, कभी उन लोगोंकी निन्दा नहीं करता। जैसे मधु मक्खियां सदा क्षौद्र पटल (छत्ते) मे मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही वे शासन करनेवाले ब्राह्मण लोग मुझे धर्म्मात्मा, जितेन्द्रिय और सदा जित क्रोध जानके शास्त्र वचनसे सेचन किया करते हैं। मैं वाङ्मय शास्त्रोंके मुख्य विद्यारसको ग्रहण करते हुए नक्षत्रमण्डलोंके बीच स्थित चन्द्रमाकी तरह निज जातिके बीच निवास करता हूं। गुरुके कहे हुए शास्त्रको सुनकर उसके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त होना ही पृथ्वीके बीच अमृतरूपी और यही उत्तम नेत्रस्वरूप है। प्रह्लादने उस ब्राह्मणसे यही श्रेय है, -ऐसा ही कहा, और उस समय दैत्यराज्य उस ब्राह्मणसे पूजित होकर बोले, हे द्विजसत्तम! तुमने मेरे साथ गुरुकी तरह व्यवहार किया है, उससे मैं प्रसन्न हुआ हूं; इससे तुम जो वर मांगोगे, तुम्हें वही दान करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; तुम्हारा मङ्गल होगा। ब्राह्मणने उस समय दैत्येन्द्रसे कहा, मैंने वर मांगा; प्रह्लाद प्रसन्न होकर वर ग्रहण करो; ऐसा ही बोले।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आप यदि प्रसन्न होकर मेरी प्रिय कामना करते हैं, तो मैं आपका शील प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं;

यही मेरी प्रार्थना है। अनन्तर दैत्यराज प्रसन्न हुए परन्तु उन्हें अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ; ब्राह्मणके वर मांगनेपर "ये अल्प तेजस्वी नहीं हैं,"—ऐसा ही निश्चय किया। अन्तमें प्रह्लाद विस्मित होकर "ऐसा ही होवे" यह वचन कहा और उस ब्राह्मणको वरदान करके दुःखित हुए। हे महाराज! वरदानके अनन्तर ब्राह्मणके जानेपर प्रह्लादको बहुत चिन्ता उत्पन्न हुई; वह उस समय कुछ भी निश्चय न कर सके। हे तात! जब वह चिन्ता कर रहे थे, तब तेजोमय विग्रहयुक्त छायाभूत महाते जस्वी शीलने उनके शरीरको परित्याग किया। प्रह्लादने उस समय उस महाकायसे कहा, आप कौन हैं? वह बोला, हे राजन्! मैं शील हूं, तुमने मुझे परित्याग किया, इससे जाता हूं, जो शिष्य होकर सदा तुम्हारे निकट स्थित थे, मैं उस ही अनिन्दित द्विजवरके शरीरमें वास करूंगा। तेजोमय शील ऐसा कहके अन्तर्ज्ञान हुआ और इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया। शील-स्वरूप तेजके जानेपर वैसे ही रूपसे युक्त दूसरा एक पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला, तब उन्होंने उससे कहा आप कौन हैं? वह बोला हे प्रह्लाद! मैं धर्म्म हूं, जिस स्थानमें वह द्विज सत्तम है, मैं वहां ही जाऊंगा। हे दैत्यराज! शील जिस स्थानमें जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं।

महाराज! अनन्तर और एक पुरुष मानो तेजसे प्रज्वलित होकर प्रह्लादके शरीरसे बाहर हुआ। उन्होंने पूछा आप कौन हैं? प्रह्लादके ऐसा पूछनेपर वह महातेजस्वी बोला, हे असु-रेन्द्र! मैं सत्य हूं। इस समय धर्म्मका अनुग-मन करूंगा। सत्यने ऐसा कहके धर्म्मके पीछे गमन किया। फिर दूसरा एक महान पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला और वह महाबल-वान पूछेजानेपर बोला, हे प्रह्लाद! मैं वृत्त हूं, सत्य जहां रहता है मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। वृत्तके जानेपर प्रह्लादके शरीरसे महाशब्द बाहर हुआ और पूछनेपर बोला, मैं बल हूं। वृत्त जहां जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। हे नरनाथ! बल ऐसा कहके जहां वृत्त गया था, वहां ही चला गया। अनन्तर उनके शरीरसे एक प्रभा-मयी देवी बाहर हुई! दैत्यराज प्रह्लादके पूछनेपर श्रीने उनसे कहा, हे सत्यपराक्रमी वीरवर! मैं स्वयं तुम्हारे शरीरमें निवास करती थी, इस समय तुमसे परित्यक्त होनेसे जाती हूं; मैं बलकी अनुगामिनी हुआ करती हूं। अनन्तर महानुभाव प्रह्लादके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न हुआ। वह फिर बोले, हे कमला-लये! तुम कहां जाती हो? तुम्ही सत्यव्रत धारिणी लोकको परमेश्वरी देवी हो। वह द्विजवर कौन थे? इसे मैं यथार्थ रूपसे जान नेकी इच्छा करता हूं।

लक्ष्मी बोली, हे राजन्! जो ब्रह्मचारी होकर तुम्हारे निकट शिक्षित हुए थे, वह देवराज इन्द्र हैं; तीनों लोकमें तुम्हारा जो कुछ ऐश्वर्य्य था, वह उन्हींके जरिये हरण हुआ है। हे धर्म्मज्ञ! तुमने शीलके सहारे तीनों लोक जय किया था; सुरराजने उसे मालूम करके तुम्हारे उस शीलको हरण किया है। हे महाबुद्धिमान्! धर्म्म, सत्य, वृत्त, बल और मैं शील ही हम सब लोगोंका मूल है; इस विष-यमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसा ही कहके लक्ष्मी और सत्य आदि सबने गमन किया था। इधर दुर्य्योधन फिर पितासे बोले, हे कौरव नन्दन! मैं शीलके वृत्तान्तको विदित होनेकी इच्छा करता हूं। जिसके जरिये शीलता प्राप्त की जा सकती है, आप वह उपाय कहिये।

धृतराष्ट्र बोले, वह उपाय पहिले ही महा-नुभाव प्रह्लादके द्वारा वर्णित हुई है। हे नरेश्वर! इस समय शील प्राप्तिके विषयका

संक्षेपमें कहता हूं सुनो वचन, मन और कर्मसे सब प्राणियोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करना, कृपा प्रकाश करने और दान, ये ही शीलके बीच श्रेष्ठ होते हैं। अपना कर्म वा पौरुष जो दूसरेको हितकर न हो और जिससे दूसरेके समीप लज्जित होना पड़े, किसी प्रकार भी उसका अनुष्ठान करना उचित नहीं है। जिसके जरिये सभामें बड़ाई प्राप्त हो सकती है, सदा वैसा कार्य्य करना चाहिये। हे कुरुसत्तम! यही तो मैंने तुमसे संक्षेपमें शीलका विषय कहा। हे राजन्! शीलहीन मनुष्य जो कदापि श्रीसे युक्त हो, तौभी वह बहुत समयतक उस श्रीको भोग करनेमें समर्थ वा बद्धमूल नहीं होता है।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! हे तात! यदि युधिष्ठिरसे भी अधिक ऐश्वर्य्य लाभ करनेकी इच्छा करते हो, तो इसे यथार्थ रूपसे जानके शीलवान बनो।

भीष्म बोले, राजा धृतराष्ट्रने निज पुत्र दुर्य्योधनसे यह कथा कही थी। हे कुन्तीनन्दन! तुम ऐसा ही आचरण करो, अवश्य ही इसका फल पाओगे।

१२४ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषके विषयमें शील ही मुख्य है, यह तो आपने वर्णन किया, परन्तु आशा किस प्रकार उत्पन्न हुई है और वह आशा क्या है? उसे आप मेरे समीप कहिये। हे पितामह! इस विषयमें मुझे बहुत ही संशय उत्पन्न हुआ है; हे पर पुरञ्जय! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस संशयको छुड़ानेवाला नहीं है। हे पितामह! युद्ध उपस्थित होने और बिना युद्धके भी दुर्य्योधन अद्धराज्य प्रदान करेगा, उसके विषयमें मुझे यह बड़ी आशा थी; पुरुष मात्रको ही महती आशा उत्पन्न होती है; उस आशाके नष्ट होनेपर दुःखकारी मृत्यु होती है, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! उस दुष्टात्मा धार्त्तराष्ट्रने मुझे दुर्बुद्धि और हताश किया है; मेरी मन्दात्मता देखिये। मैं वृक्षोंसे युक्त पहाड़को भी आशाकी अपेक्षा वृहत् समझता हूं; हे राजन्! आशा आकाशसे भी अप्रमेय है। हे कुरुश्रेष्ठ! यह आशा अचिन्तनीय और एकबारगी दुर्लभ है; दुर्लभत्व निबन्धनयुक्त दूसरे किसी विषयको भी इससे अधिक दुर्लभ नहीं देखता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप सुमित्र और ऋषभके सम्वाद युक्त इतिहासको वर्णन करता हूं, सुनो।

हैहयवंशीय सुमित्र नाम राजऋषि मृगयाके वास्ते जाके नतपर्व्व बाणसे एक मृगको विद्ध करके बनमें भ्रमण कर रहे थे। अत्यन्त विक्रमसे युक्त वह मृग बाणसे विद्ध होकर गमन करने लगा; राजाने भी शीघ्रताके सहित बलपूर्व्वक उस मृगयूथपतिका अनुसरण किया। हे राजेन्द्र! अनन्तर वह शीघ्रगामी कुरङ्ग मुहूर्त्त भरमें निम्न स्थल और समतल मार्गमें दौड़ने लगा। अन्तमें वह तनुत्राणसे युक्त राजा धनुष और तलवार ग्रहण करके यौवन बलसे भ्रमण करते हुए अकेलेही नद, नदी, पल्वल और बन अतिक्रम करते हुए बनचारी होकर घूमने लगे। शत्रुनाशन राजा उसके मर्म्मको छेदनेवाला तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके धनुषपर चढ़ाया। अनन्तर मृगयूथपति मानो हंसी करते हुए बाणके मार्गका परित्याग करके दो कोसकी दूरीपर स्थित हुआ। जलता हुआ तेजसे युक्त बाण पृथ्वीपर गिरा; मृगने महावनके बीच प्रवेश किया; राजा भी दौड़े।

१२५ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, अनन्तर राजा महावनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रम पर उपस्थित हुए

और थकके उस समय वहां बैठ गये। ऋषियोंने उस धनुर्धारी राजाको थका और भूखा देखके सबने उस स्थानपर इकट्ठे होकर यथारीति उनका सत्कार किया। राजाने उन ऋषियोंसे प्राप्त हुए सत्कारको ग्रहण करके सब तपस्वियोंसे तप वृद्धिका विषय पूछा। तपोधन ऋषि लोग राजाके वचनको सुनके उनके आगमनका प्रयोजन जाननेके वास्ते बोले, हे राजन्! आप धनुष बाण और तलवार धारण करके पैदल ही कौनसे सुखके वास्ते इस तपोवनमें आये हैं? हे मानद! आपने किस स्थानसे आगमन किया है? उसे हम लोग सुननेको इच्छा करते हैं। आप किस वंशमें उत्पन्न हुए हैं और आपका क्या नाम है, वह हम लोगोंके निकट वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर भरतवंशावतंस! वह राजा सब ब्राह्मणोंका यथारीतिसे निज परिचय देनेके वास्ते बोला, मैं हैहयवंशमें उत्पन्न हुआ हूं; मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला सुमित्र नामसे प्रसिद्ध हूं; मैं विपुल बलसे रक्षित और सेवक तथा अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंसे घिरकर बाणोंसे सहस्रों मृगोंको मारते हुए विचरता था; कोई मृग मेरे बाणसे विद्ध होकर शल्यके सहित दौड़ रहा है, मैं उस ही दौड़ते हुए मृगका पीछा करते हुए दैव इच्छासे इस बनमें उपस्थित हुआ हूं। इस समय श्रीरहित निराश और परिश्रमसे थक कर आप लोगोंके समीप आया हूं। मैं परिश्रमसे कातर, निराश और भ्रष्ट लक्षण होकर आप लोगोंके समीप आया, इससे बढ़के मुझे दूसरा दुःख क्या होगा? हे तपस्वी लोगो! मेरी मृग-विषयक आशा नष्ट होनेसे जैसा तीव्र दुःख हुआ है, राज चिह्न त्यागना और नगरको छोड़ना वैसा दुःखदायक नहीं है। अत्यन्त ऊंचा महा पर्व्वत हिमालय, बहुत बड़े महोदधि समुद्र और आकाशको अन्तराल मण्डलके अनुसार आशाके समान नहीं हो सकते। हे तापस वृन्द! इससे मैं आशाका अन्त भी नहीं देखता हूं आप लोग सर्व्वज्ञ और तपस्यासे भरे हैं; सब आप लोगोंको विदित है; आप महा ऐश्वर्य्ययुक्त हैं, इसही कारण आप लोगोंसे संशयका विषय पूछता हूं। आशावान पुरुष और आकाश इन दोनोंके बीच मण्डलमें आप लोगोंको कौन श्रेष्ठ मालूम होता है; मैं यही सुननेको अभिलाष करता हूं; इस लोकमें सुननेमें क्या दुर्लभ है? यह विषय यदि आप लोगोंके समीप गोपनीय न हो, तो शीघ्र ही मुझसे कहिये। हे द्विजसत्तम वृन्द! आप लोगोंके गोपनीय विषयको सुननेकी इच्छा नहीं करता, मैंने जो प्रश्न किया है, कथाके प्रसङ्गसे यदि इसका उत्तर होवे, तो वर्णन कीजिये। आशाके कारण और सामर्थ्यको रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप लोग भी तपस्यामें रत हैं, इससे सब कोई मिलकर इस विषयका वर्णन कीजिये।

१२६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, अनन्तर उन सब ऋषियोंके बीच ऋषि सत्तम ऋषभ नाम विप्रर्षि विस्मित होकर यह वचन बोले, हे प्रभु नृपवर! पहिले समयमें मैं सब तीर्थोंमें घूमता हुआ नर नारायणके दिव्य आश्रममें उपस्थित हुआ था, जिस स्थानमें उस रमणीय बदरी और आकाश गङ्गाका वैहाय सहृद विद्यमान है, और अश्व-नित्य वेद पाठ करते हैं। पहिले समय मैं उस ही तालावम पितर और देवताओंका विधि-पूर्व्वक तर्पण करके उस ही समय आश्रममें उपस्थित हुआ। जिस स्थानमें वह नारायण ऋषि सदा निवास करते हैं उनके निकटमें ही वास करनेके लिये किसी आश्रममें गमन किया। वहां सदा मृगछालाको धारण करनेवाले तनु नाम ऋषिको आते देखा। हे महाबाहो राजऋषि! उनका शरीर दूसरे मनुष्योंसे अठगुना

ऊंचा था; परन्तु उनकी जैसी कृशता थी, वैसी कृशता कहीं भी नहीं देखी गई है। हे राजेन्द्र! उनका शरीर कनिष्ठा अंगुलीके समान था, गर्दन, दोनों भुजा, दोनों पैर और सब केश देखनेमें अद्भुत थे; सिर शरीरके अनुरूप ही था; दोनों कान और दोनों नेत्र भी उसके समान ही थे। हे राजसत्तम! उनका वचन और चेष्टा सामान्य थी; मैं उस कृश विप्रको देखके अत्यन्त डरा और दुःखित हुआ, अनन्तर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़के उनके सम्मुख खड़ा रहा।

हे राजन्! नाम, गोत्र और पिताका नाम कहके उनके दिये हुए आसन पर जाके धीरे धीरे बैठ गया। हे महाराज! अनन्तर उस धर्म्मात्मा महर्षि तनुने ऋषियोंके बीच धर्म्म अर्थ युक्त कथा कहनी आरम्भ की। वह जब धर्म्म-युक्त कथा कहने लगे, तब राजीवलोचन कोई राजा सेना और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके सहित वेगवान घोड़ोंके जरिये वहां पर उपस्थित हुआ। बनके बीच पुत्र खोया गया है, उसी कारण कातर होते हुए अत्यन्त दुःखित होकर पहिले समयमें भूरिद्युम्नके पिता महायशस्वी श्रीमान महा वीर द्युम्न राजाने उस ही स्थानमें उस पुत्रको देखूंगा, ऐसी ही आशासे युक्त होकर उस बनमें घूमते हुए मेरे उस परम धार्म्मिक पुत्रका दर्शन होना दुर्लभ है, अकेला पुत्र महावनके बीच खोया गया, उस समय बारम्बार ऐसा ही वचन कहने लगे। "मुझे उसका दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु देखनेके वास्ते मुझे बड़ी ही आशा हुई है; उस ही आशासे मेरा सब शरीर परिपूरित होनेसे मैं मुमुर्षु हुआ हूं; इसमें सन्देह नहीं है।" मुनिश्रेष्ठ भगवान तनुने राजाका ऐसा वचन सुनके अवाक्‌शिरा और चिन्तापरायण होके मुहूर्त भर स्थित रहे। राजा उन्हें चिन्ता करते देख, अत्यन्त दुःखित हुआ और दीनताके सहित बार बार मन्द स्वरसे बोला, हे देवऋषि! दुर्लभ क्या है और आशासे बृहत् क्या है? यदि यह मेरे समीप गोपनीय न हो, तो, हे भगवन्! इसे वर्णन कीजिये।

मुनि बोले, पहिले महर्षि भगवान् तुम्हारे उस पुत्रके जरिये बालिश बुद्धि और निज मन्दभाग्यताके कारण मानसे रहित हुए थे। हे राजन्! महर्षिने एक सोनेका कलश और बल्कल मांगा था, उन्होंने अवज्ञापूर्वक उसे सम्पादन नहीं किया, वह राजर्षि निर्व्विण्ण और निराश हुए थे। हे नरसत्तम! वह धर्म्मात्मा इसी प्रकार उग्र होकर उस लोकपूजित ऋषिको प्रणाम करके तुम्हारी भांति श्रान्त और अवसन्न हुए थे। अनन्तर महर्षिने पाद्य और अर्घ लेकर आरण्य विधिके अनुसार राजाको वह सब निवेदन किया।

हे नरश्रेष्ठ! अनन्तर जैसे सप्तऋषि लोग ध्रुवको घेरते हैं, वैसे ही सब मुनि लोग उस राजाको घेरकर बैठ गये और उन लोगोंने उस राजाके आश्रममें आनेका प्रयोजन पूछा।

१२७ अध्याय समाप्त।

---

राजा बोला, मैं वीरद्युम्न नामसे विख्यात राजा चारों ओर प्रसिद्ध हूं, मेरा पुत्र भूरिद्युम्न अनुदिष्ट हुआ है, उसे खोजनेके वास्ते मैं इस बनमें आया हूं। हे पापरहित विप्रवर! मेरे वही एक मात्र पुत्र है, तिसपर भी वह बालक है, उसे इस बनमें न देखके घूम रहा हूं।

ऋषभ बोले, जब राजाने ऐसा कहा, तब उस समय मुनि अधोबदन होकर चुप होरहे; राजाको कुछ भी उत्तर न दिया। वह ब्राह्मण पहिले राजाके जरिये सम्मानित नहीं हुए। हे राजेन्द्र! उन्होंने आशाको नष्ट करनेके निमित्त बहुत तपस्या की थी, मैं किसी प्रकारसे राजाके निकट प्रतिग्रह तथा दूसरे किसी

वर्षोका दान नहीं ग्रहण करूंगा; उस समय ऐसी ही बुद्धि अवलम्बन करके स्थित थे। आशा ही स्थिर होकर पुरुषको तथा बालकको भी उद्योगशाली करती है; इससे "मैं उस आशाको दूर करूंगा," मन ही मन ऐसा ही स्थिर करके मुनि मौन हुए थे। वीरद्युम्न राजाने फिर उस मुनिसत्तमसे पूछा।

राजा बोला, आशाकी कृशता क्या है? इस पृथ्वीमण्डलके बीच दुर्लभ क्या है? आप इसे ही वर्णन करिये; क्यों कि आपने धर्म्म, अर्थका दर्शन किया है।

ऋषभ बोले, अनन्तर भगवान ब्राह्मणश्रेष्ठ कृशतनु पहिले वृत्तान्तको स्मरण करके उसे मानो राजाको स्मरण करानेके लिये कहने लगे।

ऋषि बोले, हे राजन्! आशायुक्त पुरुषके समान दूसरा कोई कृश नहीं है, आशाग्रस्त विषयका दुर्लभत्व निबन्धन मैंने राजाओंके निकट प्रार्थना की थी।

राजा बोला, हे ब्रह्मन्! आपके वचनके अनुसार कृश अकृशका बोध हुआ और आशा गृहीत विषयका दुर्लभत्व वेद वचनके समान विदित हुआ। हे महाबुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें संशय उत्पन्न हुआ है, इससे मैं उस संशयके विषयको पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक कहिये। हे मुनिसत्तम! यदि गोपनीय न हो, तो अपनेसे दुबलापन क्या है? हे भगवन्! इसे ही मेरे निकटमें प्रकट करिये।

कृश बोले, हे तात। याचक होके सन्तुष्ट हुआ करे, ऐसा पुरुष दुर्लभ है, अथवा नहीं है, ऐसा भी कहा जा सकता है, और अर्थकी अवज्ञा न करे, ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। शक्ति रहते भी सत्कार करके दूसरेका उपकार न करनेवाला और जो आशा सब प्राणियोंमें आसक्त होरही है, मैंने उस आशाको बहुत कृश किया है। एक मात्र पुत्रका पिता पुत्र अनुदिष्ट वा प्रोषित होनेपर उसका हाल जो नहीं जानता मैंने उस आशाको इकबारगी कृश किया है, हे नरनाथ! स्त्रियोंकी प्रसवके समय, वृद्धोंकी पुत्र उत्पत्तिके समयमें और धनियोंके मनमें जो आशा रहती है, मैंने उसे अत्यन्त कृश किया है। प्रदानकांक्षिणी कन्याओंके यौवन-काल उपस्थित होनेपर उनके विषयकी कथा सुनके जो आशा उत्पन्न होती है, मैंने उस आशाको अत्यन्त कृश किया है। हे राजन्! अनन्तर वीरद्युम्न राजाने यह सब कथा सुनके पत्नीके सहित उस द्विजवरके चरणको मस्तकसे स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया।

राजा बोला, हे भगवन् मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं, मैं निज पुत्रके साथ मिलनेकी अभिलाष करता हूं। हे द्विजसत्तम! इस समय आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है इसमें सन्देह नहीं है।

ऋषि बोले, धार्म्मिकप्रवर! भगवान् तनुने हंसकर तप और विद्याबलके जरिये उस अनुदिष्ट राजपुत्रको लाके उपस्थित किया। उन्होंने राजपुत्रको लाके राजाका तिरस्कार करके आप ही जो धर्म्मस्वरूप थे, उसे दिखाया; अद्भुत दर्शनने दिव्य-आत्म दिखाकर पापरहित और क्रोधहीन होके निकटके बनमें गमन किया। हे राजन्! मैंने ऐसाही देखा था, और यही सब वचन सुना था, आशाको शीघ्र दूर करो; ऐसा होनेसे यह अत्यन्त दुर्व्वल होगी।

भीष्म बोले, हे राजन्! उस समय राजा सुमित्रने महात्मा ऋषभका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही दुबली आशाको परित्याग किया। हे कुन्तीपुत्र महाराज! तुम भी मेरा यह वचन सुनके हिमवान पर्व्वत की तरह स्थिर होओ। हे महाराज! तुम प्रष्टा और श्राता हो, इससे मेरा मत सुनके आपद्काल उपस्थित होनेपर सन्ताप भाजन न होना।

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप जब धर्म-कथा कहते हैं तब मैं आत्मतृप्तिस्थ होकर जिस प्रकार तृप्त होता हूं, अमृतसे भी वैसी तृप्ति नहीं होती। हे पितामह! इससे आप फिर धर्म कथा कहिये। मैं आपके कहे हुए धर्म्मामृतको पीते हुए किसी प्रकारसे भी तृप्ति लाभ नहीं कर सकता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग महानुभाव यम और गौतमके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। पारिपात्र पर्व्वतके समीप गौतमका अत्यन्त बड़ा आश्रम था, गौतमने उस आश्रममें जबतक वास किया था, वह भी मुझसे सुनो। गौतमने उस आश्रममें साठ हजार वर्ष तक तपस्या की थी। हे राजन्! उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यमने उनके निकट गमन किया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपस्या करनेमें रत देखा। ब्रह्मर्षि तपस्वी गौतम तेज प्रभावशाली यमको आया हुआ देखके हाथ जोड़के उठ खड़े हुए। धर्मराजने उस द्विजवरको देखते ही धर्मके अनुसार सत्कार करके उनसे पूछा, "मैं तुम्हारा क्या करूं?"

गौतम बोले, क्या करनेसे पुरुष माता पितासे अऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करता है?

यम बोले, तपस्या और पवित्र आचार युक्त तथा नियम और सत्य धर्म्ममें रत पुरुष सदा पिता-माताकी पूजा और बहुतसी दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत दर्शन निबन्धनसे दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया करते हैं।

१२६ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा मित्रोंसे परित्यक्त हुए हैं; जिनके बहुतसे शत्रु हुए हैं, और जो कोषहीन तथा बलहीन हुए हैं; उनके वास्ते क्या उपाय है? दुष्ट सेवक जिसके सहायक हुए हैं, जिसकी मन्त्रणा सब तरहसे निष्फल हुई है, राज्यसे जो भ्रष्ट होते हैं और उत्तम उपायको देखनेमें असमर्थ हैं; जो दूसरे राज्यकी ओर जानेके वास्ते उद्यत और पर राज्यको मर्द्दन करनेमें तैयार हुए हैं, जो स्वयं निबल होकर भी बलवानके साथ विरोध करनेमें वर्त्तमान रहते हैं; जो राजा पूर्वरीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते; जो देश और कालके अनुसार कार्य्य करनेमें अवज्ञा करते हैं। अत्यन्त पीड़न निबन्धनसे दूसरोंके सेवक आदिकोंका भेद और सामवाद जिसे अप्राप्य होता है; उनको उपाय क्या है? अर्थ साध्य जीवन सुकृत उत्तम होगा, अर्थात् असत् मार्गके जरिये अर्थ ग्रहण करना होगा अथवा अर्थके विना मरना कल्याणकारी है?

भीष्म बोले, हे भरत श्रेष्ठ धर्म्मज्ञ युधिष्ठिर! तुमने अत्यन्त गुप्त विषय पूछा है, न पूछने पर मैं इस विषयके कहनेका उत्साह न करता। हे भरतप्रवर! धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है, शास्त्र सुननेके कारण उस सूक्ष्म धर्म्मका ज्ञान हुआ करता है; धर्म्म सुनने और आचार निबन्धनसे कदाचित कोई पुरुष सदाचारके जरिये साधु होते हैं। आपदकालमें धनके निमित्त प्रजापीड़न करते हुए धनलाभ हो, वा न हो, आपदसे पार होके प्रजासमूहके ऊपर कृपा करनी उचित है। यदि धन लाभ न हो, तो अपना और प्रजाका नाश हुआ करता है, उसी विचारके तुम निज प्रश्नके विषयको अपनी बुद्धिके सहारे विवेचनीय जानो। हे भारत! राजाओंकी व्यवहार निबाहनेके वास्ते बहुतसे धर्म्मयुक्त उपाय हैं, सुनो। मैं धर्म्मके निमित्त इस प्रकार धर्म्म प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं करता। प्रजाको दुःख देके जो प्राप्त किया जाता है, वह पीछे मृत्युके समान

हुआ करता है, अर्थात् प्रजापीड़नके दुःखसे कारणसे उत्पन्न हुई अग्नि राजाके प्राण बल और धनसारको बिना जलाये निवृत्त नहीं होती ; पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यों वा प्रजासमूहका ऐसा ही निश्चय है। पुरुष प्रति दिन जैसे शास्त्रोंको देखता है, वैसा ही विज्ञान लाभ करके उसमें अनुरक्त हुआ करता है ; अविज्ञानके कारण अनुपाय होता है, उपायज्ञान ही अत्यन्त विभूति उत्पन्न करता है। तुम अशङ्कित और असूयारहित होकर यह वचन सुनो। राजाका कोष नष्ट होनेसे ही बलका नाश हुआ करता है ; निर्जल स्थलमें जल उत्पन्न करनेकी तरह राजा लोग कोष सञ्चय किया करते हैं। प्राचीन पुरुषोंके आचरित इस रूप धर्मको जानकर समयके अनुसार राजा पूर्व्व पीड़ित प्रजाके ऊपर कृपा करे। हे भारत। समर्थ मनुष्योंका धर्म्म स्वतन्त्र है और आपदकालका धर्म्म स्वतन्त्र होता है। कोष सञ्चयके पहिले राजा तपस्या आदिके जरिये धर्म्म सञ्चय करनेमें समर्थ होते हैं ; धर्म्मसे भी जीवन गुरुतर है। निर्व्वल पुरुष धन लाभ करके न्याययुक्त जीविका अवलम्बन नहीं करता, क्योंकि यत्न करनेपर भी अवश्य बलकी सम्भावना होती है, ऐसा नियम नहीं है ; इससे सुना गया है, आपदकालमें अधर्म्म भी धर्म्म लक्षणयुक्त हुआ करता है इससे आपदकालमें अधर्म्म भी कर्त्तव्य रूपसे सुना जाता है, उस समय जो धर्म्म है, वह अधर्म्म हुआ करता है ; इससे शास्त्रकी मर्य्यादानुसार आपदकालमें प्रजापीड़न आदि भी धर्म्मरूपसे गिने जाते है, वरन वैसा न करनेसे अधर्म्म होता है यह कवियोंको अविदित नहीं है। आपदकाल बीतनेपर क्षत्रियके वास्ते पहिले कहे हुए अधर्म्मके दोषोंको दूर करनेके वास्ते प्रायश्चित्तकी विधि है। क्षत्रियोंको जिसमें धर्म्म हानि न हो, और वह जिससे शत्रुके वशमें न होवे, वैसो ही उपाय करनी उचित है ; ऐसा ही पुराने लोग कहा करते हैं। आत्माको अवसन्न करना उचित नहीं है, सब तरहके यत्नके जरिये, अपने वा दूसरेके धर्म्म उद्धारकी इच्छा न करे, जिस किसी उपायसे होसके, आत्माका उद्धार करना चाहिये ऐसा ही निश्चय जाने।

हे तात। उस आपदकालके अनन्तर धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंके लिये धर्म्म विषयमें निपुणता ही निश्चित है और क्षत्रियोंके वास्ते बाहुबलके सहारे उद्यम ही निपुणता है, इसी प्रकार जनश्रुति है। हे भारत! पूरी रीतिसे वृत्तिरोध होनेपर श्रेष्ठ क्षत्रिय तापसस्व और ब्राह्मणस्वको छोड़के और सबके धनको ले सकते हैं। जैसे ब्राह्मण अवसन्न होनेपर न जांचने योग्य पुरुषके निकट जांचते तथा भोजन न करने योग्य अन्न भी भोजन करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणस्व और तापसस्वके अतिरिक्त दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें दोष नहीं होता, इसमें सन्देह नहीं है। पीड़ित पुरुषको अद्वार क्या है? और निरुद्ध पुरुषको ही कौनसा उत्पथ है? जब लोग पीड़ित होते हैं, तब अद्वारसे भी दौडा करते हैं। जो राजा धनागारसे रहित और सेनाके नष्ट होनेसे लोगोंके समीप पराभव युक्त होता है, उसे भिक्षा करके जीवन धारण तथा वैश्य और शूद्रकी वृत्ति अवलम्बन करनी योग्य नहीं है। क्षत्रियोंकी स्वजातीय वृत्ति विजयके जरिये धन उपार्ज्जन की विधि है, जो उसके अनुसार जीवन व्यतीत न कर सकें, वे अयाचक होनेपर भी पहिले आपदकालमें मुख्य कल्पके जरिये जीवन व्यतीत करें ; उसमें असमर्थ होनेपर अनुकल्प अवलम्बन करना अनुचित नहीं है। आपदकाल उपस्थित होनेपर सब धर्म्मोंका विपर्य्यय अर्थात् पराक्रमके जरिये भी जीवन धारण करना योग्य है। जीविका नष्ट होनेपर ब्राह्मणोंका भी ऐसा ही व्यवहार दीख पडा है, तब

क्षत्रियोंके विषयमें क्यों सन्देह होगा? क्षत्रिय पुरुष आपदकालमें अधिक धनशाली पुरुषोंसे बलपूर्व्वक धन ग्रहण करके जीवन धारण करें, किसी तरह अवसन्न न होवें, उसमें सन्देह करना उचित नहीं है, यह सदासे ही निश्चित है। पण्डित लोग क्षत्रियोंको ही प्रजापालक और हन्ता समझते हैं; इससे रक्षाकर्त्ता क्षत्रिय धनवान मनुष्योंके निकट धन ग्रहण करें। हे राजन्! वनमें रहके मुनिके अतिरिक्त दूसरे किसी पुरुषकी हिंसाके विना जीविका नहीं निभती है।

हे कुरुश्रेष्ठ! माथेमें लिखी हुई वृत्ति अर्थात् अदृष्ट मात्रको अवलम्बन करके जीवन धारण करना क्षत्रियोंके विषयमें योग्य नहीं है विशेष करके जिसे प्रजापालनकी इच्छा है, उन्हें भी वैसी वृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। आपदकालमें राजा और राज्य दोनोंकी ही सदा परस्पर रक्षा करनी चाहिये यही सनातन धर्म्म है। आपदकालमें जैसे राजा धनके जरिये सब तरहसे राज्यकी रक्षा करता है, विपद उपस्थित होनेपर राज्यको उसी प्रकार राजाकी रक्षा करनी योग्य है। कोष, दण्ड, बल, मित्र और दूसरी जो कुछ वस्तु सञ्चित रहे, राजा क्षुधातुर होनेपर भी राज्यके वास्ते उसे दूर न करे। अन्नसे ही बीज सम्पादन करना होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा ही जानते हैं। अल्पधनवाला राजा यदि प्रजासमूहसे रक्षित न रहे, तो वह नष्ट होता है, राजाके नष्ट होनेपर सब प्रजा नष्ट हुआ करती हैं; इस विषयमें पण्डित लोग महामायावी शम्बरके इस शास्त्रको वर्णन किया करते हैं। जिस राजाके राज्यमें वास करनेवाली प्रजा अवसन्न होती है जो दूसरेका प्रेष्य हुआ करता है, अथवा वृत्तिसे रहित होनेपर अल्प परिवारको पालन करता है, और जो विदेशमें जीविका निर्व्वाहके वास्ते समय बिताता है; उसे धिक्कार है। कोषागार और सेना ही एकमात्र राजाका मूल है, उसके बीच खजाना ही सेनाका मूल है; सेना सब धर्म्मका मूल है और धर्म्म ही प्रजासमूहका मूल होता है, इससे सबको जड़ धनागारकी बढ़ती करनी उचित है। दूसरे पुरुषको पीड़ित न करनेसे कोष सञ्चय नहीं होता, तब सेनाका संग्रह किस प्रकार हो सकेगा? इससे कोष सञ्चके वास्ते लोगोंको पीड़ित करनेसे राजा दोषभागी नहीं होते। यज्ञकार्य्यको निबाहनेके निमित्त अकार्य्य करते भी देखा जाता है; इस ही कारण राजा कदापि दोषभागी नहीं होते, आपदकालमें प्रजा पीड़न अर्थके लिये ही हुआ करता है, वह स्वतन्त्र है; और उस समय प्रजाको पीड़ित न करना अनर्थका कारण होजाता है। अर्थके अभावके वास्ते हाथी आदि पाले जाते हैं, और वे अर्थके उत्पादक भी हुआ करते हैं; इससे मेधावी पुरुष इस कर्म्मनिश्चयको बुद्धिके जरिये विचारे। पशु आदि जैसे यज्ञके कारण होते हैं, यज्ञ चित्त संस्कारका कारण हुआ करता है और पशु आदि यज्ञ तथा चित्त संस्कार ये तीनों जिस तरह मोक्षके कारण हुआ करते हैं, वैसे ही कोषका कारण दण्ड, बलका कारण कोष और शत्रु पराभवके कारण कोष, बल तथा नीति ये तीनों ही राज्य पुष्टिके निमित्त हुआ करते हैं। इस विषयमें धर्म्म-तत्व प्रकाश करनेवाली उपमा कहता हूं, यज्ञ विषयमें जो लोग परिपन्थी हैं, वे यूपच्छेदन करते हैं; प्रतिपक्षी स्वरूप सामन्त वृन्द वृक्ष रूपी उसे काटनेसे जब वह कटके गिरता है, तब दूसरे वनस्पतियोंको गिराता है। हे शत्रुतापन! इसी प्रकार जो मनुष्य महत् कोषके बाधक होवें, उन्हें नष्ट न करनेसे उस विषयमें सिद्धि नहीं देखी जाती है। धनसे यह लोक और परलोक दोनों लोक ही प्राप्त होते हैं। निर्द्धन होनेसे जैसे धन और सत्य वचन नहीं रहता, वैसे ही निर्द्धन पुरुष जीते ही मरेके

समान समय बिताते हैं। यज्ञ कार्य्यके लिये धनको सब तरहकी उपायसे ग्रहण करे। हे भारत! यज्ञके वास्ते जो धन आवश्यक होता है, निषिद्ध उपायसे भी उसे जिस प्रकार ग्रहण करना उचित है, वैसे ही विहित और निषिद्ध कार्य्याकार्य्य विषयोंमें अर्थात् आपदकालमें प्रजा पीड़न करना योग्य है, और वही निरापदके समयमें निषिद्ध है; इससे उस प्रकारके विषयमें यह समान-दोष नहीं है। देश कालके अनुसार कार्य्य भी अकार्य्य होता है और अकार्य्य भी कार्य्य हुआ करता है। हे पृथ्वीपाल महाराज! धन-संग्रह और धन त्याग एक ही पुरुष में किसी तरह सम्भव नहीं होता, मैंने वनके बीच कभी धनवृद्ध मनुष्योंको नहीं देखा। इस पृथ्वीपर जो कुछ धन दीखता है, वह सब हमारा ही होवे, हमारा ही होवे; लोग ऐसी ही अभिलाषा किया करते हैं। हे शत्रुतापन! राज्य तुल्य धर्म्म और कुछ भी नहीं है, राजाओंको आपदकालमें बहुतसा कर ग्रहण करना पापमूलक नहीं है, निरापदके समयमें वही पापजनक हुआ करता है। इससे आपदके निमित्त अर्थ संग्रह करना पापयुक्त नहीं होता तब धन-मूलक राज्य भी हेय नहीं होसकता, कोई कोई दान और कर्म्म से तपस्वी होते हैं, कोई तपस्या करके ही तपस्वी हुआ करते हैं; दूसरे बुद्धि कौशल और दक्षतासे धन सञ्चय लाभ करते हैं। पण्डित लोग धनहीन पुरुषको ही दुर्ब्बल कहते हैं, धनवान पुरुष ही बलवान होता है; धनवान मनुष्यकी कुछ भी अप्राप्य नहीं है। कोष तथा कोषवाला राजा सब विपदसे पार होता है, कोषके जरिये धर्म्मकाम तथा इस लोक और परलोकमें सुख लाभ होता है; इससे धर्म्मपूर्व्वक उस धन लाभकी इच्छा करे, कभी अधर्म्मसे धन सञ्चय करनेकी इच्छा न करे।

१३० अध्याय समाप्त।

## आपद्धर्म्म-प्रकरण।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा धान्य-कोष आदि संग्रहसे रहित दीर्घसूत्र, बन्धु बध भयके कारण किलेसे बाहर निकलके युद्ध करनेमें असमर्थ, सदा शङ्कित, जिसके विचारकी दूसरे लोगोंने सुना है, शत्रुओंने जिसके राज्यको विभाग कर लिया है, जो विषय रहित है, और मित्रोंको सब तरहसे सम्मान पूर्व्वक अपने वश करनेमें समर्थ नहीं हैं, जिसके सेवक लोग शत्रुओंके वशमें हुए शत्रु लोग जिसके सम्मुख वर्त्ती होरहे हैं, स्वयं निर्ब्बल होनेसे प्रबल वैरीके जरिये जिसका चित्त व्याकुल हुआ है; उसे अन्तमें क्या करना उचित है, वह कहिये।

भीष्म बोले, विजयके निमित्त बाहर हुए विजगीषु राजा यदि धर्म्मपूर्व्वक धन प्राप्त करनेमें निपुण और पवित्र हो, तो शत्रुसे विजित पूर्व्वभूक्त राज्यको सान्त्वादके सहारे उससे छुड़ाके शीघ्र सन्धि स्थापित करे। जो पुरुष बलवान और पाप बुद्धि होकर अधर्म्मके अनुसार विजयकी इच्छा करता है, कई एकगांव दान करके उसके साथमें भी सन्धि करनेमें सम्मत होवे, अथवा राजधानी परित्याग करके द्रव्य सञ्चय दानसे भी आपदसे पार होवे। यदि राजगुणसे युक्त होकर जीवित रहे, तो द्रव्य आदि फिर प्राप्त कर सकेगा; धन और सेना परित्याग करनेसे यदि सब आपद दूर हो, तो कौन धर्म्म अर्थको जाननेवाला राजा उस विषयमें आत्मदान किया करता है? अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रियोंकी रक्षा करे, वे यदि शत्रुके अधिकारमें हुई हों, तो उस विषयमें दया करनेकी आवश्यकता नहीं है सामर्थ्य रहते किसी प्रकार भी आत्म समर्पण करना योग्य नहीं है।

युधिष्ठिर बोले, सेवक आदि कोपित, किले तथा राज्य आदि शत्रुसे आक्रान्त खजाना खाली, और मन्त्रणा प्रकाशित होनेपर अन्तमें क्या करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रु धर्म्मात्मा होनेपर शीघ्र ही उसके सङ्ग सन्धिकी इच्छा करे, ऐसा होनेसे शीघ्र ही शत्रुको दूर किया जा सकता है अथवा धर्म युद्धमें प्राणको त्याग करके परलोकमें गमन करना ही कल्याणकारी है। थोड़ी सेना होनेपर भी यदि वह अनुरक्त, अभिपुत और हर्षयुक्त हो, तो पृथ्वीपति राजा उस ही से महीमण्डल जय कर सकता है। जो युद्धमें प्राणत्यागते हैं, वे इन्द्रलोक पाते हैं। सब लोकोंमें प्रसिद्ध बुद्धिका आसरा करके युद्ध पक्ष परित्याग करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुको विश्वास होवे, उसही भाव विनय करे, स्वयं भी समयके अनुसार शत्रुका विश्वास करे; सेवक आदिकोंके प्रतिकूल रहनेपर युद्ध करनेमें असमर्थ होनेपर राजा शान्तिवादके सहारे शत्रुको शान्त करते हुए किलेसे बाहर होकर देश देशान्तरमें कुछ समय बिताके फिर अन्तमें मन्त्रणा अपने बलसे स्वयं राज्य जय करनेका उद्योग करे।

१३१ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पृथ्वीपर जिन सब वस्तुओंको उपजीव्य करके जीवन, धारण किया जाता है, उन सबके चोरी होनेपर भी राजाओंको सब उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है,—यह सब लोक-सत्कृत धर्म्म नष्ट होनेपर इस आपदके समयमें जो ब्राह्मण दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, वे कैसे उपायके जरिये जीवन धारण करेंगे?

भीष्म बोले, हे राजन्! विपदकाल उपस्थित होनेपर ब्राह्मण विज्ञान अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करें, इस जगत्में जो कुछ भोग्य वस्तु हैं, वे साधुओंके निमित्त उत्पन्न हुई हैं; दुष्टोंके वास्ते कुछ भी नहीं उत्पन्न हुई है। जो अपनेको अर्थागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन ग्रहण करके साधुओंको दान करते हैं, वे सब धर्म्मोंको जानते हैं; स्थान भ्रष्ट राजा किसी पुरुषको कोपित न करके अपनी प्रजा पालन धर्म्मकी अभिलाषा करते हुए दूसरेके अदत्त धनको पालन कर्त्ताका धन समझके ग्रहण करें। जो विज्ञान-बलसे पवित्र रहके निन्दित कार्य्य किया करते हैं; उस वृत्तिविज्ञानवान धीर पुरुषकी कौन निन्दा कर सकता है? हे युधिष्ठिर! जो लोग बलपूर्व्वक वृत्ति प्राप्त करते हैं, दूसरी रीतिसे प्राप्त करनेकी रुचि नहीं होती। बलवान पुरुष निज तेजोप्रभावसे ही जिविका निर्व्वाहमें प्रवृत्त होते हैं। आपदग्रस्त राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे। इस आपद्धर्म्मके उपयोगी सामान्य शास्त्रका अभ्यास करे; मेधावी राजा उक्त शास्त्र और दोनों राज्यमें स्थित धनियोंमेंसे जो कदर्य्य और कार्य्यवशसे दण्डके योग्य हैं, उनके निकटसे धन लेके कोष सञ्चय करे; इस विशेष शास्त्रको भी अविशेष भावसे वशमें करे। राजा अत्यन्त आपदग्रस्त होनेपर भी ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और ब्राह्मणोंकी कदापि हिंसा न करे, उन लोगोंकी हिंसा करनेसे दोषग्रस्त होना पड़ेगा। यही लोगोंका नेत्र स्वरूप सनातन प्रमाण है, इससे चाहे यह उत्तम हो अथवा बुरा ही होवे आपदयुक्त राजाको ऐसा ही आचरण करना उचित है। ग्रामवासी बहुतेरे पुरुष क्रोधके वशमें होकर राजाकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु राजा उन लोगोंके वचन अनुसार किसीको भी पुरस्कार वा तिरस्कार न करे। पुरोहित आदिके प्रतिवादको किसी प्रकारसे कहना वा सुनना न चाहिये; यदि कोई सभामें उनकी निन्दा करे, तो दोनों कानोंको मूंद ले अथवा दूसरी जगह चला जावे, हे नरनाथ! दूसरेकी निन्दा वा खलता करना दुष्टोंका स्वभाव-सिद्ध धर्म्म है; साधुओंके बीच

जितने ही पुरुष केवल दूसरेके गुणोंको वर्णन किया करते हैं । जैसे दमनीय बच्छी तरह ढोनेमें समर्थ दान्त और सुन्दर बैल बोझाधारण करके ढोते हैं, आपदयुक्त राजा वैसा ही व्यवहार करे ; जैसे व्यवहारसे उसे बहुतसी सहायता प्राप्त होवे, राजा वैसे ही आचारका प्रचार करे । पण्डित लोग आचारको ही धर्म्मका श्रेष्ठ लक्षण समझते हैं । शंख और लिखितके मतको अवलम्बन करनेवाले ऋषियोंका ऐसा अभिप्राय नहीं है, मत्सरता और लोभके वशसे जो वे लोग आचारको धर्म्म नहीं समझते ; वैसा नहीं है ; ऋषि शासन ही उनका अनुमोदनीय है ; कुकर्म्म करनेवाले पुरुषोंको शासन करना ही ऋषियोंने वर्णन किया है ; परन्तु श्रेष्ठ पुरुष यदि असत् मार्गको करे अवलम्बन तो उसे भी शासन करना उचित है । ऐसा वचन यद्यपि ऋषियोंने कहा है, यह ठीक है, तो भी उसके समान प्रमाण कहीं भी नहीं दीखता, इससे राजाओंको वैसा करना योग्य नहीं है ; देवता लोग ही कुकर्म्मी अधम पुरुषोंको शासन किया करते हैं । जो राजा छलसे धन सञ्चय करता है, वह धर्म्मसे भ्रष्ट होता है । वेदमें कहे हुए, मनु आदि स्मृतियोंमें वर्णित, देश और कालके अनुसार साधुओंसे आचरित तथा सज्जनोंके हृदयमें स्वयं जो धर्म्म उत्पन्न होता है, राजा उसे ही अवलम्बन करे । जो वेदविहित, तर्कसे निश्चित, शास्त्रशास्त्र सम्मत और दण्डनीति प्रसिद्ध धर्म्मको कह सकते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं ; सांपके पैरको अन्वेषण करनेकी तरह धर्म्मका मूल अन्वेषण करना अत्यन्त कठिन कर्म्म है। जैसे व्याधा बाण बिद्ध मृगके रुधिरसे भीगे हुए पांवके चिन्हको देखकर उसके गमन करनेके मार्गको मालूम करता है, धर्म्मके मार्गका अनुसन्धान करना वैसा ही है । हे युधिष्ठिर ! इसी प्रकार साधुओंसे आचरित मार्गसे विचरण करना उचित है । महर्षियोंका इसी प्रकार चरित्र है तुम भी ऐसा ही करो ।

१३२ अध्याय समाप्त ।

---

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन ! राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे, क्यों कि धनसे ही धर्म्म और मूल राज्यकी बढ़ती हुआ करती है इससे धन इकट्ठा करके यत्नके सहित उसकी रक्षा करनी उचित है; और रक्षा करके उसकी वृद्धि करनी चाहिये, यही सनातन धर्म्म है । केवल पवित्रता वा नृसंसताके जरिये धन सञ्चय कभी न करना चाहिये ; पवित्रता और नृसंसताके मध्यवर्त्ती होकर कोष संग्रह करना उचित है । बलहीन राजासे धन संग्रह नहीं होता, धनहीनको बल कहां ? बलहीन होनेसे राज्य स्थिर नहीं रहता, राजहीनको श्री कहांसे होगी ? महत् पुरुषको श्रीहानि मृत्युके समान है, इससे राजाको उचित है, कि जिस उपायसे धन, बल और मित्रोंकी बढ़ती हो, उसही विषयमें यत्नवान होवे । मनुष्य लोग धनहीनकी अवज्ञा किया करते हैं, वे लोग अल्प धन पाके उससे सन्तुष्ट नहीं होते, और उसके कार्य्योंका करनेके वास्ते उत्साह प्रकाशित नहीं करते । राजा कोष सम्पत्तिके कारणसे ही परम सम्मानको प्राप्त होते हैं । जैसे वस्त्र स्त्रियोंके गोपनीय स्थलको छिपाता है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति भी राजाके पापोंको सम्बरण किया करती है । पहिले राजा जिसके साथ विरोध किये रहता है, वह उसकी समृद्धिके समयमें अनुतापित होता है और जैसे वानरोंने जिघांसु पुरुषोंके मारनेके वास्ते उनका अनुसरण किया था, उसी प्रकार उक्त पुरुष कपट आचारके जरिये राजाको नष्ट करनेकी इच्छासे उसका आश्रय करते हैं । हे भारत ! जो राजा इस प्रकार है, उसे सुख

कैसे हो सकता है? इससे सब तरहसे उन्नतिके वास्ते चेष्टा करनी योग्य है; नीचा होना उचित नहीं है। क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ कहाता है, असमयमें बल्कि भागना अच्छा है, तथापि किसीके समीप नीचा होना उचित नहीं है। बनका सहारा करके मृग समूहके साथ भ्रमण करना भी अच्छा है, परन्तु मर्य्यादा-रहित दस्युओंकी भांति सेवकोंका संसर्ग करना उचित नहीं है। हे भारत! भयङ्कर कार्य्योंमें डाकूके समान सेनाका संग्रह सहजमें ही सिद्ध होता है, अत्यन्त मर्य्यादारहित होनेपर सब लोग ही व्याकुल हुआ करते हैं, और डाकू लोग भी निर्द्दयी लोगोंसे अत्यन्त शङ्कित होते हैं; इससे जो मर्य्यादा लोगोंके चित्तको प्रसन्न करे, उसे ही स्थापित करनी उचित है; धन थोड़ा रहनेपर भी जनसमाजमें मर्य्यादा पूजित हुआ करती है। इस लोक वा परलोकमें पाप-पुण्यका फल भोग करना पड़ता है, साधारण लोग इसमें विश्वास नहीं करते हैं समझके भयसे शङ्कित नास्तिकके मतमें विश्वास करना उचित नहीं है। डाकुओंमें ऐसे पुरुष भी हैं, जो पराये धनको हरते हैं, परन्तु किसीकी हिंसा नहीं करते, इससे डाकू लोग मर्य्यादा-युक्त होनेपर अन्तमें सबकी रक्षा कर सकते हैं। जो पुरुष युद्ध करनेसे बिरत हुआ है, उसका बध करना, स्त्री हरना, कृतघ्नता, ब्राह्मणोंका वित्त ग्रहण करना, सर्व्वस्व हरन करना कन्या पोषण, ग्राम आदि आक्रमण करके प्रभुत्वभावसे निवास और सम्भोगके सहित परायी स्त्रीका पतिव्रत भङ्ग डाकुओंके विषयमें ये सब कार्य्य विशेषरूपसे निन्दनीय हैं, इस डाकुओंको इन सब कर्म्मोंको त्यागना उचित है। हे भारत! जो लोग दस्युओंके नाशके निमित्त अभिसन्धि करते हैं वे लोग उन्हें विश्वास उत्पन्न करके अशेष रूपसे उनके धन-सम्पत्तिको प्राप्त करके सन्धिबन्धन किया करते हैं; इससे उसका चित्त, स्त्री, पुत्र, बिभव जो कुछ हो, वह सब राजाको अपने अधिकारमें करना उचित है। डाकुओंके साथ बिरोध उपस्थित होनेपर अपनेको बलवान समझके उनके विषयमें नृशंस व्यवहार करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा दस्युओंके स्त्री, पुत्र और धनसम्पत्तिकी रक्षा करते हैं, वे आप पर-हित होके राज्य भोग करनेमें समर्थ होते हैं, और जो दस्युओंको नष्ट करते हैं, उस ही कारणसे दूसरे डाकू लोग उन्हें सदा भय दिखाया करते हैं, इससे उन्हें आपदरहित होके राज्य पालन करना अत्यन्त कठिन होजाता है।

१३३ अध्याय समाप्त।

---

इस विषयमें इतिहासवेत्ता पण्डित लोग धर्म्म शासन वर्णन किया करते हैं, विशेषज्ञ क्षत्रिय राजा धर्म्म और अर्थको प्रत्यक्ष करते हैं; प्रत्यक्ष धर्म्मका शास्त्रोक्त विचार रूप परोक्ष धर्म्मके जरियेसे आचरण करना उचित नहीं है, पृथ्वीपर भेड़ियेके पैरका चिन्ह देखकर "यह भेड़ियेका पैर है, वा नहीं," ऐसे विचारके अनुसार प्रत्यक्ष धर्म्मको अधर्म्म कहके सन्देह करना अनुचित है। इस लोकमें किसी पुरुषने धर्म्मके फलको कदाचित नहीं देखा है। धर्म्म फलको बलरूपसे जानना उचित है, क्योंकि सब विषय ही बलवान पुरुषके बशमें रहते हैं। बलवान पुरुष ही धन, बल और सेवकोंको प्राप्त करते हैं। जो निर्द्धन हैं, वेही पतित हैं; जो कुछ अल्प है, वही उच्छिष्ट कहके गिना जाता है। बलवान पुरुषोंके अनेक निन्दित कर्म्म करने पर भी भयके कारण कोई उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। धर्म्म और सत्य दोनों ही बलवान लोगोंको महत् भयसे परित्राण करते हैं। बल ही धर्म्मसे प्रबल बोध होता है, क्योंकि बलसे ही धर्म्म उत्पन्न हुआ करता

है ; पृथ्वी पर जङ्गम जीवोंकी तरह बल धर्म्ममें प्रतिष्ठित हो रहा है। जैसे धुआं वायुके वशमें होकर आकाशमें उड़ जाता है उसही भांति धर्म्म बलका अनुसरण करता है ; जैसे लता वृक्षका आसरा किया करती है, वैसे ही धर्म्म बलको अवलम्बन करके उसके ऊपर प्रभुता प्रकाशित नहीं कर सकता। जैसे सुख भोगवानके वशमें रहता है, वैसे ही धर्म्म बलवानके अधिकारमें है। बलवानोंको कुछ भी असाध्य नहीं है, उनके सब कार्य्य ही पवित्र हैं।

दुराचारी और बलहीन पुरुषके परित्राणका उपाय नहीं है, बल्कि सब लोगही भेड़िये की तरह उससे व्याकुल हुआ करते हैं। ऐश्वर्य्यरहित अवज्ञात पुरुष अत्यन्त दुःखसे जीवन बिताता है ; घृणित जीवन और मरना दोनों ही समान हैं। पुराने लोग कहते हैं, कि पाप चरित्रोंके कारण जो पुरुष बान्धवोंसे परित्यक्त हुआ है, वह दूसरेके वचन रूपी शलाकासे घायल होके अत्यन्त ही दुःखित होता है। अधर्म्मसे धनको प्राप्त करनेमें जो पाप होता है, उसके छुड़ानेके विषयमें पहिलेके आचार्य्योंने ऐसा कहा हैं, कि पापी पुरुष वेद विद्याकी आलोचना, ब्राह्मणोंकी उपासना तथा मधुर वचन और कार्य्योंसे उन्हें प्रसन्न करे, उदार चित्तवाला होवे, महत् वंशमें विवाह करे, अपनी नम्रता प्रकाशित करके दूसरेका गुण कहे, स्नानशील होके जप करे, कोमल स्वभाव धारण करे, बहुत न बोले। बहुतेरे दुष्कर कार्य्योंको करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंके समीप आश्रय ग्रहण करे ; लोग यदि उसकी निन्दा करें, तो बहुतसे पापोंको करनेवाला पुरुष उसकी चिन्ता न करे। पापकरनेवाला पुरुष ऐसा आचार कर सके तो शीघ्र ही पापसे रहित और सबमें आदर युक्त होता है, इस लोक और परलोकमें महत् सम्मान लाभ करता है, और एकमात्र सुकृतसे सब पापोंको जीतकर विचित्र महा सुख भोग करनेमें समर्थ होता है।

१३४ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, इस स्थलमें पुराने लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, कि डाकू होके भी मर्य्यादा युक्त होने पर मरनेके अनन्तर वह नरकगामी नहीं होता। एक निषाद-स्त्रीके गर्भमें क्षत्रियके वीर्य्यसे कायव्य नाम क्षत्रिय धर्म्म पालक एक निषाद उत्पन्न हुआ था। वह दस्यु होने पर भी बुद्धिमान्, शूर, शास्त्रज्ञ और अनृशंस होनेसे आश्रमवासी ऋषियोंकी धर्म्मकी रक्षा, ब्राह्मणोंका हित साधन और गुरुजनोंका सम्मान करता था ; इन्हीं सब कारणोंसे उसने सिद्धि लाभ की थी। वह प्रतिदिन सवेरे और सामके समय मृगोंको उत्तेजित करता था, निषादोंके बीच वह मृग विज्ञान विषयमें अत्यन्त पण्डित था ; देश कालके विचारका विषय भी उससे छिपा नहीं था। वह सदा पारिपात्र पर्व्वत पर घूमते हुए सब जीवोंके धर्म्मको जानता था उसके सब बाण अमोघ और अस्त्र दृढ़ थे। वह अकेले ही कई सौ सेना जय करता था, महा वनके बीच बूढ़े, अन्धे और बहिरोंका सम्मान करता, सत्कार करके उन्हें मधु मांस फल तथा मूल भोजन कराता और माननीय लोगोंकी सेवा करता था, बनवासी सन्यासी ब्राह्मणोंकी पूजा करता, सदा मृगोंको मारके उन लोगोंको दान करता था। जो लोग लोक-भयसे उस दस्युसे मांस दान नहीं लेते थे, वह बड़े सवेरे उठके उनके घरमें मांस आदि रख जाता था। एक समय दयारहित और मर्य्यादा हीन कई हजार डाकुओंने उसके निकट आके उसे अपना अधिपति करनेकी प्रार्थना की। डाकू लोग बोले, आप देश, काल और मूहूर्त्तको विशेष रूपसे जानते हैं ;

आप बुद्धिमान, महाबलवान और दृढ़व्रती हैं, इससे हम सब लोगोंका यह अभिप्राय है, कि आप हमारे मुख्य ग्रामाध्यक्ष होवें। आप हमको जो आज्ञा देंगे, हम लोग वही करेंगे, इससे माता पिताकी तरह आप हम लोगोंको न्यायके अनुसार प्रतिपालन करिये।

कायव्य बोला, हे डाकूवृन्द ! तुम लोग स्त्री, तपस्वी, डरपोक और बालकोंका बध न करना, जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका बध करना उचित नहीं है ; बलपूर्व्वक स्त्रियोंको ग्रहण करना योग्य नहीं है ; सब जीवोंके बीच कोई पुरुष ही स्त्रीबधकी विधि नहीं कहते। सदा ब्राह्मणोंका मङ्गल साधन और उन लोगोंको धन दान करनेके निमित्त दूसरोंसे युद्ध करना योग्य है, शस्य हरण करना उचित नहीं ; विवाह आदि कार्य्योंमें विघ्न न करना सब जीवोंके बीच जिसके निकट देवता, पितर और अतिथि पूजित होते हैं, वेही ब्राह्मण वा मोक्षमार्गके अधिकारी है, सब वस्तुओंके दानसे जिस प्रकार उसकी उन्नति होवे, सब तरहसे वही करना योग्य है ; ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके जिसके पराभव विषयकी मन्त्रणा करते हैं, तीनों लोकके बीच कोई भी उसका भ्राता नहीं होता। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करे, अथवा उनके नाशकी इच्छा करे; अन्धकारमें सूर्य्य उदय होनेकी तरह निश्चय ही उसकी पराजय होती है। तुम लोग इस ही स्थानमें बास करते हुए सब फल प्राप्तिकी अभिलाषा करना, जो बनिये हम लोगोंका दान न करेंगे। उनकी ओर सेना भेजी जावेगी। जो लोग शिष्टोंका शासन करते हैं, और उन लोगोंको बधरूपी दण्ड विहित है। जो लोग राजाके विषयमें उपद्रव करके जिस किसी उपायसे होवे, धनकी वृद्धि करते हैं, वे लोग दुःखप्रद कृमि समूहकी तरह थोड़े ही समयमें बध्य रूपसे गिने जाते हैं। जो सब डाकू लोग इस बनमें धर्म्मशास्त्रके अनुसार जीवन बिताते हैं, वे डाकू होनेपर भी शीघ्र ही सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ होंगे।

भीष्म बोले, उन सब डाकुओंने, कायव्यके शासनको प्रतिपालन किया था, उससे सब ही उन्नति लाभ करके पापकर्म्मोंसे विरत हुए थे, कायव्यने साधुओंके विषयमें मङ्गल आचरण और डाकुओंको पापसे निवर्त्तन किया था, इससे उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, हे राजन् ! जो लोग इस कायव्यके चरित्र विषयको सदा बिचारते हैं, उन्हें बनवासी प्राणियोंसे कुछ भी भय नहीं होता। अधिक क्या कहें, सब दुष्ट प्राणियोंसे ही कुछ भय नहीं होता ; वे बनके बीच राजा होकर निश्चित रूपसे निवास कर सकते हैं।

१३५ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, राजा लोग जिस उपायके जरिये कोष सञ्चय किया करते हैं उस विषयमें प्राचीन वृत्तान्तोंके जाननेवाले पण्डित लोग ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं। कि यज्ञ करनेवाले ऋषियोंका धन और देवस्व हरण करना उचित नहीं है ; क्षत्रिय राजा डाकू और क्रियाहीन लोगोंके धनको हरन कर सकते हैं। हे भारत ! क्षत्रियोंको ही इन सब प्रजाओंको पालन करने और राज्य भोगनेका अधिकार है, इससे सब धन ही क्षत्रियोंके अधिकृत है दूसरेके नहीं। वह धन राजाके बल अथवा यज्ञका कारण हुआ करता है। जैसे लोग अभोग औषधियोंको काटके उससे भोगार्थ वस्तुओंको पाक किया करते हैं, वैसे ही दुष्टोंकी हिंसा करके साधुओंको प्रतिपालन करो। जो पुरुष देवता, पितर और मनुष्योंको हविके जरिये अर्च्चना करता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष उसके अर्थको अनर्थक कहा करते हैं। हे राजन् ! धार्म्मिक राजा वही धन

हरण करे और उससे सब लोगोंको प्रसन्न करे; वैसे धनसे कोष सञ्चय न करे। जो अपनेको अर्थागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन लेके साधु ओंको दान करते हैं, वेही सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं। जिसको जैसी शक्ति है, वे उसहीके अनुसार परलोक जय करें। उद्भिज और कच्छ-कीट आदि जीव जैसे बिना कारणके ही उत्पन्न होके विस्तृत होते हैं; यज्ञ भी वैसे ही उत्पन्न होके क्रमसे प्रसारित हुआ करता है। जैसे गज आदिके शरीरसे दंस, मसक और चींटी आदिको पृथक् किया जाता है, अयाज्ञिक पुरुषके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना उचित है; यह धर्म्मानुसार विहित होता है। जैसे भूमिपर पड़ा हुआ पांशु पत्थर आदिसे पिसकर अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है, इस लोकमें धर्म्म भी उसी प्रकार सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है।

१३६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे राजन्। कार्य्य उपस्थित होनेके पहिले जो लोग उसके भावी फलको विचारते हैं, उनका नाम अनागत बिधाता है; कार्य्य उपस्थित होनेपर जो लोग बुद्धि बलसे उसे सिद्ध करते हैं, उनका नाम प्रत्युत्पन्नमति है और उपस्थित कार्य्यमें आलसके वशमें होके जो लोग समय बिताकर बिड़म्बित होते है, उनका नाम दीर्घ सूत्र है। इस भूमण्डलपर ऊपर कहे हुए तीन प्रकारके लोगोंके बीच अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति, ये दोनों पुरुष ही सुखलाभ किया करते हैं और दीर्घसूत्र पुरुष शीघ्र ही नष्ट होता है। इस समय दीर्घसूत्रको अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्य निश्चय विषयमें एक उत्तम उपाख्यान कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे कुन्तीनन्दन! बहुत सी मछलियोंसे परिपूरित स्वल्प जलसे युक्त किसी एक तालावमें शकुल नामकी तीन मछली सुहृदताके सहित आपसमें सङ्गी होकर वास करती थीं। उन तीनों सङ्गियोंके बीच पहिली अनागत बिधाता दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और तीसरी दीर्घसूत्र थी। किसी समय मत्स्य-जीवी मछुवाहोंने अनेक तरहसे जल निकलनेके मार्गके जरिये उस तालावके जलको निम्न प्रदेशसे निकालनेका यत्न किया था। कार्य्य उपस्थित होनेपर क्रमसे उस तालावका जल थोड़ा होने लगा। उसे देखकर दीर्घदर्शी अनागत विधाता भयके कारण दूसरे दोनों मित्रोंसे बोली कि "सब जलचारोंको यह आपद उपस्थित हुई है इससे जबतक जल निकलनेका मार्ग दूषित नहीं होता है, उतने ही समयमें जितनी जलदी होसके, हम लोग दूसरी जगह गमन करें। जो अनागत अनर्थको उत्तम नीतिसे निवारण करते हैं, वे कभी संशययुक्त नहीं होते; इससे तुम लोगोंकी इस विषयमें अभिरुचि होवे, मैं जाती हूं।" ऐसा वचन सुनके दीर्घसूत्र बोली। हे भाई! तुम उत्तम कहती हो, परन्तु मेरा निश्चित विचार यह है, कि किसी विषयमें शीघ्रता करनी उचित नहीं है। अनन्तर प्रत्युत्पन्नमति दीर्घ दर्शीसे बोला, समय उपस्थित होनेपर मैं न्यायके अनुसार किसी कर्त्तव्य विषयको परित्याग नहीं करती। महा बुद्धिमान दीर्घदर्शी ऐसा वचन सुनकर उस ही स्रोतके जलसे निकलकर किसी गहरे तालावमें चली गई। अनन्तर मछुवाहोंने जब देखा, कि इस तालावका सब जल निकल गया, तब अनेक उपायके जरिये सब मछलियोंको बांध लिया। उस जलाशयके जल निकलने तथा बिलोड़ित होनेके समय दीर्घसूत्र अन्य जलचरोंके सहित जालमें बंधा। मछुवाहोंने उस समय शनकी डोरीसे सब मछलियोंको गूंथना आरम्भ किया, प्रत्युत्पन्नमतिने उनके बीच प्रवेश करके मुखसे पहिली डोरी पकड़के स्थित हुआ। जालजीवियोंने सब मछलियोंको

गुंथी हुई समझा। अनन्तर जब बड़े तालावमें सब मछलियें थोड़े जाने लगीं, तब पूर्व्वोक्त प्रत्युत्पन्नमति रस्सी छोड़के शीघ्र भाग गई और बुद्धिहीन ज्ञान रहित मन्दात्मा मूढ़ दीर्घसूत्र नष्टेन्द्रिय लोगोंकी तरह नष्ट हुई। इसी प्रकार जो पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर उसे मोहके वशमें होकर नहीं जान सकते, वे दीर्घसूत्र मछलीकी तरह शीघ्र ही नष्ट होते हैं। "मैं अत्यन्त बुद्धिमान हूं,"—ऐसा समझके जो पुरुष पहिलेसे अपने कल्याणका मार्ग ठीक नहीं करता वह प्रत्युत्पन्नमतिकी तरह संशयसे युक्त हुआ करता है। अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्न ये दोनों ही सुखलाभ करते हैं, और दीर्घसूत्र पुरुष नष्ट होता है। काष्ठा, कला, मुहूर्त्त दिन, रात्रि, लव, महीना, पक्ष, ऋतु कल्प, सम्वत्सर, पृथिवी और देश आदि काल नामसे वर्णित हुआ करते हैं; परन्तु वह दीख नहीं पड़ते। अभिलषित विषयकी सिद्धिके निमित्त जिसकी जैसी चिन्ता की जाती है; वह उस ही रीतिसे सिद्ध हुआ करता है। धर्म्म अर्थ और मोक्ष विषयक सब शास्त्रोंमें महर्षियोंके जरिये दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्न मति प्रधान रूपसे वर्णित हुए और वे समय पर सब पुरुषोंके ही अभिमत हुआ करते हैं, जो परीक्षा पूर्व्वक कार्य्य सिद्ध करते हैं और जो लोग युक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको पूरा करते हैं, वे देशकालके अनुसार सब लोगोंसे सम्मत होके दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्नमतिसे भी अधिक फल पाते हैं।

१३७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ! सब विषयोंमें ही अपनी बुद्धिश्रेष्ठ है, यह वर्णित हुई है; अनागत और उत्पन्ना बुद्धि ही उत्तम है और दीर्घसत्री बुद्धि नाश करने वाली है। हे भरतकुलधुरन्धर! इससे इस समय आपकी परमबुद्धिके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, जिसे अवलम्बन करनेसे राजा शत्रुओंमें घिरके भी मोहको नहीं प्राप्त होते। हे कुरुश्रेष्ठ! आप धर्म्मार्थ विषयकी व्याख्या करनेमें निपुण, धर्म्म शास्त्रके जाननेवाले और बुद्धिमान हैं, इससे मैं जो कुछ पूछता हूं, उसे मेरे समीप वर्णन करना आपको उचित है। राजा अनेक शत्रुओंसे घिर कर जिस प्रकार निवास करें, वह सब विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। राजाके अत्यन्त बिपद युक्त होने पर पहिले दुःखित हुए शत्रु लोग इकट्ठे होके उसकी पराजयके लिये यत्नवान होते हैं। महाबलसे युक्त राजा लोग जब सहाय रहित, अकेले निर्व्वल राजाका आक्रमण करनेका यत्न करें, तो वह किस प्रकार स्थिति करनेमें समर्थ होगा? हे भरतश्रेष्ठ! किस तरह वह शत्रु और मित्र लाभ करते और शत्रु तथा मित्रोंके बीच उन्हें कैसी चेष्टा करनी उचित है? मित्र लक्षण युक्त सुहृद यदि शत्रु बन जावे, तो उसके विषयमें कैसा व्यवहार करें और कैसा आचरण करके सुखी होते हैं? राजा किसके साथ विग्रह करे, और किसके सङ्ग सन्धि बन्धन करे तथा बलवान होने पर भी शत्रुओंके बीच किस प्रकार निवास करे। हे महाभाग शत्रुतापन! सब कर्त्तव्य विषयोंमें इसे ही आप कर्त्तव्य समझके मुझसे कहिये; सत्यसन्धि शान्तनुनन्दन भीष्मके अतिरिक्त इस विषयका वक्ता दूसरा कोई भी नहीं है, और इसका श्रोता भी अत्यन्त दुर्लभ है।

भीष्म बोले, हे भरतकुल तिलक तात युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया वह युक्तियुक्त और उसके सुननेसे सुख उत्पन्न होता है; इससे आपदकालमें जैसा कार्य्य करना चाहिये वह सब गुप्त विषय कहता हूं, सुनो। कार्य्योंके सामर्थ निबन्धनसे शत्रु भी मित्र बन जाता है,

मित्र भी शत्रुभावसे दूषित होता है; इससे कार्य्यकी गति सदा ही अनित्य है; तब कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयको विशेषरूपसे निश्चय करना हो, तो देशकालका विचार करके किसीके विषयमें विश्वास करना और किसीके साथ विग्रह करना उचित है। हे भारत! हितैषी पण्डितोंके साथकी शिक्षा करके भी सन्धि करनी उचित है और प्राणरक्षाकेवास्ते शत्रुके साथ भी सन्धि करनी योग्य है। जो मूर्ख पुरुष शत्रुओंके साथ सन्धि स्थापित नहीं करते, वे कोई अर्थ वा फल लाभ नहीं कर सकते और जो पुरुष अर्थयुक्ति अवलम्बन करके समयके अनुसार शत्रुओंके साथ सन्धि और मित्रोंके सङ्ग विरोध करते हैं, महत् फल लाभ करते हैं। प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें किसी वटवृक्षके निकटमें स्थित बिड़ाल और मूषिकके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी महावनके बीच अनेक तरहके पक्षियोंसे युक्त, लतासमूहसे घिरा हुआ, बहुत बड़े शाखा और बादलकी तरह शीतल छायासे युक्त। सब वनमें व्याप्त व्याल और मृगसमूहसे परिपूरित बहुत बड़ा मनोहर बटका वृक्ष था। पलित नाम एक महाबुद्धिमान मूषिक उसके मूलस्थलके अवलम्बसे सौ दरवाजेकी बिल बनाकर उसमें वास करता था। और पक्षियोंको भक्षण करनेवाला लोमश नाम बिड़ाल पहिलेसे ही उस वृक्षकी शाखाका सहारा करके परम सुखसे निवास करता था। बनवासी कोई चाण्डाल प्रतिदिन सूर्य्य अस्त होनेपर उस बट वृक्षके समीप आके पशुपक्षियोंके बन्धनके निमित्त कूटयन्त्र विस्तार किया करता था वह वहांपर यथा रीतिसे तांतमय जालको बिछाके घरमें जाकर सुखसे सोता और रात बीतनेपर सबेरे वहां आके उपस्थित होता था, रातके समय अनेक तरहके मृग उस पाशजालमें बंध जाया करते थे। किसी दिन वह बिड़ाल प्रमादरहित होके भी उस जालमें बंध गया था। सदा आततायी शत्रु उस महाबुद्धिमान बिड़ालके बंधनेपर पलित नाम चूहा अवसर पाके निर्भयताके सहित घूमने लगा। मूषिक विश्वस्तभावसे उस बनके बीच भक्ष्यवस्तुओंको खोजते हुए घूम रहा था, कुछ समयके अनन्तर उस जालमें बंधा हुआ मांस देखा, फिर उसने जालमें बंधे हुए शत्रुके विषयमें मनही मन उपहास करते हुए कूटयन्त्रके ऊपर चढ़के मांस भक्षण करने लगा। उसने मांस भक्षणमें आसक्त होके एक महाघोर निज वैरीको समीप आते देखा। पृथ्वीपर बिलमें वास करनेवाले उस जन्तुका शरीर शर-पुष्पके समान, उसके नेत्र लालवर्ण, वह अत्यन्त चञ्चल था और उसका नाम हरितनकुल था। वह चूहेका गन्ध सूंघके शीघ्र उधर आने लगा और उसे भक्षणके वास्ते ऊर्द्ध मुख होकर पृथ्वी पर स्थित रहा।

इधर उस चूहेने उस वृक्षके कोटरमें रहनेवाले क्षपाचर तीक्ष्णतुण्ड चन्द्रक नाम एक दूसरे वैरी उलूकको वृक्षकी डालियोंपर भ्रमण करते देखा। चूहा नेवला और उलूकके बीच स्थित होकर अत्यन्त भयके वशमें होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा, कि "यह अत्यन्त दुःखमय आपदके समय चारों ओरसे भय उत्पन्न और मरण सम्भव तथा मरण उपस्थित होने पर हितैषी पुरुषको कैसा कार्य्य करना चाहिये।" चूहा इसी प्रकार चारों ओरसे घिरकर सब तरफ भयका कारण देखते हुए भयसे दुःखित होके सूक्ष्म बुद्धिसे विचार करने लगा; कि विपद नष्ट होनेके उपायके जरिये क्लेश निवारण करके जीवनके समयको प्रशस्त करना उचित है, परन्तु चारों ओरसे मेरे समीप यह संशय युक्त समस्त आपद उपस्थित हुई हैं। मैं यदि पृथ्वी पर गमन करूं तो सहसा नकुल आके मुझे भक्षण करेगा,

यहां पर रहनेसे उलूकके ग्रासमें पतित होना पड़ेगा और विड़ाल जालसे छूटने पर मुझे भक्षण करनेमें विलम्ब न करेगा, परन्तु मेरे समान बुद्धिमान पुरुष कभी मोहित होनेयोग्य नहीं है, इससे युक्ति और बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जहांतक होसकेगा, मैं अपने जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करूंगा। नीतिशास्त्रको जाननेवाले, बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष कठिन विपदमें पड़के उसमें नहीं फंसते। इस समय विड़ालसे उपकारके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं देखता हूं; परन्तु यह विषम शत्रु इस समय विपदग्रस्त हुआ है; इसका महत् उपकार करना मुझे उचित मालूम होता है। इस समय मैं तीन शत्रुओंके बीच घिरके किस प्रकार जीवन रक्षाकी आशा कर सकता हूं, इससे विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, तौभी उसका आश्रय ग्रहण करना ही उचित मालूम होता है मैं नीति शास्त्रको अवलम्बन करके इसे हितका उपदेश प्रदान करूं, इस होके जरिये इन सब शत्रुओंको बुद्धि पूर्व्वक वञ्चना कर सकूंगा। यह मूढ़ विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, इस समय अत्यन्त विपदग्रस्त हुआ है, इससे स्वार्थ साधन करनेके लिये सङ्गतिके क्रमसे यदि इसे सम्मत कर सकूं, तभी जीवनकी रक्षा होगी। यह इस समय विपदग्रस्त हुआ है, इससे मेरे साथ सन्धि करनेसे कर भी सकता है। बलवान पुरुष विषम विपदमें पड़नेसे जीवनकी रक्षाके निमित्त सन्निकृष्ट शत्रुके साथ सन्धि करें, ऐसा प्राचीन आर्य्य लोग कहा करते हैं, पण्डित शत्रु भी अच्छा है; मूर्ख मित्र कदापि उत्तम नहीं है। इस समय शत्रु विड़ालके निकट मेरा जीवन प्रतिष्ठित हैं; जो हो, मैं इससे आत्मा मुक्तिका उपाय करूंगा, यह शत्रु मूर्ख होने पर भी मेरे सहवासके कारण पण्डित हो सकेगा। चूहा शत्रुओंमें घिरकर इसी प्रकार चिन्ता करने लगा।

अनन्तर सन्धि विग्रहके समय और प्रयोजन सिद्धिके उपायको जाननेवाला चूहा धीरज देके विड़ालसे यह वचन बोला, हे विड़ाल! मैं सुहृदभावसे तुमसे कहता हूं, कि तुम जीवित हो न? मैं तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो, ऐसी ही इच्छा करता हूं, क्यों कि वह हम दोनोंके वास्ते कल्याणकारी है, हे प्रिय दर्शन। तुम भय मत करो, सुखपूर्व्वक जीवित रहोगे। तुम यदि मेरी हिंसा करनेकी इच्छा न करो, तो मैं तुम्हें विपदसे छुड़ाऊंगा। इस विषयमें कोई उत्तम उपाय है, और मेरे अन्तःकरणमें मालूम होरहा है, जिसके जरिये तुम मेरे सहारे विपदसे छूटोगे, और मैं भी कल्याण लाभ कर सकूंगा आत्मबुद्धि विचारसे मैंने अपने और तुम्हारे कल्याण सिद्धिके वास्ते ऐसा उपाय देखा है, वह मेरे और तुम्हारे दोनोंके ही वास्ते कल्याणकारी हैं। हे विड़ाल। यह नकुल और उलूक पापबुद्धि अवलम्बन करके मेरे सम्मुख वर्त्तमान हैं, ये दोनों यदि मुझे आक्रमण न कर सकें, तभी इस समय मेरा मङ्गल है। यह वृक्षकी डालके ऊपर बैठा हुआ चञ्चल नेत्रवाला पापात्मा उलूक चिल्लाते हुए मुझे देख रहा है, इससे मैं उसके भयसे अत्यन्त व्याकुल होरहा हूं। साधुओंकी आपसमें सप्त पद उच्चारण पूर्व्वक आलापसे ही मित्रता होती है, तुम मेरे वही मित्र और पण्डित हो, मैं तुम्हारे साथ यथार्थ मित्रका कार्य्य करूंगा, अब तुम्हें कुछ भय नहीं है। हे विड़ाल! तुम मेरे विनाश्रय जालको काटनेमें समर्थ न होगे, यदि मेरी हिंसा न करो, तो मैं तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा, तुम इस वृक्षके अग्रभाग और मैं इसके मूलको अवलम्बन करके वास कर रहा हूं हम दोनों ही बहुत दिनोंसे इस वृक्षका आश्रय करके वास कर रहे हैं, वह तुमसे छिपा नहीं है। जो पुरुष किसीका विश्वास नहीं करता और जिसका कोई विश्वास नहीं करते वेही सदा

व्यग्रचित्त दोनों पुरुषोंकी पण्डित लोग प्रशंसा नहीं करते, इसलिये हम लोगोंके सदाका सहवास और प्रीति परिवर्द्धित हो; प्रयोजनका समय बीतनेपर पण्डित लोग निन्दा किया करते हैं, इससे इस विषयमें यही यथार्थ युक्ति समझो, तुम यदि मेरे जीवन रक्षाके अभिलाषी होगे, तो मैं भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा करनेके वास्ते इच्छा करूंगा। कोई मनुष्य काष्ठके सहारे अत्यन्त गहरी महानदी पार होता है, वैसे ही हम दोनोंके मिलापका परिणाम सुखप्रद होवे मैं तुम्हे जालसे छुड़ाऊंगा, तुम भी मुझे विपदसे बचाओगे। मूषिकवर पलित इसी प्रकार दोनोंके हितकर युक्तियुक्त ग्रहणीय वचन कहके समयकी अपेक्षा करते हुए देखने लगा।

अनन्तर चूहेका शत्रु विचक्षण बिड़ाल उसका युक्तियुक्त सुनने योग्य सुन्दर वचन सुनके उत्तर दिया; और वह बुद्धिमान तथा वाक्य निपुण बिड़ाल चूहेके वचनको सुनके और अपनी अवस्था देखके सन्धि करनेमें सम्मत हुआ। अन्तमें तीक्ष्ण दांत और वैदूर्य्यनेत्र बिड़ालोंमें मुख्य लोमश चूहेको धीरे धीरे देखके बोला। हे प्रियदर्शन! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम जो मेरे जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करते हो उससे मैं अत्यन्त ही आनन्दित हुआ हूं यदि कल्याणका उपाय जानते हो, तो करो; विलम्ब मत करो। मैं आपदग्रस्त हूं और तुम मुझसे भी अधिक आपदमें पड़े हो, इससे दोनों आपदग्रस्तोंकी सन्धि होवे; विलम्बका प्रयोजन नहीं है। समयपर जिसमें कार्य्य सिद्धि हो, वैसा ही करो; मैं इस कष्टकारी विपदसे छूटनेपर तुम्हारे किये हुए उपकारको व्यर्थ नहीं करूंगा। मैं मान त्यागके तुम्हारा अनुरक्त, भक्त, शिष्य, हितकारी होकर शरणागत हुआ हूं।

मूषिकवर पलितने बिड़ालका ऐसा वचन सुनके उसे अपने वशमें जानकर विनयपूरित अर्थयुक्त हितकर वचनसे बोला, कि आपने जो उदार वचन कहे, वह तुम्हारे समान पुरुषके विषयमें विचित्र नहीं है, दोनोंके हितके निमित्त मैंने जिस उपायका विधान किया है, वह मुझसे सुनो। नेवलसे मुझे अत्यन्त भय लगता है, इससे मैं तुम्हारे समीप बैठता हूं, मैं तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हूं; इससे आप मेरी रक्षा कीजिये, वध न करना; चन्द्राश्रय उल्लू मुझे आक्रमण करनेकी आशा करता है, इससे उससे मुझे बचाओ। हे मित्र! मैं सत्यपूर्व्वक शपथ करता हूं; कि तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा।

लोमशने पलित चूहेका युक्ति और अर्थयुक्त वचन सुनके हर्षके वशमें होकर उसे देखके स्वागत वचनसे सम्मानित किया। अनन्तर वह वीरवर बिड़ाल सुहृदभावसे स्थित हो प्रसन्नता और शीघ्रतासे पलितको सम्मानित करके विशेष चिन्ताके अनन्तर बोला, हे मित्र! जलदी आओ, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम मेरे प्राण समान सखा हो। हे बुद्धिमान! तुम्हारी ही कृपासे मैं जीवन लाभ करूंगा। इस सङ्कटके समयमें मैं तुम्हारा जो कुछ उपकार कर सकूं, उसकी तुम आज्ञा करो; मैं वैसा ही करूंगा। हे मित्र! हम दोनोंमें सन्धि रहे, इस विपदसे छूटनेपर मैं मित्रों और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम्हारा जो कुछ प्रिय और हितकर कार्य्य होगा, वह सब सिद्ध करूंगा। हे प्रियदर्शन! इस विपदसे छूटनेपर मैं तुम्हारी प्रसन्नता तथा सत्कार साधन करूंगा। उपकृत पुरुष बहुतसा प्रत्युपकार करके भी पूर्व्व उपकारकी समानता नहीं कर सकता। उपकृत पुरुष पहिले उपकारको स्मरण करके प्रत्युपकार किया करता है, और प्रथम उपकर्त्ता निष्कारण ही उपकार करता है।

भीष्म बोले, चूहेने स्वार्थसाधनके लिये बिड़ालको इस प्रकार सम्मत करके विश्वासपूर्व्वक उस अपराध करनेवालेके गोदमें प्रवेश

किया। बुद्धिमान चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार आश्वासित होकर पिता माताकी तरह विश्वस्त होकर उसकी छातीपर शयन किया। नकुल और उल्लू चूहेको बिड़ालके शरीरमें लीन होते देखकर निराश हुए और उन दोनोंकी परम प्रीति देखके अत्यन्त भयभीत तथा विस्मययुक्त होगये। वे लोग बलवान, बुद्धिमान, सत्स्वभाव और सन्निहित होके भी बलपूर्व्वक चूहेको आक्रमण करनेमें असमर्थ होगये। उल्लू और नकुल बिड़ाल और चूहेको कार्य्यवससे सन्धि करते देखकर दोनों ही शीघ्र ही निज स्थानपर चले गये।

हे महाराज! अनन्तर देशकालका जाननेवाला पलितला समयकी उपेक्षा करते हुए थोड़ा थोड़ा बिड़ालके शरीरके पाशको काटने लगा। अनन्तर बिड़ाल बन्धनके दुःखसे अत्यन्त क्लेशित रहके चूहेको पाश काटनेमे बिलम्ब करते देखकर आतुरताके सहित शीघ्रता करने लगा।

बिड़ाल बोला, हे मित्र! तुम बिलम्ब क्यों करते हो? स्वयं कृतकार्य्य होकर क्या तुम मेरी अवज्ञा करते हो। हे शत्रुनाशन! व्याधा आगे आरहा है, इससे तुम जल्दी पाश काटो। शीघ्रता करनेवाले बिड़ालके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान पलित चूहेने अपक्वबुद्धि बिड़ालसे पथ्य और आत्महितकर बचन कहा। हे प्रियदर्शन! तुम मौनभावसे रहो, शीघ्रता और भय करना, तुम्हें उचित नहीं है, मैं समयज्ञ हूं इससे प्रकृत समय परित्याग नहीं करता। हे मित्र! असमयमें आरम्भ कार्य्य करनेवालेका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वह कार्य्य ही समयपर न होनेसे महत् भय उत्पन्न करता है तुम्हारे असमयमें बन्धनसे छूटनेपर तुमसे मुझे भयकी सम्भावना है, इससे समयकी प्रतीक्षा करो, शीघ्रता क्यों करते हो? शस्त्रधारी चाण्डालको जब आते देखोगे, तभी हम लोगोंको ज्योंही भय होगा; त्योंही तुम्हारे पाशको काट दूंगा; उस ही समय तुम बन्धनसे छूटके वृक्षके ऊपर चढोगे, तुम्हारे जीवन रक्षाके अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई भी कार्य्य नहीं है। हे लोमश! तुम्हारे त्रसित तथा डरकर भागनेपर मैं बिलमें प्रवेश करूंगा, तुम भी वृक्षकी शाखाको अवलम्बन करोगे। चूहेने जब आत्महित साधनके निमित्त बिड़ालसे ऐसा कहा, तब जीनेकी इच्छा करनेवाला वाक्य तत्त्वज्ञ महाबुद्धिमान लोमश आत्मकार्य्यको पूर्ण रीतिसे सिद्ध करनेके निमित्त शीघ्रता करके पाशको काटनेमें बिलम्ब करनेवाले चूहेसे बोला, मित्र साधु लोग प्रीतिपूर्व्वक इस प्रकार मित्रका कार्य्य नहीं करते; मैंने जैसे शीघ्रताके सहित तुम्हें बिपदसे मुक्त किया, तुम्हें भी वैसे ही शीघ्रताके सहित मेरा हित साधन करना उचित है। हे बुद्धिमान्! इस समय जिससे हम दोनोंका कल्याण होवे, तुम उस विषयमे यत्नवान करो, अथवा यदि तुम पहिले बैरको स्मरण करके समय बिताओगे, तो इस पापके कारण विशेष रूपसे तुम अपनी आयुको नष्ट होती देखोगे। यदि अज्ञानताके कारण पहिले मैंने कुछ पाप कर्म्म किया हो, तो उसे तुम स्मरण मत करो, मैं क्षमा प्रार्थना करता हूं, तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जावो। बिड़ालके ऐसा कहने पर शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान विज्ञ चूहा उस समय उससे यह हितकर बचन बोला कि, हे बिड़ाल! तुमने निज प्रयोजन सिद्धिके लिये व्याकुल होके जो सब बचन कहा, उसे मैंने सुना है; और मैंने भी अपने प्रयोजन सिद्धिकी अभिलाषासे कातर होके तुमसे जो कहा है, उसे तुम जानते हो। जो मित्र अत्यन्त भयभीत और जो भयसे विचलित है, सांपके मुखसे निज हाथ बचनेकी तरह उसकी यथा रीतिसे रक्षा करनी उचित है। जो पुरुष बलवानके साथ सन्धि करके आत्मरक्षाका उपाय नहीं करता, उसके भुक्त अन्न आदि अपथ्य वस्तुकी तरह

उपकारक नहीं होते। इस जगत्में बिना कारणके कोई पुरुष किसीका मित्र वा सुहृत् नहीं होता; स्वार्थ साधनकेही निमित्त शत्रु मित्रोंका सङ्घटन हुआ करता है। जैसे पाले हुए हाथियोंसे जङ्गली हाथियोंको बांधते हैं, वैसे ही स्वार्थके सहारे ही स्वार्थ साधन हुआ करता है, साध्य हो जानेपर कोई करनेवालेको और नहीं देखता; इससे सब कार्य्योंको ही विशेष रीतिसे करना योग्य है। हे लोमश! तुम उस समय व्याधाके भयसे भागनेमें तत्पर होगे, इससे मुझे पकड़ न सकोगे। मैंने अनेक तांतोंको काट दिया है, अब केवल एक ही तांत बाकी है; उसे भी जल्दी काटूंगा, तुम निश्चिन्त रहो। विपदयुक्त चूहा और बिड़ालके इसी प्रकार बात्तालाप करते हुए रात्रि बीत कर सबेरा हुआ। रात्रि बीतकर सबेरा होनेपर लोमशके हृदयमें भय उत्पन्न होने लगा। अनन्तर भोरके समय एक विकृत-रूपवाला, कृष्ण पिंगल वर्ण, स्थूल नितम्बवाला, कशराहत रुक्ष-मूर्त्ति, ऊंचे कानोंसे युक्त, बृहत् वक्र कुत्तोंके समूहसे घिरा हुआ, मलिन, बदसूरत और हाथमें शस्त्र लिये हुए परिघ नाम चाण्डाल दीख पड़ा। बिड़ाल उस यमदूतके समान चाण्डालको देखकर त्रस्तचित्त तथा भयभीत होके चूहेसे बोला, मित्र! इस समय क्या करोगे? चूहेने बिड़ालका ऐसा वचन सुनते ही पाश काट दिया। बिड़ालने बन्धनसे छूटकर और शत्रुके महाघोर भयसे मुक्त होकर उस वृक्ष पर चढ़के उसकी शाखाका अवलम्बन किया पलित चूहा भी बिलमें घुस गया।

हे भरतश्रेष्ठ! इधर चाण्डाल वागुरा ग्रहण करके क्षण भरमें सब तरफ देखके निराश होकर निज स्थान पर चला गया। अनन्तर वृक्षकी शाखा पर बैठे हुए लोमशने वैसी विपदसे छूटके तथा दुर्लभ जीवन लाभ करके बिलके बीच स्थित पलितको पुकारके कहा, हे मित्र! तुम मेरे साथ क्यों बिना कुछ बार्त्तालाप किये ही सहसा निज स्थान पर गये हो? तुमने मेरा जैसा उपकार किया है, वह मुझे सदाके वास्ते स्मरणीय है और मैं तुम्हारा उपकार करनेमें समर्थ हूं; इसे जान कर भी तुम मेरी शङ्का तो नहीं करते हो? हे मित्र! तुम मेरे विश्वास पात्र होके प्राणदान करके सुख भोगके समय निकट क्यों नहीं आते हो? जो पुरुष पहिले मित्रता करके फिर उसका अनुष्ठान नहीं करता, वह नीचबुद्धि कष्टकारी आपदके समय मित्र लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता। हे मित्र! तुमने सामर्थके अनुसार मेरा सत्कार किया है, मैंने भी आत्म सुखमें आसक्त होकर तुम्हारे साथ मित्रता की है, इससे मेरे साथ सुख भोग करना तुम्हें उचित है। मेरे जो सब बन्धुबान्धव, सम्बन्धी आदि आत्मीय हैं, वे सब इस प्रकार तुम्हारा सम्मान करेंगे, जैसे शिष्य लोग गुरुकी सेवा करते हैं; तुम मेरे प्राणदाता हो, इससे मैं भी तुम्हारा और तुम्हारे बन्धु, बान्धवोंका सम्मान करूंगा; कौन कृतज्ञ पुरुष अपने जीवन दाताकी, पूजा नहीं करता? तुम मेरे शरीर, घर तथा सब धनके स्वामी बनो और मुझे सत् उपदेश प्रदान करो। हे बुद्धिमान्! तुम मेरे अमात्य बनो और पिताकी तरह मुझे बुद्धि दान किया करो। मैंने अपने जीवनकी शपथ करके कहा है कि मुझसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है; तुम बुद्धि कौशलमें साक्षात् शुक्राचार्य्य हो इससे मन्त्रबलसे मेरा जीवन दान करके तुमने हम लोगोंके ऊपर अधिकार किया है। बिड़ालने इसी प्रकार चूहेसे सान्त्व वचन कहा, तब परमार्थको जाननेवाला चूहा कोमल भावसे आत्महितकर वचन कहने लगा। वह बोला, हे लोमश! तुमने जो कुछ कहा, मैंने वह सब सुना, इस समय मैं जो कुछ विचार सिद्ध जानके कहता हूं, उसे सुनो। शत्रु मित्र दोनोंको ही

विशेष रूपसे मालूम करना उचित है, इससे ही लोग प्राज्ञ सम्मत अत्यन्त सूक्ष्म विषय कहा करते है। शत्रुरूपी मित्रों और मित्ररूपी शत्रुओंके साथ सन्धि होने पर भी काम क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष उसे प्रकृत रीतिसे मालूम नहीं कर सकते। इस जगत्‌में कभी स्वाभाविक ही कोई किसीका मित्र वा शत्रु नहीं होता, कार्य्य वशसे ही मित्र और शत्रु हुआ करते हैं। जो पुरुष निज प्रयोजन सिद्धिके वास्ते जिसे अवलम्बन करके जीवन धारण करते हैं, यदि उसकी पीड़ा देखें, तो प्राण त्याग किया करते हैं, जबतक उस भावका विपर्य्यय नहीं होता, तबतक वह उसके मित्र हुआ करते है। सुहृदता और शत्रुता स्थिर नहीं रहती; प्रयोजनसे ही शत्रु वा मित्र हुआ करते हैं। कालक्रमसे मित्र भी शत्रु होता और शत्रु भी मित्र हुआ करता है, इससे स्वार्थ ही बलवान है। जो पुरुष प्रयोजन न जानके मित्रोंका विश्वास करता है, वह शत्रुओंके विषयमें अविश्वास स्थापित किया करता है, उसका जीवन विचलित होता है। शत्रु वा मित्रके विषयमें प्रयोजन न जानके जो पुरुष प्रसन्न-चित्त होता है, उसकी भी बुद्धि विचलित होजाती है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे, विश्वासी पुरुषका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़का काटता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे सम्बन्धी और बान्धव आदि प्रयोजनके अनुसार प्रिय हुआ करते हैं। प्रिय पुत्रके पतित होने पर पिता माता उसे परित्याग करके जन समाजमें अपनी रक्षा करते हैं, इससे स्वार्थ कैसा सारवान है; उसे मालूम करो। हे बुद्धिमान्! जो पुरुष किसी विपदसे छूटने पर फिर शत्रुके सुखका उपाय खोजता है; उसकी प्रायः निष्कृति नहीं होती; तुम वटवृक्षसे इस स्थान पर उतरे थे; परन्तु पहिले ही जो जालबन्धन संयोजित हुआ था; चपलताके कारण उसे न जान सके। मनसे चञ्चल दूसरा कुछ भी नहीं है, इससे दूसरेकी चपलता किस प्रकार अधिक हो सकती है? इसलिये चित्त चञ्चल होनेसे निश्चय ही सब कार्य्य नष्ट होते है। इस समय तुम जो मुझसे मधुर वचन कहते हो, वह मुझे प्रसन्न करनेवाला है यह ठीक है, परन्तु मै भी विस्तार पूर्व्वक मित्रताके उपायसे युक्त जो कथा कहता हूं, उसे सुनो। इस संसारमें लोग कारणके अनुसार ही सबके प्यारे होते हैं और कारणके अनुसार ही द्वेष हुआ करता है; जीव मात्र ही प्रयोजन चाहनेवाले हैं, इससे बिना कारणके कोई किसीका प्रिय नहीं होता, दो सहोदर भाइयोंका सौभ्रात्र और दम्पतिका परस्पर प्रेम जब बिना कारणके नहीं है, तब इस जगत् में किसीकी प्रीति निष्कारण हो सङ्घटित होती है, ऐसा नहीं देखा गया है, तब भाई और भार्य्या किसी कारणसे क्रुद्ध होनेपर भी वे लोग स्वभाविक प्रसन्न हुआ करते है, दूसरे लोग उस तरह प्रीतियुक्त नहीं होते। इस जगत्‌में कोई दानसे जरिये प्रिय होता है, कोई प्रिय वचनसे प्यारा बनता है; दूसरे कार्य्यके निमित्त मन्त्र, होम और जपसे प्रीतिलाभ करते हैं। हम दोनोंकी प्रीति विशेष कारणसे उत्पन्न हुई थी, इस समय उस कारणकी समाप्ति हुई है, इससे दूसरा कोई श्रेष्ठ कारण रहनेपर भी वह प्रीति निवर्त्तित होती है। ऐसा कौनसा कारण है,—जिससे मैं तुम्हारा प्यारा बन सकूं, बिना कारणके जैसा व्यवहार करना होता है, उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं। काल ही कारणको सुधारता है, कारण कभी स्वार्थसे रहित नहीं होता। बुद्धिमान पुरुष स्वार्थ विषयमें निपुण हैं, इससे लोग प्राज्ञ पुरुषोंका ही अनुवर्त्तन किया करते हैं। स्वर्थको जाननेवाले विद्वान पुरुषके विषयमें ऐसा वचन कहना तुम्हें उचित नहीं है। तुम

मेरे विषयमें स्नेह प्रकाश कर सकते हो, यह ठीक है, परन्तु यह उस स्नेहके प्रकाशका समय नहीं है; इससे स्वार्थके कारणसे मैं अस्थिर सन्धि-विग्रह विषयमें विलक्षण रीतिसे स्थिर हूं। यह सब सन्धि विग्रह क्षण क्षणमें बादलकी तरह अनेक प्रकारके रूप धारण करते हैं; तुम आज ही मेरे शत्रु थे, अभी हमारे मित्र हुए; फिर आज ही मेरे शत्रु हुए हो, इससे सब योगोंकी कैसी चपलता है, उसे देखो। पहिले जबतक कारण था, तबतक हम लोगोंकी मित्रता थी, इस समय वह मित्रता चली गई है, वह कालके अनुसार दूसरे किसी कारणसे नहीं हो सकती। तुम स्वाभाविक ही मेरे शत्रु हो परन्तु दूसरे वैरोसे मेरी रक्षा करनेकी समाशके कारण मित्र हुए थे, उस मित्रताका कार्य्य निवृत्त हुआ है। अब स्वभावने शत्रुभाव धारण किया है, इससे मैं प्राचीन पुरुषोंके बनाये हुए शास्त्रोंको जानके किस प्रकार तुम्हारे कृतपाशमें प्रवेश करूं? मैं तुम्हारे बलवीर्य्यके सहारे विपदसे मुक्त हुआ हूं, तुम भी मेरी सामर्थके प्रभावसे विपदसे पार हुए हो; इससे जब आपसका अनुग्रह निवृत्त हुआ है, तब फिर समागम नहीं होसकता। हे प्रियदर्शन! इस समय तुम कृतार्थ हुए हो, मेरा भी प्रयोजन सिद्ध हुआ है, इससे मुझे भक्षण करनेके अतिरिक्त आज तुम्हारा मेरे सङ्ग कुछ भी कार्य्य नहीं है। मैं भक्ष्य हूं, तुम भोक्ता हो, मैं निर्ब्बल और तुम बलवान हो; ऐसे असदृश सम्बन्धके स्थानमें हम दोनोंकी सन्धि नहीं होसकती। इस समय मैं तुम्हारे बुद्धि कौशल विषयमें ऐसा ही मालूम करता हूं कि आपदसे छूटके अब तुम अनायास कर्म्मके जरिये भक्ष्य लाभकी इच्छा करते हो, तुम भक्ष्यके वास्ते ही बन्धे थे, और क्षुधासे पीड़ित होनेपर मेरे सहारे मुक्त हुए हो। इस समय शास्त्रसिद्ध बुद्धि अवलम्बन करके मुझे भक्षण करना, मैं तुम्हें भूखा समझता हूं और तुम्हारे भोजनका समय भी उपस्थित हुआ है। इससे तुम मुझे ही लक्ष्य करके भक्ष्य खोज रहे हो। मित्र! तुम स्त्री-पुत्रोंके बीचमें रहके भी जब मेरे साथ सन्धि करके सेवा करनेमें यत्नवान होरहे हो; तब मैं उसमें सम्मत होनेमे समर्थ नहीं हूं। तुम्हारी प्रियभार्य्या और प्रणयीपुत्र तुम्हारे सङ्ग मुझे स्थित देखके भक्षण करनेमें क्यों विरत होंगे? समागमका कारण शेष हुआ है, इससे अब मैं फिर तुम्हारे साथ न मिलूंगा; यदि तुम कृतज्ञता स्मरण करो, तो स्वस्थ रहके मेरी कल्याणकी चिन्ता करते रहो, जो असत् शत्रु क्लेश युक्त और भूखा होकर अपना भक्ष्य खोजता है, कौन बुद्धिमान पुरुष उसके अधिकारमें गमन करता है? तुम्हारा कल्याण होवे, मैं जाता हूं। मैं तुमसे दूर रहके भी व्याकुल होता हूं। हे लोमश! इससे मैं तुम्हारे साथ न मिल सकूंगा तुम निवृत्त रहो। और यदि तुम कृतज्ञ होनेकी अभिलाष करते हो, तो इस्नेहका स्मरण करो; मेरे विश्वस्त तथा असावधान रहनेपर कभी मेरा अनुसरण न करना, ऐसा होनेसे ही सौहृद्य-रक्षा हुई।

निर्ब्बल पुरुषको बलवानके साथ संसर्ग रखना कभी उत्तम नहीं है, भयका कारण शेष होनेपर भी निबल पुरुषको बलवानके समीप सदा भय करना उचित है। यदि तुम्हारा दूसरा कुछ प्रयोजन हो तो कहो क्या करूं? मैं तुम्हारी अभिलषित सब वस्तुओंको ही प्रदान कर सकता हूं परन्तु आत्म प्रदान नहीं कर सकता; अपने वास्ते पुत्र, कन्या, धन, रत्न और राज्य पर्य्यन्त परित्याग किया जासकता है, इससे सर्व्वस्व परित्याग करके भी स्वयं अपनी रक्षा करे। अपनी रक्षाके वास्ते जो सब धन रत्न आदि ऐश्वर्य्य शत्रुके हाथमें समर्पण किया जाता है, जीवित रहने पर वह सब फिर निज हस्त-

गत हो सकता है ; आत्म प्रदान करनेसे धन रत्नोंकी तरह वह फिर नहीं लौटता ; इससे आत्म प्रदान किसीको भी इष्ट नहीं है, यह मैंने जन समाजमें सुना है , इससे तुम यह सब आलोचना करके इस अध्यवसायसे निवृत्त हो जाओ । भार्य्या और धन आदिसे सदा आत्माकी रक्षा करनी उचित है, जो सब पुरुष आत्म रक्षामें तत्पर होकर विचार पूर्व्वक कार्य्य करते हैं ; उन्हें निज दोष जनित आपदकी सम्भावना नहीं होती जो स्वयं निबल होनेपर भी शत्रुको भली भांति बलवान रूपसे मालूम होते हैं, उनकी शास्त्रदर्शिनी स्थिर बुद्धि कभी विचलित नहीं होती। पलित चूहाने जब मार्जारको इस प्रकार विस्पष्ट निन्दा की तब वह लज्जित होकर चूहेसे कहने लगा ।

लोमश बोला, हे मित्र ! मैं तुम्हारे साथ सत्य शपथ करता हूं, कि मित्रके सङ्ग अनिष्ट आचरण करना अत्यन्त निन्दित कर्म्म है, यह मैं जानता हूं ; इससे तुम मेरे हितकारी और बुद्धि भी वैसी ही है, यह भी मुझे अविदित नहीं है ; तुमने अर्थ शास्त्रकी आलोचनाके जरिये भिन्न भाव देखके जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे दूसरी तरह मालूम करना तुम्हें उचित नहीं है । तुमने मेरा प्राणदान किया है, इस ही कारण मुझसे तुम्हारी सुहृदता हुई है । मैं धर्म्मज्ञ, गुणज्ञ, कृतज्ञ और मित्रवत्सल हूं ; विशेष करके तुमपर अनुरक्त हुआ हूं ; इससे मेरे साथ फिर तुम्हें ऐसा आचरण करना उचित नहीं है, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मैं बान्धवोंके सहित प्राण परित्याग कर सकता हूं, धीर लोग मेरे समान मनस्वी पुरुषका विश्वास किया करते हैं । इससे हे धर्म्मतत्वके जाननेवाले ! मेरे विषयमें तुम्हें शङ्का करनी उचित नहीं है । चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार प्रशंसित होकर उसे मानसिक भावसे पूरित गम्भीर वचनसे कहा, हे मित्र ! तुम साधु हो, तुम्हारे वचनका मर्म्म जानके मैं प्रसन्न हुआ, परन्तु इस समय मैं तुम्हारा फिर विश्वास नहीं कर सकता, तुम प्रशंसा वा धन बलसे फिर मुझे वशीभूत न कर सकोगे ; क्योंकि विज्ञ पुरुष बिना कारण शत्रुके वशमें नहीं होते ; इस विषयमें शुक्राचार्य्यने जो दो गाथा कही है, उसे सुनो । बलवान पुरुष शत्रु साधारण कार्य्यमें सन्धि करके युक्तिके सहित सावधान रहे और कृतकार्य्य होनेपर भी शत्रुका विश्वास न करे, अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे और विश्वासपात्रका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है । स्वयं सदा दूसरेका विश्वासपात्र होवे, परन्तु दूसरेका विश्वास न करे. इससे सब अवस्थामें ही अपने जीवनकी रक्षा करनी उचित है । जीवित रहनेपर द्रव्य-सामग्री, सन्तान-सन्तति सब हुआ करती है और अविश्वास ही परम श्रेष्ठ है, यही समस्त नीति शास्त्रोंका संक्षिप्त उपदेश है ; इससे मनुष्य मात्रका अविश्वास करना अपना अत्यन्त हित-कर विषय है । मनुष्य यदि निबल होके भी किसीका विश्वास न करें तो वे शत्रुओंके वशमें न होवें और यदि मनुष्य बलवान होके भी शत्रुका विश्वास करे, तो उसका वध हुआ करता है । हे बिड़ाल ! इससे तुम मेरी जातिके शत्रु हो तब तुमसे आत्मरक्षा करनी मुझे सदा उचित है, तुम भी निज शत्रु पापी जाति चाण्डालसे अपनी रक्षा करो ।

बिड़ाल चूहेका ऐसा वचन सुनके चाण्डालके भयसे डरके वृक्षकी शाखा त्यागके शीघ्रताके सहित वहांसे भाग गया और शास्त्रतत्व जाननेवाला बुद्धिमान चूहा निज बुद्धि सामर्थ प्रदर्शित करके अपने बिलके भीतर प्रविष्ट हुआ । हे महाराज ! इसी तरह बुद्धिमान चूहेने निबल होनेपर भी अकेले बुद्धिबलसे अनेक शत्रुओंके निकटसे मुक्तिलाभ की थी । बुद्धिमान पुरुषको अपेक्षाकृत प्रबल वैरीके

साथ सन्धि करनी योग्य है चूहा और बिड़ाल इसी प्रकार सन्धिबलसे आपसके संकटसे छूटे थे। महाराज! इसी भांति विस्तारपूर्व्वक मैंने चत्रधर्म्मका मार्ग दिखाया है, अब उसे संक्षेपसे कहता हूं, सुनो। जो एक बार बैर उत्पन्न करके फिर आपसमें प्रीति स्थापित करनेकी इच्छा करता है, परस्परमें प्रतारणा करना ही उसका मानसिक उद्देश्य है। उसमेंसे अपेक्षाकृत बुद्धिमान पुरुष निज बुद्धि कौशलसे दूसरेको ठगनेमें समर्थ होता है और निर्बुद्धि पुरुष निज असावधानता दोषसे प्रतारित हुआ करते हैं। इससे भयभीत होने पर भी निडरकी तरह और दूसरेके विषयमें अविश्वास रहने पर भी विश्वासीकी तरह व्यवहार करना उचित है। जो पुरुष इस तरह सावधान रहता है, वह कभी विचलित नहीं होता और विचलित होनेपर भी बिनष्ट नहीं होता।

महाराज! उचित समय उपस्थित होनेपर शत्रुके साथ सन्धि करे, और समयके अनुसार मित्रके साथ भी विग्रह करनेमें प्रवृत्त होवे, सन्धिविग्रहके जाननेवाले पण्डितोंके जरिये ऐसाही सिद्धान्त कर्त्तव्य कहके वर्णित हुआ है। हे महाराज! ऐसा ही जानके शास्त्रके अर्थको मालूम करके भयका कारण उपस्थित होनेके पहिलेहो स्थिर और सावधान होकर भयभीतकी तरह निवास करे। और भय उपस्थित होनेके पहिले भययुक्त व्यवहार तथा शत्रुके साथ अवश्य सन्धि करनी चाहिये; भयसे सावधान बुद्धि उत्पन्न हुआ करती हैं। हे महाराज! जो लोग भयका कारण उपस्थित न होते ही भीत होते हैं उन्हें कभी भय उत्पन्न नहीं होता; और जो निर्भयचित्तसे सबका विश्वास करते हैं, उन्हें सदा ही भय उपस्थित हुआ करता है। एकबारगी भीत न होवे— ऐसी सलाह देनी किसी तरह योग्य नहीं है, भयभीत पुरुष अपनेको अविज्ञ समझके सदा बहुदर्शी पण्डितोंके निकट गमन किया करता है; इससे बुद्धिमान पुरुष भीत होके निर्भयकी तरह निवास और अविश्वासी लोगोंके समीप विश्वास प्रदर्शित करके सब कार्य्योंकी गुरुता मालूम करके भी लोगोंके समीप मिथ्या व्यवहार न करे। हे युधिष्ठिर! मैंने नीतिशास्त्रके सार मर्म्मको वर्णन करनेके उद्देश्यसे इस मर्ज्जार मूषिकके इतिहासको कहा है, तुम इसे हृदयङ्गम करके शत्रु और मित्रोंके बीच सन्धि विग्रह स्थापन करनेके विधानकी व्यवस्था करो और इस विषयको सुनके बुद्धि शुद्ध करके सन्धि विग्रहके समय शत्रु मित्रोंके मानसिक भावको अवरोध करके आपदकालमें मुक्तिके उपायको मालूम करो। शत्रुके साधारण कार्य्योंमें निरत पुरुष अपेक्षानुसार बलवान शत्रुके साथ सन्धि करके उसके साथ फिर समागम होनेपर युक्तिके अनुसार व्यवहार करे और कृतकार्य्य होके भी उसका विश्वास न करे। महाराज! यह नीतिकाव्य धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गसे युक्त है; इससे इसे सुनके फिर प्रजा पालन करते हुए तुम अभ्युदय लाभ करोगे।

हे पाण्डुनन्दन! तुम ब्राह्मणोंके सहित निज राजधानीमें गमन करो, ब्राह्मण लोग ही इस लोक और स्वर्ग लोकमें परम कल्याण साधन किया करते हैं। हे महाराज! ये लोग ही धर्म्मवेत्ता और अत्यन्त कृतज्ञ हैं, ये लोग पूजित होनेसे परम कल्याणका विधान करते हैं, इससे इनकी पूजा करनी उचित है। हे राजन्! तुम न्यायके अनुसार यथा रीतिसे राज्य, परम कल्याण, यश, कीर्त्ति और वंशकी वृद्धि करनेवाली सन्तान लाभ करोगे। हे भरत कुलप्रदीप! उक्त मार्ज्जार मूषकके सन्धिविग्रह विषयक बुद्धिको श्रेष्ठ करनेवाले सुन्दर वचनको यथार्थ रूपसे हृदयङ्गम करके राजाको शत्रु मण्डलीके बीच निवास करना उचित है।

१३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहो! शत्रुओंके बीच विश्वास करना उचित नहीं है; आपने ऐसी ही मन्त्रणा प्रदान की है, यदि किसीका भी विश्वास करना उचित न हुआ, तो राजा किस उपायका अवलम्बन करके निवास करेगा? हे पितामह! विश्वासके कारणसे ही राजाओंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है, इससे राजा लोग किसी पुरुषका विश्वास न करनेसे किस प्रकार शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे। इस अविश्वासकी कथा सुनकर मेरा मन अत्यन्त मोहित होरहा है, इससे आप मेरे इस सन्देहको नष्ट कीजिये।

भीष्म बोले, ब्रह्मदत्त राजाके मन्दिरमें पूजनीके साथ उनका जो वार्त्तालाप हुआ था। उस सम्वादको सुनो। ब्रह्मदत्त राजाके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक पूजनी नाम चिड़िया बहुत दिनोंसे उनके सङ्ग वास करती थी। यह जीवजीवक पक्षीकी तरह सब जीवोंकी बोली समझ सकती थी और तिर्य्यग्योनिमें उत्पन्न होके भी सर्वज्ञ तथा सब तत्त्वोंको जाननेवाली थी। पूजनीने उस राजमन्दिरमें एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया उस ही समय राजाकी भी राजमहिषीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कृतज्ञ चिड़िया उन दोनोंके वास्ते किसी समय समुद्रके किनारे गमन करके दो फल लाकर निज पुत्र और राजपुत्रको पुष्टिके निमित्त दोनोंको एक एक फल दिया। इसी तरह वह वैसे अमृत स्वादके समान बल और तेजको बढ़ानेवाले, उन दोनों फलोंको बार बार लाके उन बालकोंको देने लगी, राजपुत्र उस फलके खानेसे अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हुआ। एक समय वह बालक राजपुत्र दासीकी गोदमें चढ़के पक्षीके बच्चेके समीप आके उसे देखा, अनन्तर राजकुमार बाल्यस्वभावके कारण यत्नपूर्व्वक उस पक्षीके बच्चेके साथ खेलने लगा। हे राजेन्द्र! अनन्तर राजपुत्रने उस समजात बच्चेको ऊपर उठाके उसे मारकर दासीके समीप चला गया। हे राजन्! अनन्तर वह पूजनी फल लेके आई और अपने बच्चेको राजपुत्रके जरिये मरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा। पूजनी बच्चेको मरा देखके, मन मलिन, दीन और दुःखसे सन्तापित होकर रोती हुई बोली, कि क्षत्रियके साथ सहवास, प्रीत वा सुहृदता न करनी चाहिये, ये लोग प्रयोजनके कारण पुरुषको सान्त्वन करते और कृतकार्य्य होनेपर उसे परित्याग किया करते हैं, सबकी बुराई करनेवाले क्षत्रियोंके विषयमें विश्वास करना उचित नहीं है, ये लोग सदा अपकार करके भी निरर्थक सान्त्वना करते हैं; इससे आज मैं इस विश्वासघाती नृशंस और कृतघ्न क्षत्रिय बालकसे यथा उचित वैरका पलटा लूंगी, साथमें उत्पन्न होके बढ़े हुए, साथमें भोजन करनेवाले और शरणागत पुरुषका वध करनेसे इसे तीन तरहका पाप हुआ है। पूजनी ऐसा वचन कहके चङ्गुलसे राजपुत्रके दोनों नेत्रोंको निकालके आकाशमें उड़के यह वचन बोली, इस संसारमें जो पुरुष इच्छापूर्व्वक पापकर्म्म करता है, वह पाप उस ही समय उस पाप करनेवालेको स्पर्श किया करता है। जिसका प्रतिकार किया जाता है, उसके शुभाशुभ फल नष्ट नहीं होते। महाराज! यद्यपि गृहस्वामीका किया हुआ कुछ भी पापकर्म्म न दीख पड़े, तौभी उसके पुत्र पौत्र आदिकोंमें वह पापकर्म्मका फल दीख पड़ता है।

ब्रह्मदत्त निज पुत्रको पूजनीके जरिये अन्धा होते देखकर उसके किये हुए कार्य्यको प्रतिकार हुआ है, ऐसा समझके पूजनीसे कहने लगे। ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी! मेरे पुत्रने जो किया, तुमने उसका पलटा लिया है, इससे दोनोंके कार्य्य समान हुए हैं, इसलिये तुम मेरे गृहमें वास करो; यहांसे मत जाओ।

पूजनी बोली, जिस पुरुषने जिस स्थानपर

एक बेर अपराध किया है, पण्डित लोग उसके उस स्थानमें बास करनेकी प्रशंसा नहीं करते; उसका वहांसे भागना ही कल्याणकारी है; कृतबैर पुरुषके अत्यन्त सान्त-वचन प्रयोग करनेपर भी उसका विश्वास करना उचित नहीं है; जो मूढ़ पुरुष उसका विश्वास करता है, वह शीघ्र ही बध्य होता है और शत्रुभावकी भी एक ही समयमें शान्ति नहीं होती। जिनमें आपसकी शत्रुता है, उन लोगोंके पुत्रपौत्र आदि सभी युद्ध-विग्रह आदिसे नष्ट होते हैं, पुत्रपौत्रोंके नाशसे परलोक भी नष्ट हो जाता है। बैर करनेवाले पुरुष मात्रका अविश्वास करना ही सुखोदयका कारण है; विश्वासघातक पुरुषोंके साथ एकबारगी विश्वास करना उचित नहीं है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे और विश्वस्त पुरुषका अत्यन्त विश्वास करना भी योग्य नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़को काटता है, स्वयं दूसरेका विश्वास पात्र होवे, परन्तु दूसरेका विश्वास न करे। इस जगत्में पिता माता ही बान्धवोंके बीच वरिष्ठ हैं, भार्य्या हरण तथा पुत्र, भ्राता, मित्र आदि धन हरण करनेसे शत्रुपद वाच्य हुआ करते हैं; इसलिये अकेला आत्मा ही केवल सुख दुःखका भोगनेवाला है। जिन लोगोंमें एक बेर आपसमें बैर हुआ है, फिर उन लोगोंकी सन्धि सङ्घटित नहीं होती। मैं जिस लिये तुम्हारे गृहमें बास करती थी, वह कारण शेष हुआ है; पहिले किसी पुरुषकी बुराई करके फिर धनदान और सम्मानसे उसे सम्मानित करनेपर उसका मन कभी विश्वास युक्त नहीं होता; बलवान पुरुषोंका ऐसा ही व्यवहार है, कि निबलोंको भय भीत करते हैं। जिस स्थानमें पहिले सम्मान और पीछे अपमान होवे, बुद्धिमान पुरुष शत्रुसे सम्मानित होनेपर भी वैसे स्थानको परित्याग करे; मैंने बहुत समयसे सम्मानित होके आपके गृहमें बास किया, इस समय बैर भाव उत्पन्न हुआ; इसलिये मैं अनायास ही शीघ्रताके सहित इस स्थानसे गमन करूंगी।

ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी! जो लोग अपकारका प्रत्यपकार करते हैं, उससे किसी वे अपराधी नहीं होते, बल्कि उससे वे अऋणी हुआ करते हैं, इसलिये तुम इस ही स्थानमें बास करो, दूसरी जगह मत जाओ।

पूजनी बोली, अपकारक और प्रत्यपकारकमें फिर मित्रता वा सान्ध नहीं होती, इसे उन लोगोंका अन्तःकरण ही विशेष रूपसे जान सकता है।

ब्रह्मदत्त बोले, अनेक स्थानोंमें अपकर्त्ता और प्रत्यपकर्त्ताका फिर मिलन हुआ करता है, तथा उनके शत्रुताकी शान्ति देखी गई है, दूसरी बार फिर अनिष्ट घटना भी नहीं हुई।

पूजनी बोली, बैरकी कभी समाप्ति नहीं होती, शत्रुने मेरा सान्त्वना की है ऐसा समझके उसका विश्वास न करे; संसारमें विश्वासके कारण ही लोग मारे जाते हैं; इसलिये शत्रुके साथ भेंट न होनी ही कल्याणकारी है, उत्तम पानी चढ़े हुए शस्त्रके जरिये जिन लोगोंको जय नहीं किया जा सकता, उन्हें इस प्रकार सान्त्व वचनके जरिये वशमें करना उचित है, जैसे करेणुका समूह हाथियोंको वशीभूत करता है।

ब्रह्मदत्त बोले, चाण्डालके सङ्ग कुत्तोंकी तरह प्राणनाश करनेवाले पुरुषोंके निकट भी परस्परके सहवासके कारण प्रीति उत्पन्न होती है, और उस ही कारणसे आपसमें विश्वास उत्पन्न हुआ करता है। कृतबैर पुरुषोंका बैरीभाव परस्परके सहवासके कारण मृदुताको प्राप्त होकर पद्म-पत्र पर स्थित जलकी तरह स्थिर नहीं रहता।

पूजनी बोली, बैर पांच तरहसे उत्पन्न होता है, इसे पण्डित लोग जानते हैं। पहिला

कृष्ण और शिशुपालके विवादकी भांति स्त्रीके वास्ते, दूसरा कौरव और पाण्डवोंकी तरह वस्तुके लिये, तीसरा द्रुपद और द्रोणाचार्य्यकी भांति बचनके कारण चौथा बिडाल और चूहेकी स्वभावसिद्ध जाति वैर, पांचवा मेरे और आपके अपराधके कारण जो सङ्कटित हुआ है, यह अपराधज है। उसके बीच प्रकाश्य वा अप्रकाश्य भावसे दोषके बलाबलको विचारके दातव्य पुरुषको किसीका विशेष करके चत्रियका बध करना उचित नहीं है; मित्रके साथ शत्रुता होने पर फिर उसका विश्वास न करे। काठके बीच छिपी हुई अग्निकी तरह वैरभाव गूढ़ भावसे स्थित रहता है। हे राजन्! समुद्रमें रहनेवाली वाड़वाग्निकी तरह वैराग्नि वित्त, कठोरता, सान्त्व बचन और शास्त्रके जरिये शान्त नहीं होती। महाराज बढ़ी हुई वैरकी अग्नि और अपराध युक्त कर्म एक पक्षको जलाके नष्ट बिना किये शान्त नहीं होते। प्रथम अपकार करनेवाले पुरुषको धन और सम्मानके जरिये सत्कृत करके उसमें मित्रकी तरह विश्वास स्थापित करना उचित नहीं है; क्योंकि उसके किये हुए कर्म्म ही बलपूर्वक भयभीत करते हैं। मैंने पहिले कभी आपकी बुराई नहीं की, आपने भी पहिले कभी मेरी बुराई नहीं की थी, इस ही कारण मैंने आपके गृहमें निवास किया है; परन्तु इस समय अब मैं आपका विश्वास नहीं करती।

ब्रह्मदत्त बोले, काल वशसे कार्य्य सङ्कटित होते हैं, और कालके अनुसार अनेक क्रिया आरम्भ हुआ करती हैं; इस लिये कौन पुरुष किसीके समीप अपराधी होगा? कालके वशमे सब जगत् है, हम दोनोंका कुछ दोष नहीं है। जन्म, मृत्यु, दोनों ही समान रूपसे हुआ करती है; जीव कालके अनुसार जन्मता और कालवशसे ही मरता है। हर एक पुरुषोंके बीच कितने ही पुरुष एक ही समयमें बध्य होते है, दूसरे नहीं होते। जैसे अग्नि काठ प्राप्त होनेसे ही भस्म करती है, वैसे ही काल सब जीवोंको जला रहा है। हे कल्याणि! तुम अथवा मैं हम दोनों ही परस्परके दुःखके कारण नहीं हैं क्योंकि काल ही सदा देहधारियोंके सुख दुःखको हरण किया करता है। हे पूजनी! इससे जैसे तुम मेरे गृहमें रहती थी, वैसे ही प्रीतिपूर्व्वक इच्छानुसार शंका रहित चित्तसे वास करो; तुमने मेरी जो बुराई की है, उसे मैंने चमा किया और मुझसे तुम्हारा जो कुछ अपकार हुआ है, उसे तुम चमा करो।

पूजनी बोली, हे राजन्! यदि आपके अभिप्रायके अनुसार काल ही सबका कारण होता, तो किसीके साथ कोई पुरुषकी शत्रुता न होती; बान्धवोंके मरने पर बन्धु लोग किस कारण दुःखको प्राप्त होते हैं? देवता और दानवोंने ही किस कारणसे पहिले आपसमें युद्ध किया था? यदि कालके अनुसार ही जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख आदि होते हैं, तो वैद्य लोग रोगियोंके वास्ते क्यों औषधि तय्यार करनेमें प्रवृत्त होते हैं? यदि काल वशसे ही जीवोंकी मृत्यु होती, तो औषध प्रयोग करनेका क्या प्रयोजन था? शोकसे मूर्च्छित पुरुष ही किस कारण अत्यन्त प्रलाप बचन कहा करते हैं? यदि काल ही आपके मतमें प्रमाण हुआ तो कर्त्तृसमूहके विषयमें धर्म्म विषयक विधि निषेध आदि निष्फल हो जावेंगे। हे नरनाथ! आपके पुत्रने मेरे सन्तानको नष्ट किया, इस ही कारण मैंने भी उसे घायल किया है, इस समय आप मुझे मारेंगे। मैंने पुत्र शोकके वशमें होकर आपके बालकके साथ अनिष्ट आचरण किया है आप भी जिस प्रकार मेरे ऊपर प्रहार करेंगे, उस विषयकी तत्व कथा कहती हूं, सुनो। मनुष्य लोग खेलवाड़ और भोजनके वास्ते पक्षियोंको ठगा करते हैं, उन लोगोंके बध और बन्धनके अतिरिक्त तीसरा कारण और

कुछ भी नहीं है। पक्षी-वृन्द भी बध और बन्धनके भयसे मुक्ति पथ आश्रय किया करते हैं। वेदके जाननेवाले श्रेष्ठ पुरुष मृत्यु,त्यागजनित क्लेशको ही दुःख कहा करते हैं, प्राण और पुत्र सबको ही प्रिय है; और सब लोगही दुःखसे व्याकुल होते हैं, सुखमें सबको ही अभिलाषा होती है। हे ब्रह्मदत्त! दुःख अनेक तरहसे उत्पन्न हुआ करता है; बुढ़ापा, अर्थ विपर्य्यय, अनिष्ट सहवास, इष्ट वियोग, बध, बन्धन, स्त्रीके कारण और सहज भेदसे दुःख अनेक प्रकारके हैं; उसके बीच पुत्रवियोग जनित दुःख लोगोंको विशेष रूपसे परिवर्त्तित करता है। कोई कोई निर्बुद्धि लोग दूसरेके दुःखसे दुःखित नहीं होते। यह कहा करते हैं कि जिस पुरुषने कभी दुःख अनुभव नहीं किया है, वह महाजनोंके निकट इस प्रकार कह सकता है। और जो पुरुष दुःखसे आर्त्त होकर शोक करता है, वह किस तरह ऐसा कहनेमें उत्साही होसकता है? जिस पुरुषने सब दुःखोंके विषयोंको ग्रहण किया है, वह आपनेमें जैसा देखता है, दूसरेमें भी उसी तरह देखा करता है। हे वैरीदमन राजन्! मैंने आपको जो बुराई की है और आपने भी जो अहित आचरण किया है, वह सौ वर्षमें भी लुप्त न हो सकेगा। मैंने जो कार्य्य किया है, उससे फिर अब परस्परका मिलन नहीं होसकता; आप जिस समय पुत्रको स्मरण करेंगे, उस ही समय वैरभाव नवीन हो जावेगा। अर्थ शास्त्रके जाननेवाले पण्डितोंने निश्चय किया है, कि जैसे मट्टीके पात्र टूटनेपर फिर नहीं जुड़ते वैसे ही जो शीघ्र वैर करके प्रीति करनेकी इच्छा करता है, उसका विश्वास कभी सुखदायक नहीं होसकता। पहिले शुक्राचार्य्यने प्रह्लादसे इस विषयमें दो गाथा कही थी, कि जो शत्रुके सत्य वा मिथ्या वचनमें विश्वास करता है, वह सूखे तृणसे युक्त अन्धकूपमें गिरे हुए मधुलोभीकी तरह शीघ्र नष्ट होता है। ऐसा देखा गया है, कि किसी स्थानमें शत्रुता वंश परम्परासे प्रचलित रहती है। जो लोग वैर करके परलोकमें गमन करते हैं; उनके वंशमें जो पुरुष रहते हैं, दूसरे लोग उनके समीप पहिले वैरको प्रकाशित कर देते हैं। हे महाराज! जो लोग वैरकी शान्तिके वास्ते शत्रुके साथ सन्धिबन्धन करते हैं, वेही पत्थरपर गिरे हुए पूर्ण घड़ेकी तरह उसे चूर्ण किया करते हैं। इस जगतमें राजा किसीके साथ अनिष्ट आचरण करके सदा उसका विश्वास न करे, दूसरेकी बुराई करनेसे दुःख भोग करना पड़ता है।

ब्रह्मदत्त बोले, अविश्वास करनेसे कोई अर्थ सञ्चय वा दूसरा कुछ उपाय नहीं कर सकते; बल्कि एक पलका सदा अविश्वास करनेसे भयके कारण मृतकके समान हुआ करते हैं।

पूजनी बोली, इस संसारमें जो पुरुष परिक्षत पदसे भ्रमण करते हैं, वह सावधान रहनेपर उनके दोनों पांव स्खलित हुआ करते हैं, जो पुरुष रुग्ननेत्रसे वायुके प्रतिकूल दिशाकी ओर देखता है, वायु निश्चय ही उसके दोनों नेत्रोंके लिये पीड़ाजनक होजाती है। जो पुरुष अपना बल न जानके अज्ञानताके कारण दुष्ट मार्ग अवलम्बन करके उसमें उपस्थित होता है उस ही स्थानमें उसका जीवन समाप्त हुआ करता है। जो पुरुष वर्षाका समय मालूम न करके खेत बोता है, वह पौरुषरहित पुरुष शस्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। जो तीता, कसैला, मीठा वा मधुर पथ्य नित्य आहार करता है, वह अमृत होता है और जो पुरुष परिणामको बिना विचारे मोहवशसे पथ्य भोजनोंको परित्याग करके अपथ्य भोजन करता है, उसका जीवन नष्ट होता है। दैव और पुरुषार्थ आपसमें एक दूसरेके आश्रयसे स्थिति करते हैं। उदार पुरुष सत्कर्मोंका

आसरा ग्रहण करते हैं और कादर लोग ही दैवको अवलम्बन किया करते हैं। आत्म हित-कर कर्म चाहे कठोर हो, चाहे कोमल ही होवे, उसे अवश्य करना चाहिये; कर्महीन तुच्छ पुरुष सदा अनर्थ ग्रस्त हुआ करते हैं; इससे सब विषयोंको परित्याग करके पराक्रम प्रकाश करना ही योग्य है। सर्व्वस्व परित्याग करके भी मनुष्योंको आत्म-हितकर कार्य्य करना उचित है, शूरता, दक्षता, विद्या, वैराग्य और धीरज इन पांचोंको पण्डित लोग सहज मित्र कहा करते हैं; और वे लोग इन पांच प्रकारके मित्रोंके अवलम्बनसे जीवन बिताते हैं। और गृह ताम्र आदि पात्र, क्षेत्र, भार्य्या, तथा सुहृदवृन्द, इन पांचोंको पण्डित लोग उपमित्र कहते हैं; पुरुष सर्व्वत्र ही इन पांचोंको पाता है। बुद्धिमान पुरुष सर्व्वत्र ही अनुरक्त होता और सब जगह विराजता है, कोई पुरुष उसे भय नहीं दिखा सकता, भय दिखानेसे भी वह नहीं डरता। बुद्धिमान पुरुषको थोड़ा अर्थ होने पर भी वह सदा बढ़ता है, निपुणताके सहित कर्म्म करनेसे उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

कर्कटोके गर्भसे उत्पन्न हुए सब सन्तान जैसे उसके मांसको भक्षण करते हैं, वैसे गृह-स्नेहमें आबद्ध अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुष्टस्त्रियां-वाक्य-यन्त्रणाके जरिये उन लोगोंके मास और रुधिरको सुखा देती है। कोई पुरुष अपने बुद्धिदोषसे विदेश जानेके समय मेरा गृह मेरा क्षेत्र, मेरे मित्र और हमारा स्वदेश ऐसी ही चिन्ता करके दुःखित हुआ करते हैं। स्वदेश यदि व्याधि वा दुर्भिक्षसे पीड़ित होवे, तो उसे परित्यागके दूसरे देशमें वास करनेके वास्ते जाकर सम्मानित होके रहना उचित है, इसलिये मैं दूसरी जगह वास करनेके लिये गमन करूंगी। हे महाराज! मैंने आपके पुत्रके विषयमें अत्यन्त ही अन्याय आचरण किया है, इसलिये इस स्थानमें वास करनेकी इच्छा नहीं करती हूं। कुभार्य्या, कुपुत्र, कुराज्य, कुमित्र, कुसम्बन्ध और कुदेशको एकबारगी परित्याग करना चाहिये; कुपुत्रमें विश्वास नहीं, कुभार्य्यामें अनुराग नहीं कुराज्यमें सुख नहीं और कुदेशमें जीविका निर्व्वाह नहीं होता। सदा अस्थिर सुहृद कुमित्रके सहित सङ्गति नहीं निभती और प्रयोजनमें विपर्य्यय होनेसे कुसम्बन्धमें अप-मान हुआ करता है। जो भार्य्या प्रिय वचन कहे, वही भार्य्या है; जिस पुत्रसे सुखी होवे, वही पुत्र है, जिसका विश्वास किया जाय वही मित्र है; जिस देशमें अनायास ही जीविका निर्व्वाह हो, वही स्वदेश है। जिस राज्यमें जबर्दस्ती नहीं, वहां किसी भयकी भी सम्भावना नहीं रहती; जो राजा दरिद्रोंको पालन करनेकी इच्छा करता है, उसके साथ प्रजाका पाल्य-पालन सम्बन्ध होता है; इसलिये ऐसा राजा ही तीक्ष्ण शासनकारी कहके प्रसिद्ध होता है, धर्म्मपालक गुणवान राजाके देश भार्य्या, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी और बान्धव आदि सभी सुन्दर हुआ करते हैं। अधर्म्मी राजाके निग्रह निबन्धनसे प्रजाका नाश होता है। राजा ही धर्म्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्गका मूल है; इसलिये प्रमाद-रहित होके उसे प्रजापालन करना अवश्य उचित है। राजा प्रजासमूहके समीपसे छठवां भाग कर लेके उन लोगोंका पालन करे। जो राजा प्रजासमूहका पूर्णरीतिसे पालन नहीं करते, वह राजाओंके बीच तस्कर कहके निन्दित होते हैं। जो राजा स्वयं अभय दान करके फिर उसमें असम्मत होते हैं, वह अधर्म्म बुद्धि राजा सब लोगोंके पापको ग्रहण करके अन्त समयमें नरकमें गमन किया करते हैं। राजा यदि स्वयं अभयदान करके उसे प्रमाणित करे, तो वह धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए सबको सुख देनेवाला कहके विख्यात होता है। प्रजापति मनुने कहा है, कि

राजामें पिता, माता, रक्षिता, अग्नि, कुबेर और इन सातोंका गुण रहता है; क्यों कि राजा प्रजा समूहके विषयमें कृपा प्रकाशित करनेसे पितृस्वरूप हुए हैं, जो मनुष्य उनके समीप मिथ्या विनय करता है, वह तिर्य्यग् योनिमें जन्म लेता है। राजा दरिद्रोंकी माताके समान पालन करता है, इसीसे मातृस्थानीय हुआ है। बराइयोंको जलाता है, इससे अग्नि और दुष्टोंको शासन करता है, इस ही कारण यम स्वरूप हुआ है। साधु पुरुषोंको धन दान करनेसे काम प्रद कुबेर, धर्म्म उपदेश करनेसे गुरु और पालन करनेसे रक्षक स्वरूप हुआ करता है। जो राजा गुणसमूहसे पुरवासी और जन पदवासी लोगोंके चित्तको रञ्जन करता और धर्म्मके अनुसार स्वयं उन लोगोंका पालन किया करता है, वह राज्यसे कभी च्युत नहीं होता। जो स्वयं पुरवासी और जनपद वासियोंके सम्मानको मालूम करता है, वह इस लोक और परलोकमें सुखभोग किया करता है। जिसकी प्रजा कर भारसे पीड़ित होकर सदा व्याकुल होती और बराइयोंके जरिये क्लेश पाती है, उसकी शत्रुके निकट पराजय होती है। तालावमें शतदल कमलकी तरह जिसकी सब प्रजा सदा वर्द्धित होती है, वह फलभागी राजा स्वर्गलोकमें निवास करता है। हे महाराज! बलवानके साथ विग्रह करना कदापि प्रशंसित नहीं है, जिसका बलवानके साथ विग्रह हुआ करता है, उसके राज्य ही कहां? वा सुख ही कहां है?

भीष्म बोले, हे नरनाथ! पूजनी चिड़िया राजा ब्रह्मदत्तसे ऐसा ही कहके उनकी आज्ञा लेकर निज अभिलषित दिशामें चली गई। हे राजन! पूजनीके साथ ब्रह्मदत्तकी जैसी वार्त्ता हुई थी, उसे मैं। तुमसे कहा और कहो क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१३९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलतिलक पितामह! युगक्षयके कारण धर्म्म और सब लोगोंके पर्य्यन्त चोर तथा डाकुओंके जरिये पीड़ित होनेपर किस तरह निवास करना चाहिये?

भीष्म बोले, हे भारत! राजा काल क्रममें करुणा त्यागके जिस तरह निवास करेंगे, मैं तुम्हारे समीप उस आपत्कालके योग्य नीतिका विषय वर्णन करूंगा पुराने पण्डित लोग इस विषयमें राजा शत्रुञ्जय और भारद्वाजके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। सौवीर देशमें शत्रुञ्जय नाम एक महारथी राजा थे; उन्होंने भारद्वाजके निकट जाके अर्थविषयमें विशेष निर्णयका प्रश्न किया। अप्राप्त अर्थकी प्राप्तिकी इच्छा किस तरह करनी चाहिये, प्राप्त हुए धनकी किस प्रकार बढ़ती होती है, बढ़े हुए वित्तको किस तरह पालन किया जाता है और पालित अर्थ किस प्रकार व्यय किया जा सकता है? राजाने जब इस प्रकार अर्थनिर्णय विषयमें प्रश्न किया, तब द्विजवर भारद्वाज उनके पूछे हुए विषयको, युक्तियुक्त श्रेष्ठ उत्तर देने लगे, कि राजा सदा दण्ड उद्यत कर रखे। सदा अपना पराक्रम प्रकाश करे, स्वयं निर्दोष होकर दूसरेका दोषदर्शी और छिद्रान्वेषी होवे। जो राजा सदा दण्ड उद्यतकर रखता है, मनुष्य उसके निकट अत्यन्त भय करते हैं; इसलिये सब जीवोंको ही दण्डके जरिये शासित करे। तत्वदर्शी पण्डित लोग इसी तरह दण्डकी प्रशंसा कियाकरते हैं; इसलिये भेद, दण्ड, साम; दान, इन चारोंके बीच दण्डही प्रधान कहके वर्णित हुआ है। आश्रयस्थानकी जड़ काटनेसे जीव मात्रका ही जीवन नष्ट होता है, वृक्षकी जड़ कटनेपर सब शाखा उसमें स्थित नहीं रह सकती। बुद्धिमान् राजा पहिले शत्रुका मूलच्छेदनकरे, अनन्तर उसके सहाय और अमात्य आदिको वशमें करे। आपद उपस्थित होनेपर उत्तम मन्त्रणा, पराक्रम प्रकाश

अन्धेकी तरहसे युद्ध अथवा पलायन करे; इस विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हृदयसे अस्तुरेकी तरह रहके वचनमात्रसे विनय दिखावे, मृदुभावसे वार्त्तालाप करे और कामक्रोधको त्याग दे। शत्रुके साथ कार्य्य-संश्रय उपस्थित होनेपर पहिले सन्धि करके उसका विश्वास न करे। बुद्धिमान पुरुष कृतकार्य्य होकर शीघ्र ही शत्रुका सङ्ग परित्याग करे और मित्ररूपसे सान्त्व वचनसे शान्त करके सर्पयुक्त गृहकी भांति सदा उससे शङ्कित रहे। निज बुद्धिके जरिये जिसकी बुद्धिको पराजित करनी होगी; उसे अभयदान करते हुए धीरज देवे। मन्दबुद्धि पुरुषको अनागत बुद्धिसे और पण्डित पुरुषको प्रत्युत्पन्न बुद्धिके सहारे शान्त करे। जो पुरुष अपने कल्याणकी इच्छा करे, वह हाथ जोड़कर शपथ करके सान्त्व वचनसे शिर झुकाकर आंसू बहाते हुए वचन कहे। जबतक समय परिवर्त्तन न होवे, तबतक शत्रुको कन्धेपर चढ़ाके ढोवे, समय उपस्थित हुआ जानके पत्थरपर फेंके हुए घड़ेकी तरह उसे नष्ट कर डाले। हे राजेन्द्र! मनुष्य तिन्दुककाष्ठकी तरह मुहूर्त्त भर प्रज्वलित होवे; ज्वालारहित तुषकी अग्निकी भांति सदा सुलगता न रहे। अनेक प्रयोजनसे युक्त पुरुष कृतघ्नके साथ अर्थयुक्त कुराई न रखे, क्योंकि कृतघ्न पुरुष कृतकार्य्य होकर उपकारकी अवमानना किया करता है। इसलिये शत्रुसंघटित सब कार्य्योंको सब तरहसे पूर्ण न करके उसे शेष रखना उचित है। राजा निज प्रतिपाल्य लोगोंको अन्नके जरिये प्रतिपालन करनेमें कोकिलका, शत्रुका मूल उखाड़नेमें बराहका, अनुलङ्घनीयता गुणमें सुमेरु पर्व्वतका, अनेक रूप धारण करनेमें नटका, अर्थागम करनेके कारण शून्य गृहका और प्रजासमूहके विषयमें दयायुक्त व्यवहार प्रकाश करनेके लिये मित्रका अनुकरण करे। राजा प्रतिदिन उठके शत्रुके गृहमें जावे, शत्रुके घर यदि अमङ्गल भी रहे, तोभी कुशल प्रश्न करे। आलसी, अभिमानी, कातर, लोकापवादसे डरनेवाले और सदा संशय युक्त चित्तवाले पुरुष धनलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। शत्रु लोग निज छिद्रकी ओर दृष्टि न रखके दूसरेका छिद्र खोजते रहते हैं; इसलिये कछुवेकी तरह अपने अमंगल और सब छिद्रोंको छिपा रखे। बकुलेकी तरह अर्थचिन्ता सिंहकी भांति पराक्रम, भेड़ियेकी तरह आत्मगोपन और बाणकी भांति शत्रु भेद करे। सुरापान, जूआखेलना, स्त्रीसम्भोग, मृगया और गीत वाद्य युक्तिके अनुसार करे; इन सब विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होनेसे ही दोषी होना पड़ता है। बांस आदिसे धनुष तय्यार करावे, मृगकी तरह सावधानीसे शयन किया करे, समयके अनुसार कभी अन्धे और कभी बधिरकी तरह व्यवहार करे।

बुद्धिमान राजा देश और कालके अनुसार विक्रम प्रकाश करे, क्योंकि देशकालको अतिक्रम करके विक्रम प्रकाश करनेसे वह निष्फल हुआ करता है। समयके अनुसार अपना बलाबल निश्चय कर परस्परका बल मालूम करके कर्त्तव्य कार्य्योंमें तत्पर होवे। जो राजा दण्डोपहत शत्रुको निग्रहीत नहीं करता, वह कर्कटीके गर्भ धारणकी भांति मृत्युमुखमें पतित हुआ करता है। अच्छी तरह फूले हुए वृक्ष भी फलहीन होते हैं फलवान वृक्ष दुरारोह हुआ करते हैं, और जिसका फल अपक्व अवस्थामें रहता है; उसे भी पके हुए फलकी तरह देखा जाता है; इसलिये राजा इन सब कारणोंको देखके किसीके समीप शीर्ण न होवे। शत्रुओंकी आशा बहुत समयमें सिद्ध होवे, बचनसे ऐसा ही विधान करे; परन्तु विशेष कारण दिखाके उस विषयमें विघ्नका अनुष्ठान करना उचित है। जबतक

भय उपस्थित न होवे, तबतक भयभीत पुरुषकी तरह निवास करे; परन्तु भयका कारण उपस्थित होनेपर निडरकी भांति उसे नष्ट करनेमें प्रवृत्त होवे। मनुष्य संशयमें आरोहण न करनेसे कल्याणका मार्ग देखनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु संशययुक्त होकर यदि जीवित रहे, तो अवश्य ही अपना कल्याण देखता है; भय जिसमें उपस्थित न हो, आगे उसका विचार करना चाहिये, दैवात् उपस्थित होनेपर उसका प्रतिकार करना उचित है, फिर वृद्धि होगी, इस भयसे उसे अनिवृत्तकी तरह निवारण करना चाहिये। उपस्थित सुखको त्यागना और अनुपस्थित सुखकी आशा करनी बुद्धिमान पुरुषकी रीति नहीं है। जो पुरुष शत्रुके साथ सन्धि करके विश्वास पूर्व्वक सुखकी नींद सोता है, वह वृक्षके अग्रभागमें सोये हुए पुरुषकी तरह पतित होते हुए दीख पड़ता है। कोमल होवे, अथवा कठोर हो, जिस किसी कर्म्मके जरिये होसके विपदयुक्त आत्माकी उद्धार करना उचित है, और समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करना योग्य है। शत्रुके शत्रुओंकी सेवा करे, अपने दूतोंको भी शत्रु प्रेरित करके समझना उचित है; अपने दूतोंको शत्रु लोग न जान सकें, ऐसा ही उपाय करना चाहिये। पाषण्ड और तपस्वियोंको दूतरूपसे दूसरेके राज्यमें प्रवेश करावे। कपट धर्म्माचारी लोगोंके कण्टक रूपी दुराचारी चोर लोग बगीचा, विहार स्थान, जलसत्र, पान्थनिवास, पानागार, सब तीर्थों और सभा स्थानोंमें कपट वेषसे भ्रमण करते हैं, इसलिये उन लोगोंको मालूम करके निग्रहीत और शान्त करना योग्य है। शत्रुका अविश्वास न करे, और विश्वासका भी अत्यन्त विश्वास उचित नहीं; क्योंकि विश्वाससे भय उत्पन्न होता है, और विशेष रीतिसे परीक्षा न करके किसीका विश्वास न करे। यथार्थ कारण दिखाके उसका विश्वासपात्र होवे कालक्रमसे उसका किसी विषयमें तनिक भी पैर विचलित होनेपर उसके ऊपर प्रहार करे। जिससे शङ्काकी सम्भावना नहीं है, उसकी भी शङ्का करनी और शङ्का करने योग्य पुरुषोंकी सदा शङ्का करनी उचित है; क्योंकि अशंकित होनेसे उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट किया करता है। ध्यान, धारणा, मौनावलम्बन, गेरुआ वस्त्र पहरना जटा और मृगछाला धारणके जरिये शत्रुके चित्तमें विश्वास उत्पन्न करके फिर भेड़ियेकी तरह उसे लुप्त करे। पिता, भ्राता, पुत्र अथवा सुहृद लोग यदि अर्थमें विघ्न करें, तो ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन्हें नष्ट करना चाहिये। महत् पुरुष भी यदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म्म न जानके गर्व्वित और कुमार्ग गामी होवे, तो उसके लिये भी दण्ड रूप शासनकी विधि है। जैसे तीक्ष्ण तुण्डवाले पक्षी वृक्षोंके फल और फलोंको नष्ट करते हैं, वैसे ही अभ्युत्थान, अभिवादन वा जिस किसी वस्तु दानसे होसके, शत्रुका विश्वास पात्र होकर अन्तमें उसके सब पुरुषार्थको नष्ट करे मछरी मारनेवाले मछुवाहेकी तरह दूसरेके मर्म्मच्छेद आदि कठिन हिंसा कर्म्मका न करनेसे महा समृद्धि नहीं प्राप्त होसकती। जातिके जरिये कोई किसीका शत्रु वा मित्र नहीं होता, प्रयोजन अनुसार ही शत्रु मित्र उत्पन्न हुआ करते हैं। शत्रु पुरुषके दुःखका कारण प्रकाश करनेपर भी उसे कभी परित्याग न करे और उसके दुःखसे दुःखित न होवे। पूर्व्वापराधी पुरुषको जिस उपायसे बने नष्ट करे। जो अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें शत्रुको पराजित करनेके लिये यत्न करना अवश्य उचित है; किसीके विषयमें निन्दा करनी योग्य नहीं है। जिसके ऊपर प्रहार करना हो, उससे प्रिय वचन कहे और प्रहार करके भी प्रिय बात्तें कहे; तलवारसे किसीका सिर काटके भी उसके वास्ते शोक

प्रकाश और रोदन करे। जो लोग ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करें, वे सान्त्ववचन, सम्मान और तितिक्षाके जरिये सब लोगोंको आवाहन करें, इसी तरह लोगोंकी आराधना करनी चाहिये, बाहुके सहारे नदी पार न होवे, और जिससे कुछ लाभ न हो, वैसा वैर न करना चाहिये; गोशृङ्गको भक्षण वा चर्व्वण करना निरर्थक और अनायुष्य है, उससे दांत टूटते और कुछ रस नहीं मिलता। धर्म्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी तीन तरहकी पीड़ा होती है अर्थात् धर्म्मसे अर्थमें बाधा, अर्थके जरिये धर्म्ममें बाधा और धर्म्म अर्थ दोनोंके जरिये काममें बाधा हुआ करती है; इसलिये इनके बलाबलको विचार कर उक्त पीड़ाको त्याग देवे। ऋण-शेष, अग्निशेष और शत्रुशेष रहनेसे बार बार बढ़ते हैं, इससे इन्हें निःशेष करना उचित है; वृद्धिशील ऋण, उपस्थित व्याधि और पराभूत शत्रुसमूह अत्यन्त भय उत्पन्न करते हैं।

कोई कार्य्य आरम्भ करके उसे बिना पूरा किये विरत न होवे, सदा सावधान रहे, क्षुद्र कण्टक भी अच्छी तरहसे न निकालनेपर सदाके लिये विकार उत्पन्न किया करता है। मनुष्यहत्या, मार्ग रोध और गृह नाशके जरिये शत्रु राज्यको नष्ट करे। गृद्धकी तरह दूरदर्शी बगुलेकी तरह निश्चल, कुत्तेकी तरह सावधान सिंहकी भांति पराक्रमी और कौए कौव्वे की तरह दूसरेका इङ्गितज्ञ होकर धीरताके सहित सर्पकी तरह अकस्मात शत्रुके किलेमें प्रवेश करे। वीरके समीप हाथ जोड़के डरपोकोंको भय दिखाके और लोभीको धनदानसे वशमें करे और अपने समान पुरुषके सङ्ग विग्रह करना ही उचित है। राजाके मृदुस्वभाव होनेसे प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और तीक्ष्ण होनेसे सब कोई उससे भयभीत होते हैं, इस लिये तीक्ष्ण होनेके समय तीक्ष्ण और कोमलताके समय मृदु होना उचित है। मृदुताके जरिये कोमलको छेदन करे, कोमलतासे कठोरकार्य्य नष्ट किया जासकता है, कोमल उपायके जरिये कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है; इसलिये मृदुता तीक्ष्णसे भी तीक्ष्ण है। जो लोग समयके अनुसार कोमल और समयानुसार कठोर होते हैं, वे सब कार्य्योंको सिद्ध करके शत्रुको विजय करनेमें समर्थ होसकते हैं। पण्डितके साथ विरोध करके "मैं दूर हूं" कहके विश्वास न करे क्योंकि बुद्धिमानको दोनों भुजा बहुत लम्बी होती हैं, वे हिंसित होकर उससे ही हिंसा कर सकते हैं। जिसके दूसरे किनारेपर तैरके न पहुंच सके, वैसी नदीमें न तैरे; शत्रु लोग जिसे फिर हरण कर सकें, वैसा धन हरण न करे; जिसकी जड़ नहीं उखाड़ी जा सकती उसे न खोदे; जिसका सिर न गिराया जासके, उसके ऊपर प्रहार न करे। आपत्कालके अभिप्रायसे मैंने ऐसा कहा है; मनुष्य सदा ऐसा आचरण न करे; शत्रुसे आक्रान्त होनेपर कैसा व्यवहार करे—उसके निमित्त मैंने आपका हितार्थी होकर इस प्रकार कहा है।

भीष्म बोले, भारद्वाजने जब सौवीर-राज्याधिपतिसे ऐसी कथा कही, तब उन्होंने सुनकर सावधान चित्तसे उसे प्रतिपालन किया और बान्धवोंके सहित समुज्वल राजलक्ष्मी भोग करने लगे।

१४० अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, पितामह! परम धर्म्म नष्ट प्राय वा सब लोगोंसे उल्लङ्घित होनेपर अधर्म्म धर्म्मकी तरह और धर्म्म अधर्म्मकी भांति होनेमर्य्यादा नष्ट धर्म्म-निश्चय क्षुभित और सब लोग राजा वा डाकुओंसे पीड़ित होने, आश्रमवासियोंके मोह युक्त तथा सब कर्म्मोंके नष्ट होने; लोभ, मोह, कामके कारण सब कोईके भय दर्शन करने, जीव मात्रके सदा अविश्वस्त होने,

अवमाननाके जरिये पीड़ित सब कोईके परस्पर बखेड़ा करते रहनेपर, सब देशोंके प्रदीप्त और ब्राह्मणोंके पीड़ित होने, बादल बरसनेसे बिरत, आपसमें भेद उत्पन्न होने और पृथिवीमें जो सब उप जीव्य वस्तु हैं, वह सब दस्युओंके हस्तगत होनेसे, इस बुरे आपदकालके आनेपर जो ब्राह्मण दयाके कारण पुत्र पौत्र आदिको त्यागनेमें अशक्त हैं, वे किस प्रकार जीवन व्यतीत करेंगे ? और सब लोगोंके पापाचारी होनेपर जो राजा दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं; तथा ब्राह्मणोंको पालन करनेमें भी अशक्त हैं, वे किस प्रकार निवास करेंगे और किस प्रकार धर्म्म और अर्थसे भ्रष्ट न होंगे ? हे शत्रुतापन ! आप मुझसे यही कहिये ।

भीष्म बोले, हे महाबाहु भरतश्रेष्ठ ! अप्राप्त राज्यकी प्राप्ति और प्राप्त राज्यका प्रतिपालन स्वरूप योगक्षेम, उत्तम वृष्टि, प्रजासमूहके व्याधि मरन और भय इन सब विषयोंमें राजा ही मूल कारण है और सतयुग ;—त्रेता, द्वापर तथा कलियुग; इन युगोंके परिवर्त्तन विषयमें राजा ही मूल कारण हुआ करता है ; इसमें मुझे सन्देह नहीं है । प्रजासमूहके दोषकारक उस आपदकालके उपस्थित होनेपर विज्ञानबलको अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करना चाहिये । पण्डित लोग इस विषयमें विश्वामित्र और चाण्डालके सम्बादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ।

त्रेता और द्वापर-युगके सन्धि समयमें लोकके बीच दैव इच्छासे बारह वर्षतक घोर अनावृष्टि हुई थी । त्रेताके अन्त और द्वापरके आरम्भके समय अत्यन्त-वृद्ध प्रजासमूहके प्रलयकाल उपस्थित होनेपर देवराजने जलकी वर्षा नहीं की, बृहस्पति प्रतिकूल थे और चन्द्रमण्डलने निज लक्षण परित्याग करके दक्षिण मार्गसे गमन किया था, उस समय बादलका सञ्चार तो दूर रहे, नीहार पात भी नहीं हुआ, तब नदी शुष्कप्राय होगईं, तालाब, कूएं और झरने दैववशसे जल रहित और प्रभाहीन होनेसे अलक्षित होने लगे, जलशाला आदि जलशून्य हुए, ब्राह्मणोंके यज्ञ, वेदाध्ययन और वषट्कार आदि मङ्गलकार्य्य निवृत्त होगये ; कृषिकार्य्य और गोरक्षा नष्ट हुई ; विपणि और आपण आदि निवृत्त हुए, पशुबन्धनके स्तम्भ, यज्ञका होना और समस्त उत्सव एक बारही नष्ट हुए ; बहुतेरे नगर सूने और ग्राम आदि आग लगनेसे जल गये ; सब प्रजाके किसी स्थानमें चोरोंसे, किसी जगह शस्त्रोंसे और किसी स्थानमें राजासे पीड़ित होकर परस्पर भयके कारण भागनेसे सब ग्राम सूने तथा निर्जन होगये ; सब देवस्थान नष्ट हुए और वृद्ध मनुष्य अपने पुत्र पौत्रादिकोंके जरिये घरसे निकाले गये । गौ, बकरे, भेड़ और भैंसे पञ्चत्वको प्राप्त हुए ; ब्राह्मण लोग मृत्युके ग्रासमें पतित हुए ; राक्षसोंका नाश हुआ ; औषधियां नष्ट होगईं ; अधिक क्या कहें, उस समय पृथ्वीमण्डल केवल श्मशान—वृक्षसमूहसे भर गया था । हे युधिष्ठिर ! उस भयङ्कर समयमें धर्म्म नष्ट होनेसे मनुष्य लोग भूखे होकर परस्परके मांसको भक्षण करते हुए भ्रमण करने लगे । ऋषि लोग जप, होम, नियम और समस्त आश्रमोंको परित्याग करके इधर उधर दौड़ने लगे । अनन्तर बुद्धिमान् भगवान विश्वामित्र महर्षिने क्षुधासे आर्त्त हो घर त्यागके स्त्री पुत्र आदिको किसी जनसमाजमें रक्षा करते हुए खाद्याखाद्य विचार और होम आदि कार्य्योंको तजके सर्व्वत्र पर्य्यटन करनेमें प्रवृत्त हुए । वह घूमते २ किसी समय वनके बीच प्राणघातक हिंसक चाण्डालोंकी बस्तीमें पहुंचे, वहां पहुंचके देखा, कि वह स्थान टूटे घड़े, कुत्तोंके चमड़ोंके टुकड़े, वराह और गधेकी हड्डियों और मरे हुए मनुष्योंके वस्त्रसमूहसे

परिपूरित है, गृह सब निर्म्माल्यसे अलंकृत, कुटीके सब मठ अहिनिर्मोक-मालासे चिन्हित हुए हैं। कोई स्थान बहुतसे कुत्तों और कोई स्थान गधेके शब्दसे प्रतिध्वनित होरहा है; किसी जगह चाण्डाल लोग कडुवे बचनसे आपसमें झगड़ा कर रहे हैं कहींपर उल्लू और अनेक तरहके पक्षियोंकी मूर्त्तियोंसे अलंकृत देवालय वर्त्तमान हैं। कोई स्थान लोहेकी घण्टियोंसे अलंकृत कुत्तोंके समूहसे भरा हुआ है।

महर्षि विश्वामित्र क्षुधायुक्त होकर उस स्थानमें प्रवेश करके खाद्य वस्तुके खोजनेमें अत्यन्त यत्न करने लगे; परन्तु भीख मांगनेपर भी किसी स्थानमें मांस, अन्न, फल, मूल वा दूसरी कुछ भोजनकी सामग्री प्राप्त न हुई। "हाय! मैंने क्याही कष्ट पाया है।" ऐसा ही विचार करके कौशिक शरीरकी निर्बलताके कारण उस ही चाण्डाल बस्तीके बीच पृथ्वीपर गिर पड़े, हे नृपसत्तम! वह उस समय क्या करनेसे अवस्थाका परिवर्त्तन हो और किस प्रकार वृथा मृत्यु न हो, ऐसी ही चिन्ता करने लगे। मुनिने चिन्ता करते करते देखा, चाण्डालके घरमें प्रतिदिन शस्त्रोंसे मरे हुए कुत्तोंका मांस बहुत है; उसे देखकर मुनिने विचारा, इस समय मेरे प्राण धारणके विषयमें दूसरा कुछ उपाय नहीं है; इसलिये मुझे चोरी वृत्ति अवलम्बन करनी पड़ी; आपदकालमें प्राण रक्षाके वास्ते चोरी अवलम्बन करनी ब्राह्मणोंके विषयमें अनुचित नहीं है; पहिले अपनी अपेक्षा नीचसे अनन्तर समानसे वह भी असम्भव होनेपर नष्ट धर्म्मवालोंसे भोजनकी वस्तु हरन करे; इसलिये मैं प्राण नष्ट होनेके समय इन चाण्डालोंके घरसे कुत्तेका मांस हरण करूंगा; इसमें चोरी दोष नहीं दीखता है।

हे भारत! महामुनि विश्वामित्र ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके उस चाण्डालके घरमें सो रहे। जब चाण्डाल लोग सो गये, तब भगवान मुनि घोर रात्रि देखके धीरे धीरे उठके उसके घरमें घुसे। अदसूरत चाण्डाल श्लेष्माच्छन्न नेत्रसे निद्रितकी तरह स्थित था। वह मुनिको मांस चुराते देख रूखे और विभिन्न स्वरसे कहने लगा।

चाण्डाल बोला, जातिके सब लोग सोये हुए हैं अकेला केवल मैं ही जागता हूं, इस समय कौन मेरे घरमें घुसके मांस चुरानेके वास्ते दण्ड उखाड़ रहा है; वह अपने जीवनमें संशय समझे।

अनन्तर विश्वामित्र सहसा चोरी कार्य्यके कारण व्याकुल और भयभीत तथा लज्जायुक्त होकर उससे बोले, हे आयुष्मन्! मैं विश्वामित्र क्षुधासे अत्यन्त आर्त्त होकर तुम्हारे गृहमें आया हूं। हे सद्बुद्धिवाले! तुम यदि साधुदर्शी हो, तो मेरा बध मत करो। चाण्डाल महर्षिका ऐसा वचन सुनके शङ्कायुक्त चित्तसे शय्यापरसे उठके उनके समीप आया; और दोनों आखोंसे बहते हुए आंसुओंको पोंछके सम्मानपूर्व्वक हाथजोड़के उनसे बोला। हे ब्रह्मन्! इस रात्रिके समय आपको कौनसा कार्य्य साधन करनेकी इच्छा है?

विश्वामित्र चाण्डालको धीरज देके बोले, मैं अत्यन्त भूखा हूं, इसलिये मृतकके समान होकर तुम्हारे गृहमें कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करनेके वास्ते आया हूं, मैं भूखा होकर पापसे आक्रान्त हुआ हूं, भूखे पुरुषमें लज्जा रहनी सम्भव नहीं है; इस समय क्षुधाने मुझे दूषित किया है, मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करूंगा। मेरा प्राण अवसन्न होरहा है, क्षुधा मेरे वेदज्ञानको नष्ट करती है; मैं निर्बल चेतरहित और खाद्याखाद्य विचारसे विमुख हुआ हूं; चोरी कर्म्मको अधर्म्म जानके भी मैं कुत्तेका मांस हरण करनेके वास्ते उद्यत हुआ हूं। मैंने तुम्हारी बस्तीमें हरएक गृहमें घूमकर भी भिक्षा नहीं पाई; इसलिये इस समय पाप

कार्य्यमें मेरी प्रवृत्ति हुई हैं, मैं कुत्ते का निकृष्ट मांस हरण करूंगा। भगवान अग्नि जो देवताओंके मुखस्वरूप हैं और पुरोधा होकर पवित्र वस्तु मात्र भक्षण किया करते हैं, उन्हें भी समयके अनुसार सर्व्वभुक् होना पड़ता है, इस लिये मुझे भी धर्म्मानुसार वैसा ही समझो।

चाण्डाल बोला, हे महर्षि! मेरा वचन सुनिये और सुनकर जिसमें धर्म्म नष्ट न हो, वैसा ही अनुष्ठान करिये। हे विप्रवर! मैं आपसे जो कहता हूं, वह भी आपका धर्म्म है, पण्डित लोग कुत्ते को सियारसे भी निकृष्ट समझते हैं; उसका बुरा मांस शरीरके अधम स्थानसे भी अधिक निकृष्ट है; इससे आपने यह उत्तम कार्य्य नहीं किया। हे महर्षि! चाण्डालस्व, विशेष करके अभक्ष्य मांस हरण करना अत्यन्त धर्म्मनिन्दित कर्म्म है, आप प्राण धारणके वास्ते दूसरा कोई उत्तम उपाय देखिये हे महामुनि! मांसलोभके कारण जिसमें आपकी तपस्या नष्ट न होवे; विहित धर्म्मको मालूम करके धर्म्मसङ्कर करना योग्य नहीं, आप धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं; इसलिये धर्म्म परित्याग न करिये।

हे भरतश्रेष्ठ! महामुनि विश्वामित्रने चाण्डालका ऐसा वचन सुनके और क्षुधासे आर्त्त होकर फिर उसे इस प्रकार उत्तर दिया, मैंने निराहार रहके घूमते हुए बहुत समय बिताया है अब मेरे प्राणधारणका दूसरो कोई उपाय नहीं है। प्राणान्त होनेके समय जिस किसी कर्म्मसे होसके, जीवित रहे; उसके अनन्तर समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे। क्षत्रियोंको इन्द्रकी तरह पालन करना ही धर्म्म है, ब्राह्मणोंका अग्निकी तरह पवित्रता ही धर्म्म हुआ करता है; वेदरूपी अग्नि मेरा बल है, मैं उस ही बलको अवलम्बन करके अभक्ष्य मांस भक्षण करके क्षुधाको शान्त करूंगा। जिस किसी उपायसे बचारे जीवन धारण किया जा सके, यत्नपूर्व्वक वैसा ही करना चाहिये। मरनेकी अपेक्षा जीवन श्रेष्ठ है, जीवित रहनेसे फिर धर्म्माचरण हो सकता है; इसलिये मैं प्राणधारणके निमित्त ज्ञानपूर्व्वक अभक्ष्यको भक्षण करनेमें उद्यत हुआ हूं; तुम इसमें अनुमोदन करो। मैं जीवित रहनेसे धर्म्माचरण करूंगा और जैसे ज्योतिवाले पदार्थ घोर अन्धकारको नष्ट करते हैं, वैसे ही विद्या और तपोबलसे सब अशुभ कर्म्मोंको खण्डन करूंगा।

चाण्डाल बोला, इस अभक्ष्य मांसको खानेसे परमायुकी बढ़ती नहीं होती, प्राण प्रसन्न नहीं होता अमृतपानकी तरह तृप्ति नहीं होती; इससे आप दूसरी कुछ भिक्षा प्रार्थना करिये, कुत्ते का मांस भक्षण करनेमें चित्त न लगाइये; कुत्ते ब्राह्मणोंके अभक्ष्य हैं।

विश्वामित्र बोले! इस दुर्भिक्षके समय दूसरा मांस सुलभ नहीं है, मेरी भी कुछ सम्पत्ति नहीं है, मैं क्षुधाके निमित्त उपायरहित और निराश हुआ हूं; इसलिये इस कुत्तेके मांसमें छः प्रकारके रसोंका स्वाद लेना उत्तम समझता हूं।

चाण्डाल बोला, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये शशक आदि पांच पञ्च-नखवाले पशु ही भक्ष्य हैं इस विषयमें आपके निमित्त शास्त्र ही प्रमाण है, इस लिये आप अभक्ष्य वस्तुके खानेमें प्रवृत्ति न कीजिये।

विश्वामित्र बोले, अगस्त मुनिने भूखे होकर वातापी नाम दानवको भक्षण किया था, मैं भी आपदग्रस्त और क्षुधासे आर्त्त हुआ हूं इसलिये कुत्तेका महा निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, आप और कुछ भिक्षा मांगिये, इस स्थानमें इस तरह अभक्ष्य भक्षण नहीं कर सकेंगे; यह अवश्य ही आपका अकर्त्तव्य है, तब यदि इच्छा हो, तो कुत्तेका मांस ले जाइये।

विश्वामित्र बोले, शिष्ट पुरुष ही धर्माचरण विषयमें कारण है इससे मैं उन्हींके चरित्रोंका अनुसरण करूंगा, पवित्र सामग्रीको भक्षण करनेकी अपेक्षा इस कुत्तेके मांसको मैं उत्तम भक्ष्य समझता हूं।

चाण्डाल बोला, दुष्ट पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, वह सनातन धर्म नहीं है; इस समय आपको ऐसा अकर्त्तव्य कर्म करना उचित नहीं है; आप छलके जरिये अशुभ कार्य्य न करिये।

विश्वामित्र बोले, ऋषि होकर कोई साधारणके असम्मत पापके करनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु इस समय मैं कुत्ता और मृग दोनोंको ही पशु कहके तुल्य ज्ञान करता हूं, इससे मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, वातापी ब्राह्मणोंको भक्षण करता था, इस ही लिये महर्षि अगस्त्यने ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाके अनुसार उसे भक्षण किया, वैसी अवस्थामें नरमांस भक्षण दोषयुक्त नहीं है; जिसमें पापका स्पर्श नहीं, वही धर्म है और सब तरहके उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है।

विश्वामित्र बोले, मैं ब्राह्मण हूं मुझे शरीर ही परम प्रिय और पूजनीय मित्र है, उस शरीरके रक्षाके निमित्तही इस निकृष्ट मांसको हरन करनेकी इच्छा करता हूं; इसलिये ऐसे कुत्सित चाण्डालोंका भी भय नहीं करता।

चाण्डाल बोला, हे विद्वन्! मनुष्य लोग वल्कि अपने जीवनको त्यागते तथापि कोई अभक्ष्य वस्तुके भक्षण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते वे लोग भूखको जीतके ही इस लोकमें समस्त कामना प्राप्त करते हैं, इससे आप भी क्षुधाके वेगको सहके इच्छानुसार प्रीति लाभ करिये।

विश्वामित्र बोले, पाप कर्म करके प्राणत्यागनेसे परलोकमें संशय उपस्थित होता है, यह ठीक है; परन्तु सब कर्म्मोंके नष्ट होनेपर कुछ संशय नहीं रहता। मैं शान्तचित्त होकर सदा व्रताचरण किया करता हूं; इसलिये तपस्याके जरिये अभक्ष्य भक्षणरूपी पापसे छूटंगा; इस समय धर्म आचरणके मुख्य साधन शरीरकी रक्षा करनी उचित है, इसीसे मैं अभक्ष्य मांसको भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, विवेक शक्तियुक्त पुरुषोंके समीप यह अभक्ष्य भक्षण भी पवित्र कर्म कहके वर्णित होता है और मूढ़ पुरुष ही आपदकालमें कुत्तेके मांसको अभक्ष्य कहा करते हैं, मैं जीवन संशयके समयमें यद्यपि इस असत् कार्य्यको करूं, तौभी तुम्हारी तरह चाण्डाल न हूंगा।

चाण्डाल बोला, मुझे यह निश्चय मालूम होता है, कि इस अकार्य्यसे आपकी रक्षा करना योग्य है, ब्राह्मण यदि दुष्कर्म करे, तो उनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता; इस ही कारण मैं आपको निवारण करता हूं।

विश्वामित्र बोले, मेढक ऊंचे स्वरसे चिल्लाते रहते हैं, गौवें कभी जल पीनेसे विरत नहीं होतीं, तुम्हें धर्म उपदेश करनेका कुछ अधिकार नहीं है, इसलिये तुम आत्म-प्रशंसा मत करो।

चाण्डाल बोला, हे द्विजवर! आपके विषयमें मुझे करुणा हुई है, इसलिये मैं सुहृद भावसे आपको कहता हूं; इससे यदि आप इसे अपना कल्याणदायक समझिये तो ऐसा ही करिये, परन्तु लोभके कारण पाप कर्म न कीजिये, मैं आपको पापाचरण करनेसे निवारण करके भी अपराधी होता हूं।

विश्वामित्र बोले, तुम यदि मेरे सुहृद और सुखकी इच्छा करनेवाले हो, तो मुझे इस आपदसे उद्धार करो; मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस परित्याग करके अपनेको धर्मपूर्व्वक रक्षित समझूं।

चाण्डाल बोला, यह कुत्तेका मांस मेरा अपना भक्ष्य है, इसे आपको दान नहीं कर

सकता ; और मेरे सम्मुख आप इसे ग्रहण करेंगे, उसमें भी उपेक्षा न कर सकूंगा । मैं इसे दान करने और आप ब्राह्मण होके इसे ग्रहण करनेसे हम दोनों ही नरकमें गमन करेंगे । विश्वामित्र बोले, मैं आज यदि इस पापयुक्त कर्म्म करके शरीर रक्षा करते हुए जीवित रहूंगा, तो भविष्यत् कालमें परम धर्म्म आचरण करूंगा उपवास करके शरीर त्यागना और अभक्ष्य-भक्षणके जरिये जीवित रहना, इन दोनोंके बीच कौनसा श्रेष्ठ है, उसे तुम कहो ।

चाण्डाल बोला, वंश परम्परासे प्रचलित धर्म्म-सम्पादन विषयमें आत्मा ही साक्षी है, इसलिये इसमें पाप है, वा नहीं ; उसे आप ही जानते हैं । जो पुरुष कुत्तेके मांसको भक्ष्य कहके आदर करता है, मालूम होता है, उसके लिये दूसरी कोई वस्तु भी परित्याग करनेके योग्य नहीं होता है ।

विश्वामित्र बोले, अभक्ष्य वस्तुके ग्रहण करने वा भोजन करनेसे अवश्य पाप होता है ; परन्तु प्राण नष्ट होनेके समय वह दोषयुक्त नहीं है । जिसमें हिंसा वा मिथ्या व्यवहार नहीं है और जिस कर्म्मके करनेसे जनसमाजके बीच अत्यन्त निन्दित नहीं होना पड़ता ; वैसे अभक्ष्य भक्षणमें बहुत भारी पापका कारण नहीं है ।

चाण्डाल बोला, यदि अभक्ष्यको भक्षण करके प्राण रक्षा करना ही आपका मुख्य कारण हुआ, तो वेद और आर्य्य धर्म्म आपके समीप कुछ भी नहीं है । हे द्विजवर ! आप जब अभक्ष्य भक्षण करनेके लिये आग्रह प्रकाश करते हैं, तब खाद्याखाद्य वस्तु मात्रमें ही कुछ दोष नहीं है,—ऐसा ही प्रतिपन्न होता है ।

विश्वामित्र बोले, भोजन करनेसे अत्यन्त पाप होता है ; ऐसा विचार नहीं किया जाता सुरापान करनेसे लोग पतित होते हैं, यह शास्त्रोंका शासनमात्र है ; निषिद्ध मैथुन आदि पापकार्य्य मात्र ही जो पुण्यको नष्ट करते हैं, ऐसा निश्चय नहीं है ।

चाण्डाल बोला, नीच जाति चाण्डालके घरसे चोरी वृत्तिके जरिये, अत्यन्त आग्रहके सहित जो कुत्तेका मांस हरण करता है, उस विद्वान् पुरुषमें सच्चरित्रता नहीं रहती और अन्तमें उसे अवश्य ही शोकित होना पड़ता है, चाण्डाल उस समय महर्षि विश्वामित्रसे ऐसा ही कहके निवृत्त हुआ ; बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करके प्रस्थान किया । अनन्तर उस महामुनिने जीवन धारणकी इच्छा करते हुए कुत्तेका मांस लेकर वनमें स्वजनोंके सहित उसे भोजन करनेकी इच्छा की । अनन्तर उन्होंने विचार किया कि आगे विधिपूर्व्वक देवताओंको तृप्त करके फिर इच्छानुसार इस कुत्तेके मांसको भोजन करूंगा, मुनिने ऐसा ही स्थिर करके ब्राह्म विधिके अनुसार अग्नि लाके ऐन्द्राग्नेय विधानके जरिये स्वयं चरु पाक किया । हे भारत ! अनन्तर उन्होंने विधिपूर्व्वक भागके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंको आवाहन करके देव और पितर-कर्म्म आरम्भ किया । उस ही समय देवराजने प्रजासमूहको सञ्जीवित करते हुए बहुत ही जल बरसाया ; उससे सब ओषधी उत्पन्न हुई । भगवान विश्वामित्र तपस्यासे पाप जलाकर बहुत समयके अनन्तर परम सिद्धिको प्राप्त हुए । उन्होंने उस आरम्भ किये हुए कार्य्यकी समाप्ति करते हुए वैसे चरुका स्वाद न लेकर ही देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट किया था, विद्वान् पुरुष आपदायुक्त होके जीवन धारणके अभिलाषी होकर इसी प्रकार अहङ्काररहित चित्तसे जिस किसी उपायसे होसके दुःखित आत्माका उद्धार करे । सदा ऐसा ही उपाय अवलम्बन करके जीवित रहना उचित है ; पुरुष जीवित रहनेसे पुण्य समूह और कल्याण भोग कर सकता है । हे कुन्तीनन्दन ! इस-

लिये विद्वान् पुरुषको धर्माधर्म निर्णयके विषयमें कृतबुद्धि लोगोंकी बुद्धिको अवलम्बन करके इस लोकमें जीवन व्यतीत करना उचित है। '

१४१ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, आपने अनृतकी तरह श्रद्धा रहित जिस घोर कार्यको महत् पुरुषोंका भी कर्त्तव्य कहके वर्णन किया है, उसे पूछना पड़ता है, कि सुनकर डाकुओंका क्या कर्म है और हम लोगोंके लिये ही कौन सा विषय त्यागने योग्य है मैं शोक और मोहसे युक्त हुआ हूं; मेरा धर्मबन्धन शिथिल हुआ जाता है; मैं चित्तको शान्त करनेमें किसी प्रकार अध्यवसाय लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं; इसलिये मैं ऐसा धर्माचरण करनेमें अशक्त हूं।

भीष्म बोले, मैं वेदागम आदि शास्त्रोंको सुनकर तुम्हें ऐसा धर्माचरण करनेका उपदेश नहीं करता हूं! आपदकालमें ऐसा आचरण न करनेसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं; इस ही कारण कवियोंने निज बुद्धि कौशलके जरिये अच्छी तरह इसे कल्पना किया है। कोकिल, बराह, सिंह आदिसे शिक्षा लाभ करके, जब जिस विषयमें तुम्हारी यह बुद्धि प्रवर्त्तित होवे, उसे ही करना; धर्मके एक देश मात्रका अवलम्बन करना उचित नहीं है, राजाको मनके तरहकी बुद्धि धारण करनी योग्य है। हे कुरुनन्दन! बुद्धि प्राखर्य्य द्वारा धर्म और साधुओंके आचरणको सदा जानना चाहिये; मेरा वचन सर्वदा उसे ही प्रतिपन्न करता है; इसे मालूम करो। राजा लोग निज निज बुद्धिके प्रभावसे विजयी होते हैं; इसलिये बुद्धि बल अवलम्बन करके धर्मसंस्कारमें प्रवृत्त होना उचित है। राजधर्म अनेक शाखाओंसे युक्त है; इसलिये उसके एक देशके सहारे व्यवहार करना उचित नहीं है। अध्ययनके समय अच्छी तरह न सीखनेसे बुद्धि शुद्धि नहीं होती, निर्बल पुरुष एक शाखा धर्मके जरिये किसी कार्य्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। हे भारत! एक मात्र धर्म ही कभी धर्म और कभी अधर्म रूपसे मालूम होता है; जो पुरुष इस विषयमें अनभिज्ञ हैं, वे दो तरहके मार्गमें पड़के संशययुक्त होते हैं; इससे बुद्धिके अनुसार इस प्रकार द्वैधको मालूम करना उचित है। अनन्तर जो करना होगा, पहिले उसे निश्चय करके बुद्धिमान् राजा प्रजासमूहके समीपसे छठवां भाग कर ग्रहण करे। आपदकालमें उससे अधिक ग्रहण करना अनुचित नहीं है; दूसरे लोग इसी प्रकार राजाके चरित्रको धर्म समझते हैं, इसमें अन्यथा होनेसे विपरीत होता है। कोई कोई यथार्थ ज्ञानी, कोई वृथा ही ज्ञानयुक्त होते हैं; इसे यथार्थ रीतिसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष साधुओंके मतको ग्रहण किया करते हैं। धर्मद्वेषी, अर्थज्ञानरहित मनुष्य शास्त्रोंकी निन्दा तथा शास्त्रोंका अप्रमाण प्रकट किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग शास्त्र और आचारकी निन्दा-प्रसङ्गमें केवल जीविका-निर्व्वाहके लिये विद्या सीखकर यशकी इच्छा करते हैं, वेही धर्मद्वेषी और पापी हैं। शास्त्रज्ञानरहित, अयुक्तिसम्पन्न लोगोंकी तरह अपरिणत बुद्धिवाले मूर्ख लोग अपने कर्त्तव्य कर्मका निर्व्वाह करना नहीं जानते। शास्त्रमें दोषदर्शी पुरुष शास्त्रोंकी निन्दा किया करते हैं; शास्त्रोंका अर्थ मालूम होनेपर भी उन लोगोंके समीप वह साधुभावसे प्रतिपन्न नहीं होता; वह लोग कृतविद्य पुरुषोंकी तरह वचनरूपी अस्त्र वा बाण धारण करके ही दूसरेकी विद्याके निन्दावादके जरिये निज विद्याप्रकट करते हैं। हे भारत! तुम ऐसे लोगोंको विद्यावणिक और राक्षसोंके समान जानो; वे लोग साधु पुरुषोंके विहित धर्मको छलपूर्व्वक परित्याग करते हैं। मैंने

सुना है, वचन वा बुद्धिके जरिये धर्म्म उच्चारण करनेसे ही धर्म्म नहीं होता ; देवराजने स्वयं वृहस्पतिका यह उपदेश कहा था। इस समय मैं बिना कारणके कोई वचन नहीं कहता हूं, कोई कोई पुरुष शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर भी उसके अनुसार धर्म्म आचरण नहीं करते, कोई कोई पण्डित लोक-यात्रा विधानको ही धर्म्म कहा करते हैं ; पण्डित पुरुष स्वयं साधुओंके अनुष्ठित धर्म्मका आचरण करें। हे भारत! बुद्धिमान् लोग यदि क्रोध, मोह और अज्ञानके वशमें होकर शास्त्रीय उपदेश दान करें, तो वह जनसमाजमें ग्रहण नहीं किया जाता और जो लोग शास्त्रदर्शिनी बुद्धि धारण करते हैं, उनके समीप उक्त उपदेश प्रशंसनीय नहीं है, बल्कि वे लोग अल्प-बुद्धियुक्त पुरुषोंका वचन ज्ञान पूरित होनेसे उसे साधु समझते हैं। युक्तिके जरिये जो शास्त्र नष्ट होजाय, वह शास्त्रोंमें नहीं गिना जाता। शुक्राचार्य्यने दानवोंसे यह सन्देहको नष्ट करनेवाला वचन कहा था,—सन्देह युक्त ज्ञानका रहना और न रहना समान है ; वैसे ज्ञानके जरिये जो धर्म्म होता है, उसके मूलको काटना और मेरे इन सब उपदेशोंको अङ्गीकार करना तुम्हें अवश्य उचित है, तुमने जो उग्र कर्म्म सिद्ध करनेके वास्ते जन्म लिया है, वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है ? देखो, मैंने युद्ध-विग्रहमें प्रवृत्त होकर कितने ऐश्वर्य्यवान क्षत्रियोंको स्वर्गलोकमें भेजा है उससे उन लोगोंकी सद्गति हुई है ; परन्तु कोई कोई पुरुष इसके वास्ते मेरे ऊपर सन्तुष्ट नहीं हुए। प्रजापतिने बकरे, घोड़े और क्षत्रियोंको समान रूपसे परोपकारके निमित्त उत्पन्न किया है ; इससे सदा प्राणियोंका उपकार करके सुरलोकमें गमन करना ही उचित है ; अवध्य पुरुषके मारनेसे जैसा दोष होता है, बध्य पुरुषका बध न करनेसे भी वैसा ही दोष हुआ करता है। साधु लोग जिसे त्यागते हैं, डाकू लोग उसी निज कर्त्तव्य कहके ग्रहण करते हैं, इसलिये राजा अत्यन्त तीक्ष्ण होकर प्रजासमूहको स्वधर्म्ममें स्थापित करे ; इसमें अन्यथा होनेसे वे लोग भेड़ियेकी तरह परस्परसे एक दूसरेको भक्षण करते हुए भ्रमण करेंगे। कौओंकी तरह जलसे मछली हरनेकी भांति जिसके राज्यमें डाकू लोग परधन हरन किया करते हैं वह क्षत्रियोंके बीच अत्यन्त ही पापी है। राजन्! तुम वेदविद्यायुक्त, सत्कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंको मन्त्रोपदपर अभिषिक्त करके धर्म्मके अनुसार प्रजा पालन और पृथ्वी शासन करो। जो राजा अन्याय रीतिसे प्रजासमूहके निकट कर ग्रहण करता है, वह पालन-धर्म्मसे हीन और विशेष उपायमें अनभिज्ञ क्षत्रिय क्लीव शब्दसे पुकारे जाने योग्य होता है। राजा लोग अत्यन्त कोमल तथा अत्यन्त कठोर होनेसे धर्म्मपूर्व्वक प्रशंसित नहीं होते ; इसलिये मृदुता और कठोरता दोनोंको ही अतिक्रम करना उचित नहीं है ; इससे तुम पहिले उग्र होकर पीछे मृदु बनो। मैं तुमपर अत्यन्त स्नेह किया करता हूं ; इसलिये यह अत्यन्त कष्टयुक्त क्षत्रिय धर्म्म कहा है। विधाताने उग्र कार्य्योंके करनेके ही वास्ते तुम्हें उत्पन्न किया है ; इसलिये तुम उसहीके अनुसार राज्य शासन करो। हे भरतश्रेष्ठ! बुद्धिमान शुक्राचार्य्यने कहा है, आपदकालमें अशिष्टोंका निग्रह और शिष्टोंकी सदा प्रतिपालन करना ही धर्म्म है।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुसत्तम पितामह! दूसरे लोगोंसे अलङ्घनीय यदि कोई मर्य्यादा हो, तो मैं पूंछता हूं, आप उसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद जाननेवाले सच्चरित्र तपस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करो, यही अत्यन्त पवित्र उत्तम कर्म्म है ; तुम देवताओंके विषयमें जैसा व्यवहार किया करते हो, ब्राह्मणोंके विषयमें भी सदा वैसा ही व्यवहार करो। हे महाराज!

ब्राह्मणोंने क्रुद्ध होकर अनेक दुष्कर कर्म किये हैं, उन लोगोंकी प्रसन्नतासे बहुत यश प्राप्त होता है, अप्रसन्नतासे भय उत्पन्न हुआ करता है। ब्राह्मण लोग प्रसन्न होनेसे अमृतके समान और क्रुद्ध होनेसे विषकी तरह हुआ करते हैं।

१४२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाबुद्धिमान पितामह! शरणागत लोगोंके प्रतिपालन करनेसे जो धर्म होता है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज! शरणागत पुरुषोंके प्रतिपालन करनेसे बहुत ही धर्म हुआ करता है; तुम इस विषयके प्रश्न करनेके योग्यपात्र हो। हे राजन्! शिवि आदि राजा लोग शरणागत लोगोंको प्रतिपालन करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं मैंने सुना है, किसी कपोतने शरणागत शत्रुको विधिपूर्वक सम्मान करके निज मांस भोजन कराया था।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पहिले समयमें कपोतने किस प्रकार शरणागत शत्रुको निज मांस भोजन कराया और किस तरह उसकी गति हुई थी?

भीष्म बोले, हे राजन्! भगवान भार्गवने मुचकुन्द राजाके समीप सब पापोंको नष्ट करनेवाली दिव्य कथा कही थी, उसे तुम सुनो। हे पुरुषप्रवर पृथापुत्र! पहिले मुचकुन्द राजाने भार्गवके निकट विनीत भावसे इस विषयमें प्रश्न किया था। भार्गवने उस सेवा करनेवाले राजासे कपोतने जिस प्रकार सिद्धि लाभ की थी; उस कथाको इस भांति वर्णन किया था, मुनि बोले, हे महाभुज महाराज! मैं धर्म, काम, अर्थ-निर्णय युक्त कथा कहता हूं, सावधान होके सुनो। किसी महावनके बीच कालान्तक यमराजके समान विकट रूपवाला एक पक्षीघातक निषाद भ्रमण करता था। उसका शरीर कौआकी तरह काला, दोनों नेत्र लाल, दोनों जङ्घा बहुत लम्बी, दोनों चरण छोटे, मुखमण्डल भयानक और दोनों गाल बड़े थे। वह भयङ्कर कार्य्य करता था इसीसे स्त्रीके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उसका सुहृद सम्बन्धी और बान्धव नहीं था; सब कोईने ही उसे परित्याग किया था, क्योंकि पापाचारी मनुष्योंको पण्डित लोग एकबारगी परित्याग किया करते हैं, जो पुरुष अपनेको ही विष भक्षण वा उद्बन्धन आदिसे नष्ट कर सकता है वह किस प्रकार दूसरेका हितसाधन करेगा? जो सब दुराचारी नृशंस मनुष्य प्राणियोंका प्राण हरण करते हैं, वे सर्पकी तरह जीवोंके उद्वेगजनक होते हैं। हे प्रजानाथ! वह निषाद जाल ग्रहण करके वनमें सदा पक्षियोंको मारकर उनका मांस बेचता था। उस दुष्टात्माके इसी प्रकार व्यवसायमें प्रवृत्त रहनेसे बहुत समय बीत गया; तौभी वह निज कार्य्यसे जो अधर्म होता है, उसे न जान सका। वह इसी प्रकार उपायके सहारे भार्य्याके सहित समय बिता रहा था, मूढ़ताके कारण उसे दूसरे किसी व्यवसायमें अभिलाषा नहीं हुई। अनन्तर किसी समय वह निषाद वनके बीच स्थित था; उसको चारों ओर प्रचण्ड पवन मानो वृक्षोंको उखाड़ता हुआ प्रकट हुआ, जैसे समुद्र नौकासमूहसे परिपूरित होता है, वैसे ही आकाशमण्डल मुहूर्त्त भरके बीच बादलों और बिजली समूहसे भर गया, देवराजने बहुतसी जलधारा वर्षा करके क्षणभरमें पृथ्वीको जलसे परिपूर्ण किया। अनन्तर उस वर्षाके समय निषाद चेतरहित और शीतसे आरत होकर व्याकुलचित्तसे वनके बीच घूमते हुए कहीं भी ऐसी नीची भूमि न पाई जो कि जलसे परिपूर्ण न हुई हो। वनके सब मार्ग भी

जलसे भर गये थे। वेगपूर्व्वक जलकी वर्षा होनेसे पचोसमूह मरके पृथ्वीमें पड़े हुए थे। मृग, सिंह, वराह आदि ऊंचे स्थलको अवलम्बन करके सोरहे। जङ्गलोजीव प्रचण्डवायु और वर्षासे त्रासित, भयसे आर्त्त और भूखे होकर सब कोई वनमें एक स्थलमें भ्रमण करने लगे। पची घातक निषाद शीतार्त्त शरीरसे किसी स्थानमें जाने वा एक स्थानमें स्थिर रहनेमें समर्थ न हुआ। अन्तमें उसने देखा, कि शीतसे विह्वल एक कपोती पृथ्वीपर पड़ी है, वह पापी स्वयं पीड़ित होनेपर भी कपोतीको देखते ही उसे निज पीञ्जरेमें डाल लिया। वह स्वयं दुःखित होनेपर भी दूसरेके दुःखका कारण हुआ; वह पापात्मा पाप करनेवाला था, इसीसे पाप-कार्य्यमें ही प्रवृत्त हुआ। उसने वनमें मेघ-मण्डल पर्य्यन्त ऊंचा एक वृच देखा; छाया वास और फलको आशासे पची समूह उसका आश्रय कर रहे थे; विधाताने मानों परोपकारके ही निमित्त साधु पुरुषोंकी तरह उसे बनाया था। अनन्तर फूले हुए कुमुददलसे शोभित जलयुक्त बड़े तालाबकी तरह आकाशमण्डल चणभरमें तारा समूहसे सुशोभित हुआ। शीत-विह्वल व्याधाने बादल रहित, तारोंसे प्रकाशमान आकाश और घोर रात्रि देखकर सब ओर देखने लगा। "इस स्थानसे बहुत दूर मेरा निवास स्थान है,—ऐसा विचारके उसने उस वृचके मूलमें रात्रि बितानेका निश्चय किया। अनन्तर उसने हाथ जोड़के वृचको प्रणाम करके कहा। हे तरुवर! तुम्हारे ऊपर जो सब देवता हैं, मैं उनका शरणागत हुआ हूं। पचीघातकने महादुःखमें पड़के ऐसा वचन कह कर पृथ्वीपर कुछ पत्ते बिछाकर पत्थरके ऊपर सिर रखके शयन किया।

१४३ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे राजन्! विचित्र तनरूहयुक्त एक पची बहुत समयसे सुहृदोंके सहित उस वृचकी शाखापर वास करता था; उसकी भार्य्या प्रातःकाल चारा चुगने गई थी; रात्रि उपस्थित हुई तौभी वह आश्रममें न आई; इससे पची अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगा, इसके पहिले प्रचण्ड पवन बहता था और जलकी वर्षा हुई थी; मेरी प्रेयसी अबतक भी क्यों नहीं आई? वह जो अभीतक नहीं लौटी, इसका क्या कारण है? वनमें मेरी स्त्रीका कुछ अमङ्गल तो नहीं हुआ? प्रियाविरहसे आज यह मेरा गृह सूना मालूम होता है। भार्य्यारहित गृहस्थका गृह पुत्र, पौत्र, वधू और सेवकोंसे परिपूरित होनेपर भी सूना हुआ करता है; पण्डित लोग गृहको घर नहीं कहते, गृहिणीको ही घर कहा करते हैं; गृहिणीरहित घर वनके समान है। मेरी वह आरक्तनयनी विचित्राङ्गी मधुर वचन कहनेवाली प्यारी यदि आज न आवे, तो मेरे जीनेका कोई प्रयोजन नहीं है। जो उत्तम व्रत करनेवाली मेरे भूखे रहनेपर भोजन नहीं करती, स्नान न करनेपर स्नान नहीं करती, बिना बैठे बैठती नहीं और बिना सोये शयन नहीं करती थी; मेरे प्रसन्न होनेसे जो हर्षित और दुःखी होनेसे दुःखित होती थी; मेरे प्रवासमें गमन करनेसे जिसका मुख मलीन होता था और क्रुद्ध होनेपर जो प्रिय वचन कहती थी; वह पतिव्रता, पतिगति और पतिके प्रिय तथा हित कार्य्योंमें रत रहनेवाली प्रेयसी कहां गई? भूलोकमें जिसकी उसके समान भार्य्या है, वह पुरुष ही धन्य है। वह अनुरक्ता, सुस्थिरा, स्निग्ध-मूर्त्ति, भक्तिशालिनी तपस्विनी ही मुझे थकने वा भूखा होनेपर जान सकती है। जिसके प्रेयसी है, वह यदि वृचकी मूलमें भी वास करे तो वही उसके लिये गृहस्वरूप होता है और प्रियाहीन घर भी दुर्गम वनके समान हुआ करता है पुरुषके

धर्म्म, अर्थ और काम साधन कार्य्यमें भार्य्या ही सहाय हुआ करती हैं और विदेश जानेके समय एक मात्र भार्य्या ही पुरुषकी विश्वास-पात्र रहती है। लोकमें भार्य्या ही पुरुषका परम प्रयोजन सिद्ध करती है, सहायरहित पुरुषके लोकयात्रा निर्व्वाहके विषयमें भार्य्या ही सहायक होती है। पोड़ित पुरुषको औषध समान सदा रोगयुक्त और क्लेशमें पड़े हुए मनुष्योंके लिये भार्य्याके समान और कोई भी नहीं, भार्य्याके समान बन्धु नहीं, भार्य्याके समान आश्रय नहीं और जनसमाजमें धर्म्म संग्रहके विषयमें भार्य्याके समान और कोई भी सहायक नहीं है। जिसके घरमें पतिव्रता प्रियवादिनी भार्य्या नहीं है, उसे वनमें गमन करना ही योग्य है, उसके लिये वन और घर दोनों ही समान हैं।

१४४ अध्याय समाप्त।

---

कपोत इसी तरह विलाप कर रहा था, तब पक्षिघाती निषादके हस्तगत हुई कपोती पतिका करुणायुक्त बचन सुनके कहने लगी। कपोती बोली, अहो! मैं अत्यन्त सौभाग्यवती हूं, मेरा पति क्या ही प्रियवादी है! मुझमें गुण हों, वा न हों, ये तो ऐसा कहते हैं, जिस नारीके ऊपर पति प्रसन्न नहीं है, उसे स्त्री कहके गिनना अनुचित है। स्त्रियोंके ऊपर यदि पति प्रसन्न रहे, तो सब देवता ही सन्तुष्ट होते हैं; अबलाओंका जो पति ही परम देवता स्वरूप है, उस विषयमें अग्नि ही साक्षी रहती है। जैसे पुष्प-स्तवकयुक्त लता दावानलके जरिये जल जाती हैं, पतिके असन्तुष्ट रहनेसे नारी भी उसी प्रकार भस्म होजाती हैं। निषादके हस्तगत हुई कपोती दुःखसे आर्त्त होकर उस समय इसी भांति चिन्ता करके शोकित पतिसे बोली, हे नाथ! मैं तुम्हें कल्याणकी कथा कहती हूं, तुम सुनकर वैसा ही करो,—तुम शरणागत पुरुषका विशेष रीतिसे परित्राण करो; यह तुम्हारे स्थानपर आके सोरहा है, यह पुरुष शीतसे दुःखित तथा क्षुधासे आर्त्त हुआ है; इसलिये इसका सत्कार करो, जो कोई ब्रह्महत्या करे, जो कोई लोकमाता गऊको मारे और जो पुरुष शरणागत पुरुषका वध करते हैं, उन लोगोंके पाप समान ही होते हैं। हमारी कपोतजातिके धर्म्म अनुसार जैसा व्यवहार विहित है, उसी भांति बुद्धिमान पुरुषको सदा उसका अनुसरण करना उचित है, जो गृहस्थ शक्तिके अनुसार धर्म्माचरण करता है, मैंने सुना है अन्तकालमें अक्षय लोकोंको पाता है। इस समय तुमने कन्या पुत्रोंका मुख देखा है, इससे निज शरीरके लिये दया त्यागके धर्म्म और अर्थ परिग्रह करके जिस प्रकार इसका चित्त प्रसन्न हो, उसी तरह सत्कार करो। हे नाथ! तुम मेरे वास्ते दुःख मत करो, तुम यदि जीते रहोगे, तो शरीर यात्रा निर्व्वाहके लिये दूसरी भार्य्या पाओगे। पौष्करेमें स्थित तपस्विनी कपोती अत्यन्त दुःखित होकर पतिको देखके ऐसा ही बोली थी।

१४५ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, कपोतने निज पत्नीका धर्म्मपूरित युक्तियुक्त बचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर आंसू भरे नयनसे पक्षिजीवी निषादको देखकर यथाविधि यत्नपूर्व्वक उसका सत्कार किया, और उसका स्वागत प्रश्न करके बोला तुम्हारी क्या अभिलाषा है, शीघ्र कहो? मैं उसे ही करूंगा। शत्रु भी यदि घरपर आवे, तो उसकी भी अतिथि सेवा करनी उचित है; कोई पुरुष यदि काटनेके लिये आवे, तो वृक्ष उसे छाया दान करनेमें विरत नहीं होता; पञ्चयज्ञमें

प्रवृत्त गृहस्थ पुरुषोंको विशेष यत्नके सहित शरणागत पुरुषोंका अतिथि-सत्कार करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहकर जो पुरुष मोहके वशमें होकर पञ्चयज्ञ करनेमें विरत होता है; धर्म्मपूर्व्वक उसकी इस लोक और परलोकमें सद्गति नहीं होती; इससे तुम विश्वासी होकर कहो, मुझसे जो कहोगे, मैं वही करूंगा; तुम अपने मनमें शोक मत करो। निषाद कबूतरका ऐसा वचन सुनके उससे बोला, मैं जाड़ेसे अत्यन्त दुःखी हूं, इससे जिस प्रकार जाड़ेसे परित्राण हो, तुम वैसा ही विधान करो।

निषादके ऐसा कहनेपर कपोतने सामर्थ्यके अनुसार पृथ्वीपर कितने ही पत्तोंको इकट्ठा करके पत्तेके सहारे अग्नि लानेके वास्ते शीघ्र ही गमन किया। वह अग्निशालासे आग ले आया, फिर सूखे पत्तोंके बीच अग्नि जला दिया। कबूतर इसी तरह आग जलाके शरणागत पुरुषसे बोला, तुम विश्वासी होकर निःशंकचित्तसे अपना शरीर गर्म्म करो। कपोतका ऐसा वचन सुन निषादने अपना शरीर गर्म्म किया। अग्नितापसे उसका जीवन प्रत्यागत हुआ, तब वह कपोतको पुकारके बोला, हे पक्षी! मैं भूखसे कातर हुआ हूं, इससे इच्छा करता हूं कि तुम मुझे कुछ भोजन दान करो, कबूतरने व्याधेका वचन स्वीकार करके कहा, मेरे ऐसी कोई भोजनकी सामग्री सञ्चित नहीं है, जिससे तुम्हारी क्षुधा शान्त हो; मैं वनवासी हूं, प्रतिदिन जो कुछ लाता हूं, उसहीसे जीविका निर्व्वाह किया करता हूं; मुनियोंकी तरह हम लोगोंके पास भी भोजनकी वस्तु सञ्चित नहीं रहती। हे भरतश्रेष्ठ! कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके दुःखित हुआ और क्या करना चाहिये, ऐसी ही चिन्ता करते हुए निज वृत्तिकी निन्दा करने लगा। कपोत मुहूर्त भरके अनन्तर सावधान होकर पक्षिघातीसे बोला, "थोड़ी देर ठहरो, मैं तुम्हें तृप्त करूंगा।" कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके सूखे पत्तोंमें आग जलाकर अत्यन्त हर्षित होकर बोला, मैंने पहिले देवता पितर और महानुभाव ऋषियोंके निकट सुना है कि अतिथि पूजनसे बहुत धर्म्म हुआ करता है। इससे, हे प्रियदर्शन! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो, अतिथि-पूजा विषयमें मुझे निश्चय ज्ञान हुआ है। अनन्तर प्रतिज्ञा किये हुए महाबुद्धिमान कपोतने मानो हंसते हंसते तीन बार उस अग्निकी प्रदक्षिणा करके उसमें प्रविष्ट हुआ। निषादने कपोतको अग्निमें प्रवेश करते देखकर "मैंने यह क्या किया।" मनही मन ऐसी ही चिन्ता करने लगा। हाय! मैं कैसा नृशंस और क्या ही निन्दनीय हूं। निजकर्म्मके दोषसे मुझे निःसन्देह महाघोर अधर्म्म होगा। व्याधा पक्षीकी तैसी अवस्था देखकर निज कर्म्मकी निन्दा करते हुए इसी भांति अनेक प्रकार विलाप करने लगा।

१४६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे आर्त्त वह लोभी अग्निमें प्रविष्ट हुए कपोतको औरसे देखकर फिर यह वचन बोला कि मैं अत्यन्त नृशंस और निर्बुद्धि हूं, मैंने क्या कर्म्म किया। मैं अत्यन्त क्षुद्रजीवी हूं; इस कार्य्यसे अवश्य ही मुझे महापाप होगा। वह बार बार अपनी निन्दा करके बोला, मैं जब शुभ कार्य्योंको त्यागके पक्षिलोभी हुआ हूं, तब मैं अवश्य ही अविश्वासी और अत्यन्त दुर्बुद्धि तथा सदा पापमें रत हूं; मैं बहुत ही निठुर हूं, इस ही लिये महात्मा कपोतने निज शरीरको जलाकर मुझे धिक्कारपूर्व्वक उपदेश दान किया, इसमें सन्देह नहीं है; इससे मैं स्त्री-पुत्रोंको त्यागके प्रिय प्राण छोड़ूंगा; महात्मा कपोतने मुझे धर्म्म-

उपदेश प्रदान किया है। जैसे ग्रोष्मकालमें थोड़े जलसेयुक्त तालाब सूख जाते हैं, उसही प्रकार मैं आजसे निज शरीरको सब भोगोंसे रहित करके सुखाऊंगा। भूख, प्यास और आतपकी सहके धमनी संयुक्त शरीरसे अनेक तरहके उपवासके सहारे पारलौकिक धर्म्म आचरण करूंगा। कैसा आश्चर्य है! कपोतने देह दान करके अतिथिसत्कार दिखाया। धर्म्मिष्ठ पक्षिश्रेष्ठका जैसा धर्म्म दीख पड़ा, मैं वैसा ही आचरण करूंगा, क्योंकि धर्म्म ही परम गति है। क्रूर कर्म्म करनेवाले लोभी व्याधने तीक्ष्ण व्रत अवलम्बनपूर्व्वक ऐसा ही कहके तथा निश्चय करके महाप्रस्थानका आश्रय करते हुए उस बूढ़ी कपोतीको छोड़के यष्टि, शलाका, जाल और पिञ्जरा परित्याग किया।

१४७ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, निषादके जानेपर परम दुःखी कपोतवनिता शोकसे आर्त्त होकर रोदन करती हुई पतिको स्मरण करके बोली, नाथ! तुमने कभी मेरा अप्रिय कार्य्य किया था,—ऐसा स्मरण नहीं होता, बहुतसे पुत्रवाली स्त्रियें भी विधवा होनेपर शोक किया करती हैं; पतिसे रहित दुःखिनी नारी बन्धु जनोंमें शोचनीय होती हैं। तुमने सदा मेरा लालन किया, मीठे और मनोहर वचनोंसे अनेक तरहसे मेरा सत्कार किया है। पहाड़की गुफा, नदियोंके झरने और रमणीय वृक्षोंकी चोटियोंमें मैंने तुम्हारे सङ्गमें विहार किया है; आकाशमें गमन करनेके समय भी मैं तुम्हारे साथ सुखसे फिरती थी। हे नाथ! मैंने पहिले तुम्हारे साथ जो सब विहार किया है; आज अब वह कुछ भी नहीं है। पिता, भ्राता, पुत्र आदि परिमित सुख प्रदान करते हैं, अपरिमित सुख देनेवाले पतिकी कौन पूजा नहीं करती? पतिके समान नाथ नहीं, पतिके समान सुख नहीं; सर्व्वस्व धन परित्याग करके स्त्रियोंके लिये एक मात्र पतिही अवलम्बनीय है। हे नाथ! इस समय तुम्हारे बिना मेरे जीनेका कुछ प्रयोजन नहीं है; कौन सती सीमन्तिनी पतिहीन होकर जीनेका उत्साह करेगी? अत्यन्त दुःखिता पतिव्रता कपोतीने करुणा स्वरसे इसी भांति अनेक तरह विलाप करके जलती हुई आगमें प्रवेश किया। अनन्तर कपोतको उसने देखा, कि विचित्र कवचधारी विमानमें स्थित पतिको महानुभाव सुकृति जन पूजा करते हैं। कपोत उस समय विचित्र माला, वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर शतकोटि विमानोंपर विहार करनेवाले पुण्यवान पुरुषोंसे घिरा था। कपोतने विमानपर चढ़के स्वर्ग लोकमें जाकर वहां निज कर्म्मके अनुसार सत्कृत होकर प्रियाके सहित विहार करने लगा।

१४८ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे राजन्! निषादने उस कपोत दम्पतीको विमानपर चढ़ हुए निवास करते देखकर दुःखित होकर चिन्ता किया, कि इसी प्रकार तपस्याके सहारे मैं परम गतिको प्राप्त होऊंगा। उसने मनही मन ऐसाही निश्चय करके गमन करनेकी तैयारी की। पक्षिजीवी व्याधा महाप्रस्थानका आश्रय करके स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे चेष्टारहित और ममताहीन होकर वायु भक्षण करने लगा। अनन्तर सुन्दर शीतल जलसे युक्त अनेक प्रकारके पक्षियोंसे परिपूरित एक तालाब उसके दृष्टिगोचर हुआ। प्यासा पुरुष जिसे देखनेसे ही निःसन्देह तृप्त होता था। महाराज! व्याधा उस समय उपवासके कारण अत्यन्त कृश हुआ था, उसने उस रमणीय तालाबकी ओर विशेष रूपसे न देखकर

ही विविध श्वापदयुक्त एक महाघोर वनके बीच हर्षपूर्व्वक प्रवेश किया ; वनमें प्रवेश करते ही उसका शरीर कांटोंसे चत विचत होकर रक्त-पूरित होगया ; तोभी वह उस अनेक मृग आदिकोंसे युक्त निर्ज्जन वनके बीच भ्रमण करने लगा । अनन्तर वनमें वेगपूर्व्वक वायुके चलनेसे बड़े बड़े वृक्षोंके आपसमें रगड़ खानेसे प्रबल दावाग्नि प्रकट हुई । धीरे धीरे प्रलय-कालकी अग्नि समान प्रभायुक्त अग्नि क्रुद्ध होकर विविध वृक्षों और लतापल्लवोंसे परि-पूरित वनको जलाने लगी जब अग्निदेव ज्वाल-माला युक्त वायुसे बढ़के अग्निपुञ्जके सहारे मृग पक्षियोंसे युक्त घोर वनको जलाने लगे, तब व्याधाने शरीर त्यागनेके वास्ते कृतनिश्चय होकर हृष्टचित्तसे बढ़ी हुई अग्निकी ओर दौड़ा । हे भरतसत्तम ! निषाद जब उस अग्निके जरिये भस्म हुआ, तब उसकी कलुष-राशि विनष्ट हुई; अन्तमें उसने परम सिद्धि लाभ की । अनन्तर उसने पापरहित होकर स्वर्ग-लोकमें गमन करके अपनेको यक्ष, गन्धर्व्व और सिद्धोंके बीच देवराजके समान विराजते हुए देखा । पतिव्रता कपोती और कपोत पुण्यक-र्म्मके सहारे इसी प्रकार निषादके सहित सुर-लोकमें गये थे । इसी प्रकार जो स्त्री शीघ्र ही पतिका अनुसरण करती है, वह स्वर्गवासिनी कपोतीकी तरह विराजमान हुआ करती है । मैंने महात्मा कपोत और व्याधका यह उपन्यास कहा, इन्होंने पवित्र कर्म्मके जरिये धर्म्मिष्ठ पुरु-षोंकी गतिलाभ की थी । जो पुरुष सदा इसे सुनता वा कहता है, प्रमादके कारण मनमें भी कभी उसका अशुभ नहीं होता है । हे धार्म्मिकप्रवर युधिष्ठिर ! इसी तरह शरणागत पुरुषकी रक्षा करना ही महान् धर्म्म है ; यह कार्य्य करके गोहत्या करनेवाला मनुष्य भी पाप कर्म्मसे छूट जाता है ; परन्तु जो पुरुष शरणा-गत जनोंका वध करता है, उसकी निष्कृति नहीं होती । मनुष्य इस पाप नष्ट करनेवाले पवित्र इतिहासको सुननेसे दुर्गतिको न प्राप्त होकर स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं ।

१४९ अध्याय समाप्त ।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम ! जो पुरुष अज्ञानताके कारण पापाचरण करता है, वह किस प्रकार उससे मुक्त होता है, आप मुझसे वही कहिये ।

भीष्म बोले, शुनकपुत्र द्विजवर इन्द्रोतने जो जनमेजयसे कहा था, मैं इस विषयमें तुम्हारे निकट ऋषियोंसे सत्कृत वह प्राचीन वृत्तान्त वर्णन करूंगा । परीक्षितके पुत्र जनमेजय नाम महाबलवान पराक्रमी एक राजा थे ; उन्होंने अज्ञानताके कारण ब्रह्महत्या की थी, इसीसे पुरोहितके सहित ब्राह्मणोंने उन्हें परित्याग किया , अन्तमें प्रजासमूहने भी उन्हें परित्याग किया, तब उन्होंने रातदिन शोककी अग्निसे जलते हुए वनमें गमन करके महत् कल्याण साधन किया । राजाने शोकसे जलते हुए घोर तपस्या करते हुए पृथ्वीमण्डलमें देश देश घूमकर ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुए पाप दूर होनेका विषय ब्राह्मणोंसे पूछा था ; उस विषयमें यह धर्म्मयुक्त पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ! किसी समय राजा जनमेजयने पाप कार्य्यसे दह्यमान होकर भ्रमण करते हुए शुनकनन्दन संशित-व्रती महर्षि इन्द्रोतके निकट आके उनके दोनों चरण ग्रहण किये । महर्षि उस समय राजाको और देखकर अत्यन्त निन्दा करके बोले, तुम भ्रूणहत्या करनेवाले, पापाचारी होकर किस निमित्त इस स्थानमें आये हो ? मेरे निकट तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? तुम मुझसे कोई बात मत पूछो , जाओ, यह तुम्हारे योग्य स्थान नहीं है ; तुम्हारे आनेसे मैं प्रसन्न नहीं हुआ ; तुम्हारे शरीरसे रुधिरकी तरह दुर्गन्धि बाहर

होती है, आकार मुर्देकी तरह दीख पड़ता है, तुम अमङ्गलाचारी होकर मङ्गलाचारी और मृत होकर जीवितकी तरह भ्रमण कर रहे हो। तुम अनुक्षण पापकी चिन्ता करते हुए मलिनस्वभाव और मृत्युसे आक्रान्त हुए हो, तुम सोते और जागते हो, यह ठीक है; परन्तु अत्यन्त दुःख भोग कर रहे हो। हे राजन्! तुम्हारा जीवन निरर्थक है, तुम अत्यन्त क्लेशसे जीवन बिता रहे हो। नीच पाप कर्म करनेके वास्ते विधाताने तुम्हें उत्पन्न किया है। पितर लोग अनेक कल्याणकी इच्छा करके तपस्या, देवपूजा, वन्दना और तितिक्षाके जरिये पुत्र-कामना किया करते हैं; परन्तु देखो, तुम्हारे लिये तुम्हारे सब पितर नरकगामी होरहे हैं, तुममें उन लोगोंका जो सब आशाबन्धन था, वह भी निरर्थक हुआ है। लोग जिनकी पूजा करते हुए स्वर्ग, आयु और यश लाभ करते हैं, तुम बिना कारणके ही उन ब्राह्मणोंसे सदा द्वेष किया करते हो; इसलिये तुम इस लोकको परित्याग करनेपर पाप कर्मके कारण शिर नीचे करके सब कर्म्मोंके फल भोगनेके लिये बहुत समयतक नरकमें डूबते रहोगे। वहांपर गिद्ध और अधोमुख मयूर समूह तुम्हें प्रतिक्षण भक्षण करेंगे। अनन्तर तुम फिर पाप-योनिको प्राप्त होगे। हे राजन्! यदि तुम विचार करो कि यह लोक ही नहीं है,—तो परलोक कहां?' ऐसा होनेसे यम स्थानपर यमदूत लोग प्रतिक्षण तुम्हें उसे स्मरण करा देंगे।

१५० अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, इन्द्रोत मुनिने जब जनमेजयसे ऐसा कहा, तब वह मुनिको सम्बोधन करके बोले, हे तपोधन! आप निन्दनीय पुरुषकी निन्दा किया करते हैं, इस कारण मैं निन्दनीय हुआ हूं और निन्दनीय कार्य किया है; इससे मुझे और मेरे कार्योंको निन्दा कर रहे हैं; इसलिये मैं आपको प्रसन्न करता हूं, मैंने जो कुछ किया है, वह सब दुष्कर्म है, इस समय मैं मानो अग्निमें पड़के जल रहा हूं, निज कर्म्मोंको स्मरण करके मेरा अन्तःकरण किसी तरह सन्तुष्ट नहीं होता है; मैं यमसे अत्यन्त भयभीत होता हूं; यम भयरूपी शल्यको बिना निकाले किस प्रकार जीवन धारण करनेमें समर्थ होऊंगा? हे महर्षि! आप समस्त क्रोध परित्याग करके मुझे सदुपदेश प्रदान करिये। पहिले मैं ब्राह्मणोंके विषयमें अत्यन्त भक्तिमान था; इस समय भी कहता हूं कि ब्राह्मणोंके विषयमें फिर अब अभक्ति नहीं करूंगा, मेरे इस वंशका शेष रहे, जिसमें इसकी पराभव न हो। जो लोग ब्राह्मणोंकी हिंसा करके जनसमाजमें अपयशके पात्र और वेद निर्णयके अनुसार निज जातिसे परित्यज्य हुए हैं, उनका शेष होना उचित नहीं है, मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं, इसलिये युक्तियुक्त वचन बार बार प्रकाश करके आसक्तिरहित योगी लोग जैसे कृपा करके निर्द्धन आगोंको प्रतिपालन किया करते हैं, आप भी उसी तरह मेरी रक्षा करिये। यज्ञहीन मनुष्य किसी प्रकार इस लोकको नहीं प्राप्त होते, वे पुलिन्द और शबर आदि म्लेच्छ जातियोंकी तरह नरकमें निवास किया करते हैं। हे ब्रह्मन्! आप उत्तम पण्डित हैं, इसलिये मैंने बालककी तरह न जानकर जो कुछ कहा है, आप उसे क्षमा करिये; पुत्रके विषयमें पिताकी तरह आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।

शौनक बोले, अज्ञ पुरुष जो बहुतसे अयुक्त कर्म किया करते हैं, उसमें आश्चर्य नहीं है; ज्ञानवान होके भी जो जीवोंके विषयमें योग्य व्यवहार नहीं करते, वही आश्चर्य है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिरूपी महलपर चढ़के स्वयं अशोच्य होकर दूसरेके लिये शोक किया करते हैं और पहाड़पर वास करनेवालोंकी तरह

पृथ्वीकी सब वस्तुओंको कुत्सितरूपसे देखते हैं। जो पुरुष साधुओंके समीप निन्दनीय होकर दुःखित होता और उनकी दृष्टिके अगोचर हुआ करता है, वह कभी कल्याण लाभ और कर्त्तव्यको नहीं देख सकता। वेद शास्त्रोंमें कहे हुए ब्राह्मणोंके पराक्रम और महात्म्य तुम्हें अविदित नहीं हैं; इसलिये इस समय जिससे शान्तिलाभ हो, वही करो; ब्राह्मण लोग तुम्हारी रक्षा करें। हे तात! क्रोधरहित ब्राह्मण लोग जो आचरण करते हैं, उसीसे अल्पकालमें उपकार होता है; इस समय तुम पापसे परितापित हो रहे हो, इसलिये एक मात्र धर्म्म अवलम्बन करो।

जनमेजय बोले, हे शुनकनन्दन! मैं पापकी आंचसे सन्तापित होरहा हूं, यह ठीक है, परन्तु मैंने धर्म्मलोप नहीं किया है, कल्याणकी इच्छा करके आपकी आराधना कर रहा हूं; आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये।

शौनक बोले, हे राजन्! मैं दम्भ और अभिमानको त्यागके तुम्हारी प्रीतिकी अभिलाष करता हूं, तुम एकमात्र धर्म्मको स्मरण करके सब प्राणियोंके हितानुष्ठानमें अनुरक्त रहो। भय, कृपणता अथवा लोभके वशमें होकर मैं तुम्हें अनुशासन नहीं करता हूं, तुम ब्राह्मणोंके सहित मेरा सत्य वचन सुनो। मैं किसी विषयमें प्रार्थना नहीं करता! हा हा! धिक् धिक्! कहके जो सब जीवसमूह चिल्लाया करते हैं, उनके सम्मुखमें ही मैं तुम्हें उपदेश देता हूं, सुहृद लोग इसके लिये मुझे अधार्म्मिक कहेंगे और परित्याग करेंगे, परन्तु वे लोग मेरा वह सब वचन सुनकर अत्यन्त ही पीड़ित होंगे। कोई कोई महाबुद्धिमान मनुष्य यथार्थरूपसे मेरा अभिप्राय जान सकेंगे। हे भारत! ब्राह्मणोंके विषयमें मेरा जैसा अभिप्राय है, उसे तुम मालूम करो; वे लोग मेरे लिये जिस प्रकार कल्याण लाभ करें तुम वैसा ही करो; हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी बुराई नहीं करूंगा,— कहके प्रतिज्ञा करो।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! मैं आपके दोनों चरण छूके प्रतिज्ञा करता हूं, कि वचन, मन और कर्म्मसे फिर कभी ब्राह्मणोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करूंगा।

१५१ अध्याय समाप्त।

---

शौनक बोले, हे राजन्! इस समय तुम्हारा चित्त धर्म्म मार्गमें लौटा हुआ है, इस ही कारण मैं तुम्हें उपदेश दान करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, तुम श्रीमान् महाबलवान् और पराक्रमी होकर स्वयं धर्म्मदर्शी होरहे हो; राजा लोग पहिले कठोर स्वभाववाले होके पीछे जीवोंके विषयमें कृपा प्रकाशित किया करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। लोग कहा करते हैं, कि जो राजा निठुर होता है, वह सब लोगोंको दुःखित करता है, तुम भी पहिले वैसा ही होकर इस समय धर्म्मदर्शी हुए हो। हे जनमेजय! तुमने जो राज्य भोग भक्ष्य भोज्य परित्याग करके बहुत दिनोंसे तपस्या अवलम्बनकी है, वह अधर्म्म युक्त राजाओंके विषयमें अद्भुत कार्य्य है। समृद्धि युक्त दाता वा कृपण जो तपस्वी होता है, वह आश्चर्य नहीं है; क्योंकि वे लोग तपस्याकी अन्तिम सीमापर स्थिति नहीं करते। पूर्व्व पर विचार न करके कार्य्य करनेसे दोष घटनाकी सम्भावना रहती है और परीक्षा करके कार्य्य करनेपर उससे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। हे महाराज! यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, और सत्य वचन, इन पांच कर्म्मोंके तथा उत्तम रीतिसे तपस्या करना ही राजाओंके परम पवित्र धर्म्म हैं। हे जनमेजय! तुम पूर्ण रीतिसे उस ही तपस्याको अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ धर्म्म-लाभ करोगे। पवित्र देशमें गमन करना परम पवित्र

कार्य्य है, इसे ऋषियोंने स्मरण किया है। इस विषयमें ययाति राजाने जो गाथा कही थी, पण्डित लोग उसे ही उदाहरणमें कहा करते हैं। जो मनुष्य बहुत दिन जीनेकी इच्छा करे, वह यत्न पूर्व्वक यज्ञ करके, अन्तमें उसे छोड़के तपस्या करे। पण्डित लोग कुरुक्षेत्रको पवित्र तीर्थ कहा करते हैं, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती, सरस्वतीसे उसके सब तीर्थ और सरस्वतीसे पृथोदक तीर्थ पवित्र है, जिसमें नहाने और जिसके जल पीनेसे मनुष्य अकाल-मृत्युके लिये शोकित नहीं होते।

जो लोग बृहत् आयुकी इच्छा करें वे महासरोवर पुष्कर, प्रभास, उत्तर मानस और कालोदक आदि सब तीर्थोंमें गमन करें। सरस्वती और दृषद्वती नदियोंके सङ्गम और मानस सरोवरपर स्वाध्यायमें रत होकर भ्रमण करें। मनुने कहा है कि सब पवित्र धर्मोंमें त्याग धर्म्म पवित्र है और सन्न्यास-धर्म्म उससे अधिक पवित्र है। इस विषयमें सत्यवानने जो अपनी निज सम्मति प्रकाशित की है, पण्डित लोग उसे ही उदाहरण दिया करते हैं; राग द्वेषसे रहित बालक जैसे पापपुण्यमें आसक्त नहीं होता, तुम भी उसी प्रकार पाप पुण्यके अनुष्ठानसे निवृत्त होजाओ। इस पृथ्वीपर सुख दुःख कुछ भी नहीं है जीवोंके पत्र कलत्र आदिके संयोग वियोगके कारण सुख दुःख कल्पना मात्र है निःखल-कलुष संसर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके पुण्य और पाप निवृत्त होनेपर वे ब्रह्मस्वरूप लाभ करके जीवन परित्याग करके परम कल्याण भाजन होते हैं। इस समय राजाओंके कर्त्तव्य कार्य्योंके बीच जो उत्तम है; वह तुमसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! तुम धीरज और दानके सहारे स्वर्ग लोकमें अधिकार करो जिसमें धीरज और दान शक्ति है, वही धार्म्मिक है। महाराज! तुम ब्राह्मणोंके सुखके निमित्त पृथ्वी पालन करो पहिले तुमने जिस प्रकार ब्राह्मणोंकी निन्दा की थी, उस भांति इस समय उन्हें प्रसन्न करो। ब्राह्मणोंसे बारम्बार धिक्कृत और परित्यक्त होनेपर भी तुम आत्म उपमाके जरिये उन लोगोंका कभी बध ना करना, ऐसा ही निश्चय करके निज कार्य्योंमें नियुक्त रहके परम कल्याण साधन करो। कोई कोई राजा हिमके समान शीतल, अग्निकी तरह क्रूर और यमकी भांति गुणदोषोंके विचारक हुआ करते हैं, और कोई कोई शत्रु-तापन राजा हलकी तरह शत्रुओंके मूलको नष्ट करते तथा बज्रके अकस्मात गिरनेकी भांति दुष्टोंको शासन किया करते हैं। दुष्टोंके सङ्ग विशेषरूपसे प्रीति करनेसे वह स्थिरताके सहित वर्त्तमान नहीं रहती, इसलिये कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको खलोंके साथ कभी प्रीति करनी उचित नहीं है। एक बेर पापकर्म्म करके शोक करनेपर उससे छुटकारा होता है; दूसरी बार पापकर्म्म करके फिर ऐसा न करूंगा इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे उससे निस्तार हो सकता है; तीसरी बार पापकर्म्म करनेपर "धर्म्माचरण करूंगा" कहके दृढ़-प्रतिज्ञ होनेपर वह नष्ट होता है; बहुत सा पाप कर्म्म करनेपर पवित्र होकर तीर्थाटन करनेसे उससे मुक्ति लाभ हुआ करता है। ज्ञानकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको कल्याण-पथका पथिक होना उचित है। जो लोग सुगन्धित वस्तुकी सेवा करते हैं, उनका शरीर सुगन्धयुक्त होता है, और जो लोग दुर्गन्ध वस्तुकी सेवा किया करते हैं, उनका शरीर दुर्गन्धमय होजाता है, तपस्या करनेवाले पुरुष पापसे सदा ही मुक्त हुआ करते हैं। अभिशापयुक्त पुरुष सात वर्ष तक अग्निकी उपासना करनेसे मुक्ति लाभ करते हैं। भ्रूण-हत्या करनेवाले मनुष्य तीन वर्षतक अग्निकी उपासना करनेसे मुक्त हो सकते हैं; और भ्रूण-हत्या करनेवाला पुरुष एक सौ योजन दूरसे यदि महा सरोवर

पुष्कर प्रभास और उत्तर मानस-तीर्थोंमें गमन करे तो वह पापसे मुक्त होवे। प्राणी-घातक मनुष्य जितने प्राणियोंका बध करते हैं, उस जातिके उतने ही प्राणियोंके म्रियमाण होने-पर उन्हें बन्धनसे छुड़ा सकें तो उस पापसे छूट जाते हैं। मनुने कहा है, कि पापी पुरुष अघ-मर्षण मन्त्रको तीन बार जप करते हुए यदि जलमें निमग्न हो; तो वह अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेवाले पुरुषकी भांति पवित्र होके जन समाजमें आदरयुक्त हुआ करता है, और जीव मात्र ही जड़ तथा मूकको तरह उससे प्रसन्न होते हैं। हे राजन्! पहिले देवता और असुरोंने देव गुरु बृहस्पतिके समीप जाके विनीत वचनसे कहा था, हे महर्षि! आप धर्मके फलको जानते हैं और जिसके जरिये परलोकमें नरकमें गमन करना पड़ता है, वह पापका फल भी आपको अविदित नहीं है, जिसके पाप-पुण्य दोनों ही समान हैं, वह क्या पुण्यके जरिये पापका जय नहीं कर सकता? सो पुण्यका फल कैसा है, और धर्म्म-शील मनुष्य किस प्रकार पाप खण्डन करते हैं, वह आप हम लोगोंसे कहिये।

बृहस्पति बोले, पहिले अज्ञान पूर्व्वक पाप कर्म्म करके, फिर यदि ज्ञान पूर्व्वक पुण्यका अनुष्ठान करे, तो जिस प्रकार खारके संयोगसे मैले वस्त्रोंका मल दूर किया जाता है, वैसे ही पुण्य करनेवाला पुरुष धर्म्माचरणके सहारे पाप खण्डन करनेमें समर्थ होता है। पुरुष पाप कर्म्म करके, अभिमान न करे, श्रद्धायुक्त और असूयारहित होकर कल्याणकी इच्छा करे, जो पुरुष पापाचार करके कल्याणकी इच्छा करता है, वह साधुओंके निवृत छिद्रोंको छिपाया करता है। जैसे सूर्य्य भोरके समय उदय होकर समस्त अन्धकार नष्ट करता है। धर्म्म करने-वाला पुरुष उसी तरह सब पाप खण्डन किया करता है।

भीष्म बोले, शुनकपुत्र महर्षि इन्द्रोतने राजा जनमेजयसे ऐसा ही कहके विधिपूर्व्वक उन्हें अश्वमेध यज्ञमें प्रवर्त्तित किया। अनन्तर श्रत्रु-नाशन राजा जनमेजयने पापरहित और कल्या-णयुक्त होकर जैसे पूर्णचन्द्र आकाशमें उदय होता है, वैसे ही जलती अग्निके समान तेज-पुञ्ज युक्त शरीरसे निज नगरमें प्रवेश किया।

१५२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, कोई मनुष्य मरके फिर जीवित होता है, इसे आपने देखा वा सुना है?

भीष्म बोले, हे राजन्! पहिले समय नैमिषार-ण्यमें गिद्ध जम्बुक सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहास जिस प्रकार कहा गया था, उसे सुनो। किसी ब्राह्मणके अनेक दुःखसे प्राप्त हुआ विशालनेत्र-वाला एक मात्र पुत्र बालग्रहके जरिये बाल्य अवस्थामें ही मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ। बान्धवगण दुःखित और शोकित होकर रोदन करते हुए वंशके सर्व्वस्वभूत उस अप्राप्त अवस्था-वाले मृत बालकको उठाके श्मशानकी ओर प्रस्थान किया। वे लोग उस बालकको गोदमें लेके अत्यन्त दुःखित होकर उसके मधुर वच-नको बार बार स्मरण करके शोक प्रकाश करते हुए रोदन करने लगे, किसी प्रकार भी उस मृत बालकको पृथ्वीपर फेंकके घर जानेमें समर्थ न हुए। उस ही समय कोई गृद्ध उन लोगोंके रोदनको ध्वनिके अनुसार वहांपर आके बोला, तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको इस स्थानमें परित्याग करके गमन करो, देरी मत करो, इस स्थानमें सहस्रों पुरुष और स्त्रियां आया करती हैं, बान्धव लोग यथा सम-यमें उन्हें परित्याग कर जाते हैं। देखो सब जगत ही सुख और दुःखमें स्थिति करता है; पर्य्याय क्रमसे पुत्रकलत्र आदिके सङ्ग संयोग और वियोग हुआ करता है; जो लोग मृत पुरुषको

ग्रहण करके स्थित रहते अथवा उसका अनुगमन करते हैं; उन्हें भी निज परमायुके परिमाणके अनुसार यमलोकमें गमन करना पड़ता है; इसलिये इस गिद्ध गोमायुयुक्त अनेक प्रेतोंसे घिरा हुआ सब प्राणियोंको भयङ्कर घोर श्मशानमें रहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है; प्रिय हो, वा अप्रिय हो होवे कोई पुरुष पञ्चत्वको प्राप्त होकर फिर जीवित नहीं होता, प्राणियोंकी ऐसीही गति है। मर्त्तलोकमें जिसने जन्म लिया है, उसे अवश्य मरना होगा, इसलिये इस कालकृत नियमके रहते कौन पुरुष मरे हुए लोगोंको जीवित कर सकेगा। कार्य्यकी समाप्तिके कारण सब लोगोंके विरत होनेपर सूर्य्य अस्ताचलपर गमन कर रहे हैं; इसलिये तुम लोग पुत्रस्नेह त्यागके निज निवास स्थानपर गमन करो। अनन्तर बान्धव लोग गिद्धका वचन सुनके उस समय मानो प्राकर्षित होकर पुत्रको पृथ्वीपर छोड़के उसको ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए और वे लोग बालकको मरा हुआ निश्चय करके उसे देखनेसे निराश और हताश होकर रोदन करने लगे। बान्धव लोग विशेष रीतिसे निश्चय करके मार्गके बीच आरहे हैं उस ही समय कौआके समान काले रङ्गका एक शियार बिलसे निकलके उन घर आनेवाले पुरुषोंसे बोला, रे दयाहीन मूढ़ मनुष्यो! यह देखो सूर्य्य अभीतक अस्त नहीं हुआ, इसलिये अब भी तुम लोग स्नेह करो, भय मत करो मुहूर्त्तका अत्यन्त चमत्कार प्रभाव है, मुहूर्त्तके प्रभावसे इसका फिर जीवित होना असम्भव नहीं है। तुम लोग अपत्यस्नेहहीन और निर्दयी होकर श्मशानमें भूमिपर दाभ बिछाके पुत्रको छोड़के किस लिये गमन करते हो? जिसका वचन कानमें प्रविष्ट होनेसे ही तुम लोग प्रसन्न होते थे, उस मधुर वचन कहनेवाले शिशु सन्तानके ऊपर क्या तुम्हारा स्नेह नहीं है? पशु पक्षी आदि अपनी सन्तानोंको प्रतिपालन करके कोई फल नहीं पाते; तौभी उनका जैसा अपत्यस्नेह है, उसे तुम लोग विचारो, कर्म्म सन्न्यासी मुनियोंके यज्ञ कार्य्यकी भांति पशुपक्षी कीट आदि स्नेहवद्ध प्राणियोंका पुत्र आदिसे परलोक फलकी आशा नहीं है, उन लोगोंको इस लोक और परलोकमें पुत्रादिकोंसे कुछ उपकार प्राप्त नहीं होता; तौभी वे कैसे यत्नके सहित अपत्योंको धारण किया करते हैं। पशुपक्षी आदि प्राणियोंको सन्तान बड़ी होकर कभी पितामाताको प्रतिपालन नहीं करती, तौभी प्रिय पुत्रोंको न देखनेपर क्या उनके मनमें शोक उत्पन्न नहीं होता? मनुष्योंको अपत्य स्नेहके कारण पुत्र आदिके विरहसे शोक उत्पन्न हुआ करता है; इससे तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको छोड़के कहां जाओगे? तुम लोग बहुत समयतक आंसू बहाते हुए स्नेहयुक्त नेत्रसे इसे देखो; ऐसे प्रियपात्रको परित्याग करना किसी प्रकार भी योग्य नहीं है। दुर्ब्बल, आमययुक्त और श्मशानमें स्थित पुरुषके निकट बान्धवोंके स्थित होनेपर दूसरे लोग वहां निवास करनेमें समर्थ नहीं होते। जीवन सबको ही प्यारा है सभी स्नेहलाभ किया करते हैं, साधु लोग तिर्य्यग् योनिवालोंमें जैसा स्नेह करते हैं, उसे देखिये नवीन विवाहके समय मालासे विभूषितकी तरह इस कमल नेत्रवाले बालकको छोड़के तुम लोग किस कारण चले जाते हो? बान्धव लोग उस समय शियारका वचन सुनके दीनतापूर्व्वक विलाप करते हुए सब कोई मुर्देके समेत घर जानेसे निवृत्त हुए।

गिद्ध बोला, हाय! क्या आश्चर्य है! हे पुरुषार्थहीन मनुष्यो! तुम लोग इस अल्पबुद्धि नृशंस क्षुद्र सियारका वचन सुनके क्यों निवृत्त होते हो? पञ्चभूतोंसे परित्यक्त और काष्ठत्वको प्राप्त हुए शून्य और चेष्टाहीन मुर्देके शरीरके लिये क्यों शोक प्रकाश करते हो? तुम लोग

अपने वास्ते क्यों नहीं शोक प्रकाश करते? भीत तपस्याचरण करो, जिसके जरिये पापोंसे मुक्त होगी; तपस्याके जरिये सब प्राप्त होसकता है विलाप करनेसे क्या होगा? अनिष्ट और अदृष्ट मृत्युके सहित उत्पन्न होते हैं; उस ही अदृष्टका अनुगामी होकर यह बालक तुम लोगोंको अनन्त शोकसमुद्रमें डालकर गमन करता है। गऊ, धन, सुवर्ण, मणिरत्न और पुत्र तपस्याके फल प्रभावसे प्राप्त होते हैं। और योगसे तपस्या प्राप्त होती है। जो प्राणी जैसा कर्म्म करता है वह वैसा ही सुख दुःख पाता है; जीव सुख और दुःखको ग्रहण करके जन्म लेता है। पुत्र पिताके कर्म्मसे अथवा पिता पुत्रके कर्म्मसे सुकृत वा दुष्कृतमें बद्धहोकर इस मार्गसे गमन नहीं करता। जिस प्रकार अधर्म्मसे निवृत्ति होसके वैसे ही यत्नपूर्व्वक धर्म्माचरण करो, देवता और ब्राह्मणोंको समयके अनुसार सेवा करो। शोक और दीनता परित्याग करके पुत्रस्नेहसे निवृत्त होजाओ; इसे सूने स्थानमें छोड़के शीघ्र गृहको और गमन करो, जो पुरुष शुभ वा अशुभ कर्म्म करता है, वही उसका फल भोग किया करता है; उसमें बान्धवोंका क्या सम्बन्ध है? बान्धव लोग प्रियपुत्र आदिको परित्याग करके इस स्थानमें निवास नहीं करते; वे लोग स्नेह त्यागके आंसू भरे नेत्रसे युक्त होकर घर चले जाते हैं। बुद्धिमान हो वा मूर्ख हो; धनवान हो वा निर्द्धन ही होवे; सबको ही शुभाशुभसे युक्त होकर कालके वशमें होना पड़ता है शोक करके क्या करोगे? मरे हुएके वास्ते किस लिये शोक करते हो? धर्म्मानुसार समदर्शी काल ही सबका नियन्ता है बालक, युवा, वृद्ध और गर्भस्थ सभी मृत्युको वशीभूत होते हैं, जगत्की ऐसी ही गति है।

सियार बोला, कैसा आश्चर्य है, हे मनुष्यो! तुम लोग अपत्यस्नेहसे युक्त होकर अत्यन्त शोक प्रकाश करते हो, अल्पबुद्धि गिद्ध इस समय तुम लोगोंके स्नेहबन्धनको छेदन करता है, क्यों कि इसके समभावसे भली भांति प्रयुक्त प्रत्ययान्वित वचनके जरिये तुम लोग दुःसह स्नेह त्यागके निज स्थानपर जाते हो। हाय! बछड़ाहीन गऊकी तरह पुत्र वियोगके कारण श्मशानमें मुर्देकी सेवा करते हुए रोदन करते करते तुम लोगोंको अत्यन्त दुःख होता है। पृथ्वीमण्डलमें मनुष्योंको जैसा शोक हुआ करता है, उसे आज मैंने जाना है। तुम लोगोंको स्नेह और विलाप देखके मेरा भी आंसू गिरता है। सदा यत्न करनेसे दैवके जरिये वह सिद्ध होता है, दैव और पुरुषका प्रयत्न समयके अनुसार सिद्ध होता है। सदा दुःख न करना ही उचित है; क्यों कि शोकसे सुख नहीं मिलता, यत्न करनेसे प्रयोजनकी सिद्धि हुआ करती है; इसलिये तुम लोग दयारहित होके क्यों जाते हो? पितरोंके वंशको रक्षा करो; आत्म-मांससे उत्पन्न हुई अर्द्ध शरीर स्वरूप सन्तानको वनमें परित्याग करके कहां जाते हो? सूर्यके अस्त होने तथा सन्ध्याकाल उपस्थित होनेपर तुम लोग इस बालकको घर ले जाना, अथवा इसको लेकर इस ही स्थानमें निवास करना।

गिद्ध बोला, हे मनुष्य लोगो! इस समय मुझे उत्पन्न हुए सहस्र वर्षसे भी अधिक हुआ होगा; परन्तु पुरुष, स्त्री और नपुंसकोंमेंसे कोई मरके फिर जीवित हुआ है, इसे मैंने नहीं देखा; कोई कोई गर्भमें ही मरके पृथ्वीपर गिरते हैं, कोई जन्मते ही मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ करता है; कोई बाल्यकालमें पांवसे चलनेके समय और कोई युवा अवस्थामें पञ्चत्वको प्राप्त होता है। इस लोकमें पशु पक्षी आदि जङ्गम मात्रका ही अदृष्ट अनित्य है; स्थावर जङ्गम सभी परमायुके अधीन हैं। प्यारी स्त्रीके विरह और पुत्र शोकसे जलते हुए पुरुष प्रति दिन इस स्थानसे घरको चले जाते हैं। मनुष्य

लोग इस लोकमें सहस्रों अप्रिय और सैकड़ों प्रिय वस्तुओंको परित्याग करके अत्यन्त दुःखित होकर परलोकमें गमन करते हैं; इसलिये तुम लोग इस शोचनीय अवस्थायुक्त जीवन हीन और तेज रहित बालकको परित्याग करो; जीवन दूसरे शरीरमें सन्सक्त होनेसे इस निर्जीव बालकके काष्ठत्व प्राप्त मृत शरीरको परित्याग करके किस लिये तुम लोग गमन करनेमें विरत हो रहे हो, इस समय इसके ऊपर स्नेह और इसे घेरकर स्थिति करनेसे कोई फल नहीं है। इस समय इस बालकके देखने और सुननेकी इन्द्रियसे कोई कार्य्य नहीं होता है; इससे तुम लोग इसे त्यागके शीघ्र ही निज गृहकी ओर गमन करो। मेरा वचन इस समय निठुरवत् मालूम होनेपर भी अन्तमें यह युक्ति युक्त और मोक्ष धर्मसे पूरित बोध होगा, इसलिये कहता हूं, तुम लोग विलम्ब न करके निज निज स्थानपर चले जाओ, बुद्धि और विज्ञानवान् चैतन्य-प्रद गिद्धका वचन सुनकर मनुष्य लोग निवृत्त हुए। मृत पुरुषको बान्धवोंसे घिरा हुआ देखने और स्मरण करनेसे शोक दूना हो जाता है, बान्धव लोग यह वचन सुनतेही एक-बारही निवृत्त हुए। बान्धवोंके निवृत्त होनेपर सियारने जल्दीसे दौड़कर वहां आके सोये हुए बालकको देखकर कहा,—

सियार बोला, हे मनुष्यो! आप लोग गिद्धका वचन सुनके इस सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित पितरोंको पिण्डदेनेवाले पुत्रको क्यों परित्याग करते हैं; इस मेरे पुत्रके त्यागनेसे स्नेह, विलाप और रोदनका अन्त न होगा, बल्कि अवश्य ही पछतावा करना पड़ेगा। मैंने सुना है, सत्य पराक्रमी रामचन्द्रने शम्बुक नाम शूद्र तपस्वीको मारा, उसके धर्म्मबलसे कोई ब्राह्मणका बालक फिर जीवित हुआ था; और महर्षि श्वेतका बालक पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ था, धर्म्मनिष्ट श्वेतने उस प्रेत पुत्रको फिर जीवित किया था। उसी तरह कोई सिद्ध मुनि वा देवता तुम लोगोंका करुणायुक्त रोदन सुनके दया कर सकता है। सियारका ऐसा वचन सुन शोकसे आर्त्त बान्धव लोग घर जानेसे निवृत्त हुए और मृत बालकका सिर गोदमें रखके अत्यन्त विलापके सहित रोदन करने लगे। गिद्धने उन लोगोंके रोदनकी ध्वनि सुन कर वहां आके वक्ष्यमाण वचन कहना आरम्भ किया।

गिद्ध बोला, यह बालक धर्म्मराजके नियोग निबन्धनसे दीर्घ निद्राको प्राप्त हुआ है, इस लिये इसके शरीर पर हाथ फेरने और आंसू बहानेसे क्या होगा? कितने ही तपस्या करने-वाले धनवान और बुद्धिमान मनुष्य इस प्रेत स्थानपर मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ करते हैं। बान्धव लोग इस स्थानपर सहस्रों बालक और वृद्धोंको परित्याग करते हुए रात दिन दुःखित भावसे निवास करते हैं, इसलिये शोक भार धारण करनेसे कुछ फल नहीं है, इस समय इसका फिर जीवित होना किसी प्रकार भी विश्वासके योग्य नहीं है। यह बालक सियारके वचनसे फिर जीवित नहीं होगा, जो पुरुष कालके वशमें होकर शरीर छोड़ता है, फिर वह जीवित नहीं होता। सियार यदि अपने समान सैकड़ों शरीर प्रदान करे, तोभी एक सौ वर्षमें भी इस बालकको जीवित न कर सकेगा, तब यदि रुद्रदेव, स्वामिकार्त्तिक, ब्रह्मा अथवा विष्णु इसे बरदान करें, तभी यह बालक जीवित हो सकेगा, नहीं तो तुम लोगोंके आंसू बहाने, आश्वासन और बहुत समय तक रोदन करनेसे यह बालक फिर जीवित न होगा। यह सियार और तुम लोग कई एक बान्धव तथा हम सब कोई धर्म्माधर्म्म ग्रहण करके इस मार्गमें ही निवास करेंगे; इसलिये बुद्धिमान पुरुष अप्रिय, पुरुषता, पर-द्रोह, परनारीसे प्रणयकी अभिलाष, अधर्म्म

और मिथ्या व्यवहारको एकबारही परित्याग करें। तुम लोग सत्य, धर्म शुभ, न्याय, प्राणियोंके ऊपर महती दया, शठता हीनता और सरलताको यत्न पूर्व्वक प्रार्थना करें। जो लोग माता, पिता, बान्धव और सुहृदोंको जीवित नहीं देखते उन लोगोंसे धर्म-विपर्य्यय हुआ करता है। जो नेत्रसे देखने और अङ्ग आदि चलानेमें समर्थ नहीं है, उसके शरीरान्त होने पर तुम लोग अब रोदन करके क्या करोगे? अपत्य-स्नेह-निबन्धनसे जलते हुए वे सब शोकयुक्त बान्धव लोग गिद्धका ऐसा वचन सुनकर पुत्रको भूमिपर परित्याग करके घर जानेमें प्रवृत्त हुए।

सियार बोला, प्राणियोंके विनाश साधनका स्थान यह मर्त्यलोक अत्यन्त दारुण स्थल है, इस स्थलमें प्रियवस्तुका वियोग, जीवनकालकी अत्यन्त अल्पता, अनेक प्रकारकी अलीक, अत्यन्त व्यवहार, अपवाद और अप्रिय वचन आदि दुःख-शोकको बढ़ानेवाले समस्त भाव अवलोकन करके मुहूर्त्त कालके लिये भी इस मर्त्यलोकमें निवास करनेकी मेरी रुचि नहीं होती धिक् धिक्! कैसा आश्चर्य है। हे मनुष्यो! तुम लोग पुत्र शोकसे जलकर बुद्धिहीन लोगोंकी तरह गिद्धके वचनसे निवृत्त हुए, पापी-चञ्चल-बुद्धिवाले गिद्धका वचन सुन स्नेहहीन होकर अपत्य-स्नेह त्यागके इस समय किस प्रकार घर जानेमें प्रवृत्त हुए हो। इस सुख दुःखसे पूरित लोकके बीच सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख होता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है हे मूढ़ लोगो! वंशके शोभाको खान इस रूपवान शिशु सन्तानको पृथ्वीपर त्यागके तुम लोग कहां जाओगे? इस उत्तम सुन्दरतायुक्त बालकको मैं मनही मन जीवितकी तरह देखता हूं, इसमें सन्देह नहीं है। हे मनुष्यो! इसका मरनाही अनुचित है, तुम लोग अनायास ही इसे पाओगे। यदि छोड़के जाओगे, तो पुत्र शोकसे सन्तापित होकर आज ही तुम लोगोंका नाश होगा। रात्रिमें इस स्थानपर निवास करनेसे दुःखकी सम्भावना जानके स्वयं सुखमें रहनेकी इच्छासे अल्पबुद्धि लोगोंकी भांति इसे त्यागके कहां जाओगे?

भीष्म बोले, धर्मराज! श्मशानवासी सियारने स्वार्थ-सिद्धिके लिये उस समय अमृतके समान धर्मयुक्त मिथ्या प्रिय वचनके जरिये उन सब बान्धवोंकी गति निवृत्त करके उन्हें मध्यवर्त्ती किया; तब वे लोग वहां पर स्थित रहे।

गिद्ध बोला, यह यक्ष राक्षस-सेवित, प्रेतोंसे परिपूरित, पेचकनादसे अनुनादित, काले बादलके समान घोर दारुण वन अति भयङ्कर है; सूर्य्य अस्त होनेके पहिले जबतक दिशा निर्म्मल रहती हैं, उतने ही समयके बीच तुम लोग इस वनस्थलमें मुर्देका शरीर परित्याग करके समस्त प्रेत कर्म्म समाप्त करो। बाज-पक्षी कर्कश बोली बोल रहे हैं; सियारोंने दारुणरूपसे चिल्लाना आरम्भ किया है, शेर गर्ज रहे हैं। और सूर्य्य अस्ताचल चूड़ावलम्बी हो रहे हैं। श्मशानमें स्थित वृक्ष समूह काले रङ्गवाली चिताके धूएंसे रञ्जित होते हैं, श्मशानवासी देवता लोग निराहार रहनेसे गर्ज्ज रहे हैं। इस दारुण श्मशान स्थलके बीच विकृतरूपवाले क्रव्यादगण तुमलोगोंको वशीभूत करेंगे; वनके बीच आज तुम लोगोंको अवश्य ही भय होगा; इसलिये इस काष्ठके समान मृत शरीरको परित्याग करो; सियारका वचन मत मानो, तुम लोग यदि ज्ञान भ्रष्ट होकर जम्बुकके निष्फल मिथ्या वचनको सुनोगे, तो सब कोई नष्ट होगे।

सियार बोला, हे मनुष्यो! जब तक सूर्य्य अस्ताचलपर गमन नहीं करते हैं, उतने समयतक तुम लोग अपत्य-स्नेह निबन्धनसे दुःख न करके इस स्थानमें निवास करो; भय

करना उचित नहीं है। तुम लोग विश्वासी होकर रोदन करते हुए बहुत समय तक सन्तानको और स्नेहयुक्त नेत्रसे देखो; इस दारुण वनके बीच तुम लोगोंको किसी भयकी सम्भावना नहीं है। पितरोंके मरनेकी जगह यह वनस्थल अत्यन्त मनोहर है; इसलिये जब तक सूर्य्य स्थित है, तब तक तुम लोग निवास करो; मांसभक्षी गिद्धके वचन सुननेसे कोई फल नहीं है। तुम लोग यदि मोहित होकर गिद्धके निठुर वचनको मानोगे, तो तुम लोगोंका पुत्र फिर जीवित न होगा।

भीष्म बोले, राजन्! गिद्ध बोला, सूर्य्य अस्त हुआ, सियारने कहा; नहीं हुआ; इसी तरह वे निज कार्य्य साधनमें यत्नवान और भूख प्याससे कातर होकर शास्त्रको अवलम्बन करके मृत बालकके बान्धवोंको विड़म्बित करने लगे। वे लोग उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियारके अमृत समान वचनसे कभी स्थित और कभी घरकी ओर गमन करनेमें उद्यत हुए। अन्तमें वे लोग शोक युक्त होकर रोदन करते हुए उन कार्य्यदक्ष गिद्ध और सियारको वचन निपुणतासे प्रतारित होकर भी उस समय वहां निवास करनेमें प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार विवाद करनेवाले उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियार तथा वहांपर स्थित बान्धवोंके समीप भगवान् भवानीपति भगवतीके भजनेसे करुणा भरे नेत्रसे उपस्थित हुए! और बोले, हे मनुष्यो! मैं वरदाता शङ्कर हूं। दुःखित बान्धवोंने प्रणाम करके खड़े होकर कहा; हे भगवन्! हम सब कोई एक मात्र पुत्रके जीवनके लिये अत्यन्त प्रार्थना करते हैं; इसलिये आप कृपा करके हमारे पुत्रको जीवन दान करके जीवित करिये। सब प्राणियोंके हितैषी भगवान पिनाकीने मनुष्योंका ऐसा वचन सुनके जलसे युक्त हाथके जरिये बालकको एक सौ वर्षकी आयु और गिद्ध सियारको क्षुधाशान्तिका वरदान किया।

अनन्तर उन लोगोंने कल्याण पूरित हर्षयुक्त, कृतकृत्य और अत्यन्त आनन्दित होकर देवोंके देवको प्रणाम करके प्रस्थान किया, अनिर्व्वेद और दृढ़-निश्चयके जरिये महादेवकी कृपासे शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। दैवयोग और बान्धवोंका दृढ़ निश्चय देखो! वे लोग दुःखित होकर रोदन कर रहे थे, भगवान्ने उनको आंसू पोंछो! देखिये, थोड़ेही समयके बीच निश्चय खोजके सहारे महादेवकी कृपासे दुःखित मनुष्य सुखी हुए। हे भारत! वे लोग महादेवकी कृपासे पुत्रके फिर जीवित होने पर विस्मययुक्त और अत्यन्त हर्षित हुए थे। हेराजन्! अनन्तर उन लोगोंने शिशुसे प्राप्त हुए शोकको त्यागके शीघ्रही पुत्रके सहित हर्षपूर्व्वक नगरमें प्रवेश किया था। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच सबके ही विषयमें इस प्रकारका ज्ञान निदर्शन रूपसे दिखाया गया है। मनुष्य इस धर्म्मार्थ-मोक्ष संयुक्त पवित्र इतिहासको सुननेसे इस लोक और परलोकमें सदा आनन्दित हुआ करते हैं

१५३ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! असार, अल्पबल, और क्षुद्रजीवी मनुष्य मोहके वशमें होकर अपनी बड़ाईसे युक्त असह्य वचनके जरिये सदा निकटवर्त्ती उपकार और अपकारके सहारे शत्रुनिग्रहमें समर्थ, सदा उद्योगी बलवान पुरुषसे बैर करे तो यदि वह क्रुद्ध होकर बैर समाप्त करनेकी अभिलाषासे आगमन करे, तो थोड़े बलवाला पुरुष किस प्रकार आत्मबल अवलम्बन करके निवास करेगा?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पुराने लोग इस विषयमें शाल्मलि पवनके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हिमालय पर्व्वत पर अनेक वर्षोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ;

शाखा और स्कन्ध पत्तायुक्त एक बहुत बड़ा शाल्मलिका वृक्ष था। वहां मतवाले हाथियोंके यूथ और दूसरे अनेक भांतिके सब पशु ग्रीष्म-कालमें गर्म्मीसे आर्त्त होने तथा थकने पर विश्राम करते थे। उस वृक्षके चार सौ हाथके परिमाण बड़े, घनी छायासे परिपूरित और फल फूलसे सुशोभित रहनेसे शुकसारिका समूह सदा उसमें निवास करते थे। हे भारत! किसी समय महर्षि नारद उस शाल्मलि वृक्षके स्कन्ध और बहुतसी शाखा देखकर उसके निकट आके बोले, हे तरुवर! तुम क्या ही मनोहर हो तुम्हें देखके मैं अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूं मनोहर मृगपक्षी और हाथियोंके यूथ हर्षित होकर सदा तुम्हारे आसरेमें निवास करते हैं। हे महाशाख! तुम्हारे बड़े स्कन्ध और सब शाखोंको कभी वायुके जरिये टूटी हुई नहीं देखता हूं। इस वनके बीच जब पवन सदा तुम्हारी रक्षा करता है, तब बोध होता है, वह तुम्हारा मित्र है, अथवा तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो रहा है। वेगशाली पवित्र गन्धयुक्त भगवान् पवन बहते हुए विविध वृक्ष समूह और पर्व्वतोंकी शिखर समूहको स्वस्थानसे विचलित करते, और नदी समस्त तालावों, दूसरकी तो कुछ बात ही नहीं है रसातलको भी सुखाया करते हैं, इसलिये मित्रताके कारण पवन तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है, इसीसे तुम अनेक शाखायुक्त होके फूल पत्तोंसे सोभित हो रहे हो, हे तरुवर! ये सब पक्षी, समूह तुम्हें अवलम्बन करके प्रसन्न मनसे विहार कर रहे हैं,—इसीसे यह वन रमणीय रूपसे शोभित होता है। वसन्तकालमें मनोहर शब्द करनेवाले इन पक्षियोंकी मीठी बोली कानोंमें अमृतकी वर्षा करती हैं। गर्म्मीसे विकल हाथियोंके समूह निज यूथके सहित गर्ज्जते हुए तुम्हारे आसरे सुखभोग करते हैं। इसी प्रकार तुम दूसरे सब मृग जाति और समस्त जीवोंके आश्रयके कारण होके पर्व्वतकी भांति शोभित होते हो। तपस्यासे सिद्ध ब्राह्मण, तपस्वी और सन्न्यासियोंके समूहसे परिपूरित होनेसे तुम्हारा स्थान स्वर्गके समान निश्चित तथा मालूम होता है।

१५४ अध्याय समाप्त।

---

नारद बोले, हे वृक्ष! सर्व्वत्र गमन करनेवाला भयङ्कर वायु बन्धुता वा मित्रताके कारण सदा तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है; तुम उसके समीप मैं तुम्हारा हो हूं—ऐसा वचन अङ्गीकार करके परम-आत्मीय हुए हो, इस ही निमित्त वह सदा तुम्हारी रक्षा करता है। मैं भूलोकमें ऐसे किसी वृक्ष पहाड़ और स्थानको नहीं देखता हूं, जो वायुके बलसे न टूटता हो; इसलिये मुझे मालूम होता है, तुम किसी कारणसे शाखा पल्लवके सहित वायुसे रक्षित होनेसे संशय रहित होके निवास करते हो।

शाल्मलिने कहा, हे ब्रह्मन्! वायु मेरा सखा मित्र, बन्धु वा विधाता नहीं है, जो उस कारणसे वह मेरी रक्षा करता है। मेरा तेज बल वायुसे भी प्रबल है, पवन मेरे बलके अठारहवें भागके एक भागके समान भी नहीं है। वह जब मेरे समीप आता है, तब उस समय मैं बलपूर्व्वक उसे स्तम्भित कर रखता हूं। वायु पहाड़ वृक्ष आदि जिस किसी वस्तुको क्यों न तोड़े, वह समीप आनेसे मुझसे पराजित होता है, हे देवर्षि! इसलिये वायुके क्रुद्ध होनेपर भी मैं उससे भय नहीं करता।

नारद बोले, हे शाल्मलि! तुम्हारी विपरीत बुद्धि हुई है, इसमें सन्देह नहीं है। वायुके समान बलवान कोई भी नहीं है, और कभी किसी स्थानमें कोई हुआ भी नहीं था। तुम्हारी बात तो दूर रहे, इन्द्र, यम, कुबेर और

जलके स्वामी वरुण भी वायुके समान नहीं है। इस जगत्‌में जो सब जीव जीवन धारण करते हैं, भगवान पवनही उसके कारण हैं, वेही सबके प्राणदाता और चैतन्य करनेवाले हैं इसी वायुके प्रशान्त भावसे रहनेसे सब प्राणी जीवित रहते और इसीके अशान्त होनेपर सब जीव नष्ट होते हैं; इसलिये तुमने सब बलवानोंमें अग्रगण्यसे पूजनीय वायुका जो असम्मान किया है, उसका कारण तुम्हारी बुद्धि लाघवके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। तुम अत्यन्त असार और दुर्बुद्धि हो, इस ही कारण केवल बड़ी बात बोलते और क्रोधमें भरकर मिथ्या वचन कहते हो। तुम्हारा ऐसा वचन सुनके मेरा क्रोध उत्पन्न हुआ है, मैं स्वयं वायुके समीप जाके तुम्हारा यह सब दुष्ट वचन कहूंगा। रे नीच बुद्धि! चन्दन, स्यन्दन, शाल, सरल, देवदारु, वेतस और बकुल आदि दूसरे जो सब सारवान तथा बलवान् वृक्ष हैं, वे कभी वायुका इस प्रकार तिरस्कार नहीं करते, वे सब वायुके और अपने बलाबलको जानते हैं, इस कारण वे सब वृक्ष वायुको प्रणाम किया करते हैं। तुमने मोहके वशमें होकर वायुके अनन्त बलको नहीं जाना है, इस ही से ऐसा कहते हो; इसलिये मैं तुम्हारी बात कहनेके लिये वायुके समीप जाता हूं।

१५५ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! ब्रह्मज्ञानी नारद शाल्मलिसे ऐसा वचन कहके पवनके समीप जाके उसकी सब बात कहने लगे। नारद बोले, हे वायु! हिमालय पर्व्वतपर उत्पन्न हुआ शाखा पल्लवसे युक्त वृहत् मूलवाला कोई शाल्मलि वृक्ष तुम्हारी अवज्ञा करता है; तुम्हारे समीप वह सब वचन कहना मुझे उचित नहीं है; मैं तुम्हें सब प्राणियोंमें अग्रगण्य, वरिष्ठ और गरिष्ठ समझता हूं, तुम क्रुद्ध होनेपर कालके समान हुआ करते हो।

भीष्म बोले, वायु नारदका यह वचन सुनके उस शाल्मलि वृक्षके समीप जाके अतिक्रुद्ध होकर कहने लगे। वायु बोले, हे शाल्मलि! तुमने नारदके निकट मेरी निन्दा की है; इस लिये मैं बलपूर्व्वक तुम्हें अपना प्रभाव दिखाऊंगा। मैं तुम्हें जानता हूं और तुम भी मुझे जानते हो; पितामहने प्रजाकी सृष्टि करनेके समय तुम्हारे मूलमें विश्राम किया था, अर्थात् उन्होंने विश्राम किया था,—इसीसे मैं तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करता था। रे नीचबुद्धि अधम वृक्ष! उस ही कारण मैं तेरी रक्षा करता था; तू निज बलके प्रभावसे रक्षित नहीं हुआ है। तू जब सामान्य लोगोंकी भांति मेरी अवज्ञा करता है, तब जिससे फिर मेरी अवज्ञा न करे, उसी प्रकार अपना प्रभाव दिखाऊंगा।

भीष्म बोले, शाल्मलि वायुका ऐसा वचन सुनकर हंसके बोला, हे पवन! तुम मेरे ऊपर क्रुद्ध होके क्या पराक्रम प्रकाशित करोगे? अपनेको ही अपना बल दिखाओ। मेरे ऊपर क्रोध मत करो, मुझपर क्रोध करके तुम क्या करोगे? हे वायु! तुम दूसरका शासन करनेमें समर्थ हो तौभी मैं तुमसे भय नहीं करता, मैं तुमसे अधिक बलवान हूं, इसलिये तुमसे मुझे भय करनेका क्या प्रयोजन है? जगत्‌में जो लोग बुद्धिबलसे बली हैं, वेही बलवान हैं; सामर्थ्य मात्रसे बलवान् पुरुषोंको बलवान कहके नहीं गिना जाता। वायु शाल्मलिकी ऐसी बात सुनके कलह तुम्हें पराक्रम दिखाऊंगा ऐसा कहके चले गये।

अनन्तर रात्रि उपस्थित होनेपर शाल्मलिने मनही मन पवनके पराक्रमको विचारके और अपनेको उसके असदृश जानके सोचा, कि मैंने नारदके निकट वायुके विषयमें जो कहा वह अमूलक है; पवन प्रबल बलशाली है,—नार-

इने जैसा कहा है, वायु वैसाही बलवान् है। उसके समीप मैं अत्यन्त असमर्थ हूं; उसकी बात तो दूर है, मैं दूसरे वृक्षोंसे भी निर्ब्बल हूं, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु कोई वनस्पति मेरे समान बुद्धिमान नहीं है; इससे मैं बुद्धिबलके अवलम्बनसे पवनके भयसे अपना परित्याग करूंगा। वनमें स्थित वृक्षसमूह यदि मेरी तरह बुद्धि अवलम्बन करके निवास करें, तो वे सदा क्रोधपूरित वायुसे निःसन्देह न उखाड़े जावें। क्रुद्धवायु उन्हें जिस प्रकार सञ्चालित करता है, उसे मैं जैसा जानता हूं, वे लोग बालक होनेसे वैसा नहीं जानते।

१५६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, अनन्तर शाल्मलिने क्षुब्ध होकर आपही अपनी सब शाखा, डाली और स्कन्धोंको छेदन किया। वह शाखा, पत्र पुष्प आदि परित्याग करके भोरके समय वायुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा। अनन्तर क्रोधयुक्त वायु बड़े बड़े वृक्षोंको गिराकर शाल्मलिके निकट आया; आके उसे शाखा, पत्र पुष्पोंसे रहित देखके अत्यन्त हर्षित और विस्मययुक्त होकर कहा, हे शाल्मलि! तुम आप ही कष्ट करके सब डालियोंको छेदन करके जैसे हुए हो, मैं भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें वैसाही करता; तुम अपनी बुद्धिहीनताके कारण मेरे पराक्रमके वशमें होकर फल पत्ता डाली और अङ्कुरसे रहित हुए।

भीष्म बोले, शाल्मलि उस समय वायुका ऐसा वचन सुनके लज्जित हुआ और देवऋषि नारदने पहिले जो कहा था, उसे स्मरण करके अनुताप करने लगा। हे धर्म्मराज! इसी प्रकार जो अल्पबुद्धि पुरुष स्वयं निर्ब्बल होके बलवानके सङ्ग बैर करता है, वह शाल्मलिकी भांति दुःखित पुरुष होता है; इसलिये निर्बल प्रबलोंके साथ बैर न करें; यदि करें तो शाल्मलीकी तरह शोचनीय होंगे। समान बलवाले पुरुषभी अपकारीके समीपमें सहसा पराक्रम प्रकाशित नहीं करते, वे लोग धीरे धीरे शत्रुके निकट पराक्रम दिखाया करते हैं। नीचबुद्धि पुरुषका बुद्धिमानके सङ्ग शत्रुताचरण अत्यन्त अनुचित है, तृण समूहमें पड़ी हुई अग्निकी तरह बुद्धिमानकी बुद्धि शत्रुओंके बीच अनायास ही प्रवेश करती है। हे राजेन्द्र! जगतमें पुरुषके बुद्धि और बलके समान दूसरा कुछ भी नहीं है; इसलिये बालक जड़, अन्धे, बधिर और अधिक बलवाले पुरुषके विषयमें क्षमा करे। हे शत्रुदमन! अधिक बलवाले पुरुषको जो क्षमा करना होता है, वह तुममें देखा गया है। दुर्य्योधनकी ग्यारह अक्षौहिणी और तुम्हारी सात अक्षौहिणी सेना महाबली अर्जुनके बलके समान नहीं। यशस्वी इन्द्रपुत्र धनञ्जयने जङ्गलमें घूमके भी अन्तमें युद्धके बीच शत्रुओंको मारा और पराजित किया। महाराज! यही मैंने तुमसे राजधर्म्म और आपद्धर्म्म विस्तारके सहित कहा है, अब कहो, क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१५७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पापका निवासस्थान क्या है, और जिससे पाप प्रवर्त्तित होता है, मैं उसे ही यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जिससे पाप उत्पन्न होता है, उसे सुनो। एकमात्र लोभ केवल पुण्यफल ग्रास किया करता है; इसलिये लोभसे ही पाप प्रकट होता है तथा पापके सहित अत्यन्त दुःख उत्पन्न हुआ करता है; लोग लोभके कारण पापाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, इससे लोभ ही पापका मूल कारण है।

काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, गर्व्व पराधीनता, क्रोध निर्लज्जता, श्रीनाश, धर्म्महीनता, चिन्ता और अकीर्त्ति आदि सभी लोभसे उत्पन्न हुआ करते हैं। कृपणता-विषयक, रुचि सुखमें अत्यन्त तृष्णा, कुकर्म्ममें प्रवृत्ति, वंश और विद्याका अहङ्कार, सुन्दरता और ऐश्वर्य्यका अभिमान, सब जीवोंका अनिष्टाचरण, सबके विषयमें असम्मान, अविश्वास और शठता प्रकाशित करना, परधन हरन, परनारी गमन, वचन और मनका आवेग, दूसरेकी निन्दा, इन्द्रियपरतन्त्रता, उदरन्तरिता, दारुण मृत्यु, बलवती ईर्षा, दुर्जय मिथ्या व्यवहार, दुर्निवार्य्य रसवेग, दुःसह श्रोत्रवेग, नीचता अपनी बड़ाई मत्सरता, दुष्कर कार्य्य और समस्त साहसके कार्य्य तथा अकार्य्यके अभिमान जनित पाप लोभके कारणसे ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य लोग क्या बाल्य, क्या कौमार अथवा युवा अवस्थामें ही लोभको परित्याग नहीं कर सकते; मनुष्योंके जराजीर्ण होनेपर भी लोभ जीर्ण नहीं होता। हे कुरुकुलधुरन्धर महाराज! जैसे गहरे जलसे युक्त नदियोंके समूहसे समुद्र परिपूर्ण नहीं होता, वैसेही सदा फलप्राप्त होनेपर भी लोभको कभी परिपूर्ण नहीं किया जा सकता। जो लोभ अर्थलाभसे हर्षित और कामना सिद्ध होनेसे परितृप्त नहीं होता, देवता, गन्धर्व्व, असुर, सर्प और समस्त जीव जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस लोभको मोहके सहित जय करना जितेन्द्रिय पुरुषको उचित है। हे कौरव! इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले लोभियोंमें दम्भ, दूसरेकी बुराई, पराई निन्दा, पिशुनता और मत्सरता उत्पन्न हुआ करती है। जो लोग अनेक शास्त्रोंको पढ़के बहुदर्शी और समस्त संशयोंको काटनेमें समर्थ हुए हैं, वे भी अल्पबुद्धि पुरुषोंकी भांति लोभजालमें फंसके क्लेश पाते हैं। द्वेष क्रोधसे आसक्त और शिष्टाचारसे बाहर हुए लोभी पुरुष तृणसे ढंके हुए कूएंकी भांति भीतरमें क्रूर और बाहरमें मधुर हुआ करते हैं। वे तुच्छाश्रयवाले पुरुष अधर्म्म प्रचारक होकर धर्म्मके छलसे दूसरेका अनिष्ट करते हुए जगत्को ठगा करते हैं, किसी उपायको अवलम्बन करके अनेक मार्ग प्रदर्शन और लोभमें आसक्त होकर सत् मार्गोंको लुप्त करते हैं। लोभग्रस्त दुष्टात्माओंके अनुष्ठित धर्म्मकी जो जो अवस्था अन्यथा होती है, वह उसके अनुसार ही प्रसिद्ध हुआ करती है। हे कुरुनन्दन! क्रोध, अभिमान, स्वप्न, हर्ष, मद और शोक लुब्धबुद्धि पुरुषोंको आश्रय किया करता है, इन सब लोभयुक्त लोगोंको सदा अनिष्ट कहके मालूम करो। अब पवित्र चरित्रवाले शिष्टोंका विषय कहता हूं सुनो, हे भारत! जिन्हें संसारमें पुनरावृत्ति और नरकका भय नहीं है, प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें समान ज्ञान है, जो विषयिक सुखमें आसक्त नहीं हैं, शिष्टाचार और इन्द्रियसंयम जिसे अवलम्बन किया है, सुख तथा दुःखमें जिसका समभाव है, सत्यही जिनका परम अवलम्ब है, जो दानशील और दयावान हैं, तथा दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हैं; जो पितरों देवताओं और अतिथियोंको तृप्त करनेमें सदा रत रहते हैं, सबका उपकार करनेवाले, धीर और सब धर्म्मोंके पालक हैं, जो सब प्राणियोंके हितैषी और साधारणके उपकारके निमित्त प्राणदान करनेमें समर्थ हैं, उन सब धार्म्मिक पुरुषोंको धर्म्म-मार्गसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। पहिले साधु लोग जैसा आचरण कर गये हैं, उन लोगोंका आचरण उनसे पृथक् नहीं है। जो लोग सत्मार्गमें निवास करते हैं, उन्हें भय नहीं होता, जो लोग चपल और उग्रस्वभाववाले नहीं हैं, कभी किसीकी हिंसा नहीं करते उन सब पुरुषोंकी सदा सेवा करनी साधुओंका कर्त्तव्य है। जो लोग काम, क्रोध,

ममता और अहङ्कारसे रहित उत्तम व्रत करनेवाले और स्थिर मर्य्यादायुक्त हैं, उनकी उपासना करते हुए तुम धर्म्म जिज्ञासा करो। हे युधिष्ठिर! धन और यशके निमित्त उनका जन्म नहीं है, देह-धारणके वास्ते आहार आदिकी तरह अवश्य कर्त्तव्य कहके वे लोग धर्म्मपालन किया करते हैं; उन लोगोंमें भय, क्रोध, चपलता और शोक नहीं है, वे धर्म्मध्वजी वा पाखण्ड धर्म्मावलम्बी नहीं हैं, जिन लोगोंमें लोभ, मोह नहीं है, जो सत्य और सरलताको अवलम्बन किया करते हैं, हे कुन्तीनन्दन! तुम उन लोगोंमें ही अनुरक्त रहो, जिनके सङ्ग अनुरक्त होने पर फिर वह स्खलित नहीं होती। जो लोग लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट नहीं होते, उन ममताहीन, अहङ्कार-रहित, और सत्वगुण अवलम्बी, समदर्शी सत्मार्ग में स्थित, स्थिरपराक्रमी मोक्षेच्छु पुरुषोंको लाभालाभ, सुख, दुःख, प्रियाप्रिय और जीवन मरन सभी समान हैं। हे भद्र! तुम इन्द्रिय निग्रहमें रत और सावधान होकर उन सब धर्म्मप्रिय महानुभावोंका सब प्रकारसे सम्मान करना! लोगोंके वचन कभी दैववशसे गुण गौरव युक्त होकर सम्पत्तिका कारण होता है, कभी वही फिर विपत्का हेतु होजाता है।

१५८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोभही अनर्थका मूल है, इसे आपने कहा, इस समय अज्ञान किसे कहते हैं, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, जो पुरुष बिना जाने पापाचरण करता है उससे अपना नाश होगा उसे वह नहीं जान सकता, वह उत्तम चरित्रवाले पुरुषोंसे द्वेष करके लोगोंके समीप निन्दनीय होता है। लोग अज्ञानके वशमें होके नरकगामी, दुर्गति भागी, क्लेश तथा आपदायुक्त हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, अब मैं अज्ञानकी उत्पत्ति, स्थित, वृद्धि, क्षय, उदय, मूल, गति, कारण, काल और हेतु क्या है, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, लोग जो दुःख भोग किया करते हैं, वह अज्ञानसेही उत्पन्न होता है।

भीष्म बोले, रागद्वेष, मोह, असन्तोष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, हर्ष, तन्द्रा, आलस्य, सब विषयोंमें अभिलाष, ताप, पराई वृद्धिमें परिताप और पापकर्म्म, ये सब अज्ञान कहके वर्णित हुए हैं। हे महाराज! तुम जो अज्ञानकी उत्पत्ति और वृद्धि आदि पूछते हो, उसे विशेष तथा विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे भारत! अज्ञान और अत्यन्त लोभ, इन दोनोंका फल तथा दोष समान है; इसलिये तुम इन दोनोंको एकही समझो, लोभकी वृद्धि, क्षय और उत्पत्तिके अनुसार उससे प्रकट हुआ अज्ञान वर्द्धित, क्षीण और उदित हुआ करता है। विचित्तता ही लोभका मूल है, और लोभसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है; लोभके छिन्नभिन्न होनेपर उसका कारण भी नष्ट होजाता है। अज्ञानसे लोभ और लोभसे अज्ञान तथा दूसरे सब दोष ही उत्पन्न हुआ करते हैं; इसलिये लोग लोभ त्याग देवें। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् और दूसरे बहुतेरे राजा लोग लोभ त्यागनेसे देवलोकमें गये थे। हे कुरुवर! प्रत्यक्ष दुःखदायक लोभको परित्याग करो। इस लोकमें लोभ त्यागनेसे परलोकमें परम सुखभोग करोगे।

१५९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मात्मन्! स्वाध्यायमें यत्नशील धर्म्म करनेवाले मनुष्योंके विषयमें इस लोकमें क्या कल्याणदायक है। जगत्में अनेक

तरहकी वस्तु देखी जाती हैं, इनके बीच इस लोक और परलोकमें जिसके जरिये कल्याण हो, आप मुझसे वही कहिये। हे भारत! धर्म्मका मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखासे युक्त है, इसमेंसे धर्म्मका कौन अंश अनुष्ठेयरूपसे आपको अभिमत है। अनेक शाखासे युक्त धर्म्म अनन्त महत् पदार्थ है, इसलिये उस धर्म्मका जो परम मूल है, आप वह सब यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं तुम्हारा प्रश्न सुनके सन्तुष्ट हुआ, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा, उसे कहता हूं। बुद्धिमान पुरुष अमृत पीके जिस प्रकार तृप्त होता है, तुम भी वैसे ही ज्ञानसे तृप्त होगे। महर्षियोंने धर्म्मका जैसा अनुष्ठान कहा है, वह अनेक तरहका है, निज निज विज्ञानको अवलम्बन करके इन्द्रिय निग्रह ही उसके बीच परम श्रेष्ठ है, निश्चय दर्शी वृद्ध लोग इन्द्रिय-निग्रहका ही कल्याणका कारण कहा करते हैं; विशेष करके ब्राह्मणोंके विषयमें इन्द्रिय निग्रह ही सनातन धर्म्म है। ब्राह्मणोंको इन्द्रिय निग्रहसे ही विधिपूर्व्वक कार्य्य-सिद्धि होती हैं। दमगुण दान, यज्ञ, वेदाध्ययनसे भी उत्तम है, परम पवित्र दमगुणसे तेजकी वृद्धि होती है, दमको अवलम्बन करनेसे पुरुष पापरहित और तेजस्वी होकर महत् फल लाभ कर सकते है। मैंने सुना है, लोकमें इन्द्रिय निग्रहके समान दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। जन समाजमे सब कर्म्मोंके बीच इन्द्रिय-निग्रह ही परम श्रेष्ठ है, हे नरनाथ! इन्द्रियोंको निग्रह करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकमें महत् धर्म्म तथा परम सुख भोग करता है। धार्म्मिक पुरुष सुखसे सोते, जागते तथा सब ठौर विचरते हैं और उनका मन सदा प्रसन्न रहता है। अधर्म्मी पुरुष सदा क्लेश भोग करते हुए अपने दोषके कारणसे ही बहुतसे अनर्थोंमें फंसते हैं। पण्डितोंने कहा है, चारों आश्रमोंके बीच इन्द्रिय निग्रह ही उत्तम व्रत हैं। हे कुरुनन्दन! इनसे जिसकी समष्टिको दम कहते हैं उसका सब लक्षण कहता हूं। क्षमा, धीरज, अहिंसा, सब जीवोंमें समभाव, सत्य, सरलता, इन्द्रियोंको जीतना, दक्षता, कोमलता, लज्जा, अचपलता, दीनता, अक्रूरता, अक्रोध, सन्तोष, प्रियवादिता, असूयाहीनता, गुरुसेवा और सब जीवोंके विषयमें दया, इन सबको ही दम कहते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष खलता, लोकापवाद मिथ्या वचन, स्तुति, निन्दा, क्रोध, लोभ, गर्व्व, अविनय, अपनी बड़ाई, रोष, ईर्षा और अवमाननाको आलोचना नहीं करते, वह निन्दा, कामना और असूया-रहित होके अनित्य सुखके अभिलाषी नहीं होते; और जैसे समुद्र जलसे परिपूर्ण नहीं होता, वैसे ही वे लोग ब्रह्मलोक प्राप्त होने पर भी किसी भांति तृप्त नहीं होते। जितेन्द्रिय पुरुष मैं तुम्हारे तुम मेरे, वह मेरा, मैं उसका, ऐसे सम्बन्धयुक्त ममता पाशमें बद्ध नहीं होते। ग्राम और अरण्य भेदसे लोकके बीच जो दो प्रकारकी प्रवृत्ति है, उसमे तथा निन्दा और प्रशंसामें जो लोग आसक्त नहीं होते, वेही मुक्ति लाभ किया करते हैं। जो सब जीवोंके हितैषी शीलयुक्त, प्रसन्नचित्त, आत्मज्ञानी और अनेक तरहकी विषयासक्तिसे रहित है, उन्हें परलोकमें महत् फल प्राप्त होता है। सुशील, सदाचार, प्रसन्नचित्त आत्मवित् पुरुष इस लोकमें साधुता पाके परलोकमें सद्गति लाभ करते हैं। इसलोकमें जो कर्म्म शुभ रूपसे प्रसिद्ध हैं और साधु लोग जिसका आचरण किया करते हैं, ज्ञानयुक्त मौनावलम्बी मनुष्योंका वही स्वाभाविक मार्ग है; यह मार्ग कभी नष्ट नहीं होता। ज्ञानयोगसे युक्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष घर त्यागके वनमें जाकर समय बिताते हुए व्रताचरण करता है, वह ब्रह्मसायुज्य लाभ करनेमें समर्थ होता है। सब जीवोंसे

लिये भय नहीं होता और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती, उसे देहत्यागनेके अनन्तर किसीसे भी भय नहीं होता। जो भोगके जरिये कर्म्मफलोंका नाश करते और कभी उसे सञ्चय करके नहीं रखते, वे सब प्राणियोंमें समदर्शी विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभयदान करते हुए परब्रह्ममें लीन होते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलचरोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, वैसेही निःसन्देह सब जीवोंके हितैषी पुरुषोंकी गति नेत्रसे नहीं दीख पड़ती। हे राजन्! जो लोग गृहत्यागके मोक्ष-मार्गके पथिक होते हैं, उनके वास्ते सदाके लिये तेजोमय समस्त लोक निर्म्मित होते हैं। प्रसन्नता युक्त पवित्र-चित्त, आत्मावित् निष्काम पुरुष सब कर्म्मोंको त्याग कर विधि पूर्व्वक तपस्या और विविध विद्या सन्न्यास करते हुए इस लोकमें आदर युक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं। पितामहके तपसे उत्पन्न गुफाके बीच जो नित्यलोक है, वह इन्द्रियोंके जीतनेसे प्राप्त होता है। जो ज्ञानकी आलोचनासे तृप्त और सावधान हुए हैं तथा किसीके सङ्ग जिनका विरोध नहीं है, इसलोकमें उन्हें फिर जन्म लेनेका भय नहीं रहता। तब परलोकका भय क्यों होगा? इन्द्रिय जीतनेमें एकही दोष दीख पड़ता है, दूसरा नहीं देखा जाता—क्षमायुक्त पुरुष क्षमाशील होते हैं, इसीसे लोग उन्हें असमर्थ समझते हैं। हे महाबुद्धिमान् धर्म्मराज! एक पुरुषका एकही दोष महत् गुणका कारण हुआ करता है, क्षमासे विपुल लोककी सहिष्णुता सुलभ होती है। धार्म्मिक पुरुषको वनमें जानेका प्रयोजन नहीं है, वे जिस स्थानमें निवास करते हैं वही वन और आश्रम सदृश हुआ करता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भीष्मके ऐसे वचन सुन इस प्रकार आनन्दित हुए जैसे कोई अमृत पीके तृप्त होता है, उन्होंने धर्मात्मा शान्तनुपुत्रसे फिर धर्म्म विषयमें पूछा किया। अनन्तर कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेव प्रसन्न होके उनसे कहने लगे।

१६० अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, ऋषि लोग इन सबको ही तपका मूल कहा करते हैं, जो मूढ़बुद्धि तपस्या नहीं करता, वह कभी कर्म्मका फल नहीं पाता। सर्व्वशक्तिमान प्रजापतिने तपोबलसे ही इस दृश्यमान जगत्को बनाया है, इसी तरह ऋषियोंने भी तपके प्रभावसे वेदोंको प्राप्त किया है। विधाताने फल मूल आदि अन्नोंको तपस्यासे ही उत्पन्न किया है, एकान्त योगयुक्त सिद्ध लोग तपके प्रभावसे तीनों लोकोंको देखते हैं। रोग नाश करनेवाली सब औषधि और अनेक कर्म्मोंका निर्व्वाह तपस्यासे ही सिद्ध होता है, सब साधनोंका तप ही मूल है। जगत्में जो कुछ दुष्प्राप्य वस्तु है, वह सब तपके प्रभावसे प्राप्त होती हैं; ऋषियोंने तपस्यासे ही निःसन्देह ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है। सुरापीनेवाले, धन हरनेवाले, भ्रूणहत्याकरनेवाले और गुरुस्त्रीगामी मनुष्य उत्तम रीतिसे तपस्या करनेपर उन पापोंसे छूट जाते हैं। तपस्या अनेक प्रकारकी हैं। विषयिकसुखभोगोंसे निवृत्त होके चाहे कोई किसी प्रकारकी तपस्या क्यों न करे, अनशनसे बढ़के परम तपस्या और कुछ भी नहीं है। महाराज! अहिंसा, सत्यवचन, दान और इन्द्रियदमनसे अनशन उत्तम है। दानसे कुछ भी कठिन नहीं है, जननीको अतिक्रम करके दूसरे आश्रममें गमन करना धर्म्म नहीं है; वेदसे दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है; सन्न्यासही परम तपस्या है। जो लोग सुख समृद्धि और धर्म्मरक्षाके निमित्त इस लोकमें इन्द्रियसंयम किया करते हैं, उनके निमित्त धर्म्म और अर्थ विषयमें

अनशन व्रतसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, मृग और पक्षीसमूह तथा इनके अतिरिक्त दूसरे जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, वे सभी तपस्यामें रत होके तपके जरिये सिद्ध होते हैं। इसी भांति देवताओंको तपस्याके जरिये महत्व प्राप्त हुआ है। तपस्याका फल सदा सब इष्ट विषयोंका विभाग कर देता है। तपस्यासे निःसन्देह देवत्व भी प्राप्त हो सकता है।

१६१ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! देवता, ब्राह्मण, ऋषि और पितर लोग सत्य धर्म्मकी प्रशंसा किया करते है, इसलिये मैं सत्यधर्म्म सुननेकी अभिलाषा करता हूं; आप मुझसे वही कहिये। सत्यका क्या लक्षण है, किस प्रकार वह प्राप्त होता है और सत्यके प्राप्त होनेसे क्या होता है। आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच धर्म्मसङ्कर उत्तम नहीं है, सब वर्णोंके बीच अविकारी सत्य ही श्रेष्ठ है। साधुओंके समीप सत्यधर्म्म ही सदा आदरणीय है, सत्यही सनातन धर्म्म है; सब कोई सत्यका आदर करें, सत्यही परम गति है। तपस्या और योगसाधन सत्यधर्म्म है, सत्यही सनातन ब्रह्म, सत्यही परम श्रेष्ठ यज्ञ कहके वर्णित होता और सब वस्तु ही सत्यसे प्रतिष्ठित हो रही हैं। सत्यका जैसा स्वरूप और लक्षण है, उसे मैं विधिपूर्व्वक विस्तारके सहित कहता हूं और जिस प्रकार सत्य प्राप्त होता है, उसे भी वर्णन करूंगा, तुम इसके सुननेके योग्य पात्र हो। हे भारत! सब लोकोंके बीच सत्य तेरह प्रकारके रूपसे विख्यात है। हे राजेन्द्र! सत्य, समता, दम, मत्सरहीनता, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, धृति, आर्य्यत्व, सब जीवोंपर सदा दया तथा अहिंसा ये तेरह प्रकार सत्यके रूप हैं। तिसके बीच अव्यय और अविकारी नित्य-वस्तुका नाम सत्य है; सब धर्म्मोंके अविरोध योगके जरिये वह प्राप्त होता है। इच्छा, द्वेष, काम, क्रोधके नष्ट होनेपर अपने और शत्रुके इष्ट अनिष्ट विषयोंमें तुल्य दृष्टिको समता कहते है। इन्द्रियोंके विषयमें आसक्तिहीनताको दम कहा जाता है; दमगुण रहने पर धीरज, गम्भीरता, अभय और रोगोंको शान्ति होती है; यह ज्ञानके प्रभावसे प्राप्त होता है। दान और धर्म्मके विषयके संयमको पण्डित लोग अमात्सर्य्य कहते हैं; पुरुष सदा सत्य मार्गमें स्थित रहनेसे मत्सर-रहित होते हैं। अक्षमा और क्षमाके विषयमें प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको जिस शक्तिके सहारे शिष्ट तथा साधु लोग क्षमा करते हैं, उसे ही क्षमा कहते हैं; सत्यवादी पुरुष उत्तम रीतिसे इस शक्तिको प्राप्त करते हैं। शान्तिचित्त तथा स्थिर वचनवाले बुद्धिमान् पुरुष जिस शक्तिके जरिये अत्यन्त कल्याणयुक्त कर्म्मोंको सिद्ध करते और किसी स्थानमें ग्लानियुक्त नहीं होते, उसे ही लज्जा कहते हैं; यह शक्ति धर्म्मसे प्राप्त होती है। धर्म्म और अर्थके निमित्त लोक-संग्रहके लिये क्षमा करनेको तितिक्षा कहा जाता है, धीरजसे तितिक्षा प्राप्त होती है। ममता और विषयवासना परित्याग करनेका नाम त्याग है, राग द्वेषसे रहित पुरुष ही त्यागी होते हैं; दूसरे नहीं। यत्नपूर्व्वक जीवोंके शुभ कार्य्योंको सिद्ध करनेको आर्य्यता कहते हैं। जिसके जरिये सुख और दुःखकी विकृति नहीं होती उसे ही धृति कहा जाता है, जो बुद्धिमान् पुरुष अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करे, वह सदा धृतिके वशवर्त्ती होवे। मनुष्य सदा क्षमाशील और सत्यपरायण होवे, जिसने हर्ष, भय और क्रोध परित्याग किया है, वह पण्डित पुरुष ही

तृति लाभ करनेमें समर्थ होता है। वचन, मन, कर्मके जरिये सब जीवोंके विषयमें अद्रोह, अनुग्रह और दान करना साधुओंका सनातन धर्म है। हे भारत! येही तेरह प्रकारके पृथक् पृथक् गुणोंके इकट्ठे होने पर सत्य होता है, इस लोकमें साधु लोग सत्यकी सेवा करके बढ़ते हैं। हे राजन्! सत्यके सब गुणोंका अन्त नहीं कहा जासकता, इसीलिये पितरों और देवताओंके सहित ब्राह्मण लोग सत्यकी प्रशंसा किया करते हैं। सत्यसे बढ़के परम धर्म्म और कुछ भी नहीं है। मिथ्याके समान परम पाप दूसरा कुछ नहीं है। सत्यही धर्म्मका आसरा है, इसलिये सत्यका लोप न करे। सत्यसे ही दान दक्षिणायुक्त यज्ञ, अग्निहोत्र, समस्त वेद और धर्म्म निश्चय-प्राप्त होता है। एक ओर सहस्र अश्वमेध यज्ञ और दूसरी ओर अकेले सत्यके तुलादण्डपर रखनेसे सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य अधिक होता है।

१६२ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान भरतश्रेष्ठ! काम, क्रोध, शोक, मोह, विधित्सा, अकार्य्य, पराधीनता, मत्सरता, ईर्षा, कुत्सा, असूया, कृपा और भय जिससे उत्पन्न होते हैं, आप मेरे समीप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्मराज! ये तेरह प्राणियोंके प्रबल शत्रु हैं; ये मनुष्योंको सब तरहसे सेवा किया करते हैं, यह मनुष्योंको सदा जानना उचित है। हे राजन्! इन सबकी उत्पत्ति, स्थिति और निवृत्तिका विषय तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। इस समय पहिले क्रोधकी उत्पत्तिका विषय यथार्थ रीतिसे कहता हूं। तुम सावधान होकर सुनो। लोभसे क्रोध उत्पन्न होता है और वह पराये दोषके जरिये उद्दीप्त होकर क्षमाके सहारे निवद्ध वा निवृत्त हुआ करता है।

सङ्कल्पसे काम उत्पन्न होता है, उसकी जितनी ही सेवा की जाय उतना ही वह बढ़ता है बुद्धिमान पुरुषोंके कामसे विरत होनेपर उसही समय वह नष्ट होजाता है, क्रोध और लोभके बोचसे असूयाकी उत्पत्ति होती है, सब जीवोंमें दया करनेसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है। बुद्धिमान् पुरुषोंके मनमें अनिष्ट वस्तुओंके दर्शनसे भी इसकी उत्पत्ति होती और तत्वज्ञानके जरिये निवृत्ति देखी जाती है। अज्ञानसे मोह उत्पन्न होता है और पापसे बार बार बढ़ता रहता है, सत्सङ्गतिके कारण वह नष्ट होजाता है। हे कुरुकुल धुरन्धर! जो लोग विरुद्ध शास्त्रोंको देखते हैं, उन लोगोंको विधित्सा अर्थात् कार्य्यके आरम्भमें व्यग्रता उत्पन्न होती है, तत्वज्ञानसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है, प्रणययुक्त पत्र आदिके वियोगके कारण देहधारी जीवोंका शोक उत्पन्न होता है; प्रिय पुरुषका वियोग होनेपर जब कि यह विदित होता है कि फिर उसके मिलनेकी सम्भावना नहीं है, उस समय शोककी शान्ति हुआ करती है, क्रोध, लोभ और अभ्यासके कारणसे अकार्य्य-परतन्त्रता प्रकट होती है, सब जीवोंमें दया और निर्वेदके सबब उसकी निवृत्ति होती है। सत्यके त्यागने और अनिष्ट-विषयोंकी सेवा करनेसे मत्सरता उत्पन्न होती है, वह साधुओंकी सङ्गति करनेसे नष्ट होती है। कुलकी मर्य्यादा, विद्या और ऐश्वर्य्यसे मद उत्पन्न होता है; इन सबकी यथार्थता मालूम होनेपर उसही समय उसका नाश होता है। काम और हर्षसे ईर्षा प्रकट होती है, साधारण प्राणियोंकी बुद्धिको देखनेसे वह नष्ट होती है। हे राजन्! समाजसे च्युत लोगोंके भ्रमके कारण द्वेष और असम्मत वचनके जरिये कुत्साकी उत्पत्ति होती है शिष्टाचारके देखनेसे उसकी शान्ति होती है,

जो लोग बलवान् शत्रुके प्रतिकार करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन लोगोंमें तीक्ष्ण असूया उत्पन्न हुआ करती है, करुणासे वह निवृत्त होती है। सदा दुःखित पुरुषोंके देखनेसे कृपा उत्पन्न होती है, धर्म्मनिष्ठा विदित होनेपर उसकी निवृत्ति हुआ करती है। यह सदा देखा जाता है, कि जीवोंको अज्ञानसे लोभ उत्पन्न होता है, सब विषयोंकी अस्थिरता देखनेपर ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होती है। बुद्धिमान् लोग कहा करते हैं, शान्तिके जरिये इन तेरहो दोषोंको पराजित किया जाता है। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें येही सब दोष थे, तुमने सत्यके अभिलाषी होकर उन लोगोंको जय किया है।

१६३ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मैं सदा साधुओंकी सङ्गतिमें रहनेसे अनृशंसताको जानता हूं; नृशंस और उसके कार्य्यके विषयको नहीं जानता; लोग कांटे, कूएं और अग्निको जिस तरह त्यागते हैं, निठुर मनुष्यको भी उसी तरह परित्याग किया करते हैं, नृशंस पुरुष इस लोक और परलोकमें स्पष्ट रूपसे जलता है; इसलिये आप उस विषय और कर्म्म-निर्णयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, नृशंस पुरुष कुकर्म्ममें प्रवृत्त और नीच कार्य्य करनेमें अभिलाषी होता है। वह स्वयं जन समाजमें निन्दनीय होकर भी सदा दूसरेकी निन्दा करता है और अपनेको सबके समीप वञ्चित समझता है; उसके समान छोटा और नीचबुद्धि दूसरा कोई भी नहीं है। वह अभिमान, असत्सङ्ग और अपनी बड़ाईमें रत होकर निज वदान्यता प्रकाशित करता है; कृपण और मूर्खकी भांति सबको ही शङ्का किया करता है; निज सम्प्रदायकी प्रशंसा और आश्रमवासी ऋषियोंके विषयमें द्वेष करता है; सदा दूसरेकी हिंसामें प्रवृत्त होकर दोष गुणका विचार नहीं करता; बहुतसी न कहने योग्य बात कहता है, अशान्त चित्त और लोभी होकर निठुर कार्य्य किया करता है; धर्म्म करनेवाले गुणवान् मनुष्योंको पापी कहके निश्चय करता है, अपने चरित्रके प्रमाण अनुसार दूसरेका विश्वास नहीं करता, दूसरेका दोष देखनेसे ही उसे गुप्त रीतिसे प्रकाश करता है; दूसरेका दोष निज दोषके समान होनेपर जीविका निर्व्वाहके लिये उसे छिपा रखता है; उपकारी पुरुषको केवल वञ्चित समझता है; समयके अनुसार उपकारीको धनदान करके फिर दुःख किया करता है। प्राप्त हुए भक्ष्य, भोज्य और पेय वस्तुओंको दूसरेके देखते रहते भी जो पुरुष अकेला भोजन करता है, उसे भी नृशंस कहते हैं। जो लोग पहिले ब्राह्मणोंको भोजनकी वस्तुओंका दान करके सुहृदोंके सङ्ग उसे भोजन करते हैं, वे इस लोकमें अनन्त सुख भोग करते हुए अन्तकालमें स्वर्ग लाभ करते हैं। हे धर्म्मराज! यही तुम्हारे निकट नृशंसका विषय वर्णन किया विज्ञानयुक्त मनुष्योंको सदा नृशंसका सङ्ग परित्याग करना उचित है।

१६४ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे भारत! सब वेदोंके जाननेवाले यज्ञशील धर्म्मात्मा साधु ब्राह्मणोंके दरिद्र होने पर आचार्य्य कार्य्य, पितर कर्म्म और पढ़नेके लिये उन लोगोंको अर्थदान करना अवश्य उचित है। राजा सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको सब रत्न दान करे, ब्राह्मण लोग ही वेद और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ स्वरूप हैं। वे लोग इच्छा पूर्व्वक गुण तथा गौरवके अनुसार धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञोंका पूरा किया करते हैं। जिसके आश्रितोंके पालन करनेके निमित्त

त्रिवर्षिक और उससे भी अधिक अन्न उपस्थित रहता है, वे सोमपान करनेमें समर्थ होते हैं, धर्म्मात्मा राजा वर्त्तमान समयमें यज्ञ करनेवाले विशेष करके ब्राह्मणोंका यज्ञ यदि एक अंशके जरिये रुक जाय, तो राजा यज्ञ और सोमरस पान न करनेवाले अनेक पशुसमूहसे युक्त वैश्यका धन ग्रहण करके यज्ञके निमित्त ब्राह्मणको दान करे। राजा इच्छानुसार शूद्रके घरसे कुछ धन न ग्रहण करे, क्योंकि शूद्रको यज्ञ कर्म्मका कुछ अधिकार नहीं है। जो एक सौ गऊवाले होकर अग्निमें आहुति नहीं देते और जो सहस्र गऊसे युक्त होके भी यज्ञ नहीं करते, राजा कुछ भी विचार न करके यज्ञके लिये उनका धन हरण करे; राजा प्रकाश्य रीतिसे सदा कृपणोंके धनको हरण करे; जो राजा ऐसा आचरण करता है, उसे बहुत धर्म्म होता है। जिस ब्राह्मणने अन्नके अभावसे तीन दिन तक उपवास किया है, वह कर्म्महीन पुरुष उदूखल, खेत, बगीचे अथवा जिस स्थानसे मिल सके, वहांसे एक दिनके योग्य अन्न हरण करके राजाके न पूछने पर भी उसके समीप प्रकाशित करे, धर्म्म जाननेवाला राजा धर्म्मके अनुसार उसके विषयमें दण्ड धारण न करे, क्षत्रियोंकी असावधानीसे ब्राह्मण क्षुधासे क्लेशित होते हैं, राजा ब्राह्मणोंकी विद्या और चरित्रको जानके उनकी वृत्तिका विधान करे। जैसे पिता और सपुत्रोंको प्रतिपालन करता है राजा वैसे ही ब्राह्मणोंकी सब तरहसे रक्षा करे; सम्वत्के अन्तमें वैश्वानर यज्ञ करे। धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने अनुकल्पको परधर्म्म कहा है और विश्वदेव, साध्य, महर्षि तथा ब्राह्मणोंने आपदकालमें मरनेसे डरके अनुकल्पको मुख्य धर्म्मका प्रतिनिधि स्वरूप निश्चित किया है। जो पुरुष मुख्य कल्पको करनेमें समर्थ होकर अनुकल्पका अनुवर्त्ती होता है, उसे पारलौकिक फल नहीं मिलता। वेद जाननेवाला ब्राह्मण राजाके निकट किसी विषयका निवेदन न करे; ब्रह्मबल और राजबल इन दोनोंके बीच ब्राह्मणका बल ही प्रबल है; इसलिये ब्रह्मवादियोंका बल राजाके विषयमें सदा दुःसह हुआ करता है। ब्राह्मण कर्त्ता, शास्ता, धाता और देवता स्वरूप कहे जाते हैं; ब्राह्मणोंके निकट रूखा और अमांगलिक वचन न कहे। क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य, शूद्र बहुतसे धनके जरिये और ब्राह्मण मन्त्र तथा होमके सहारे आपदोंसे पार होते हैं। कन्या, स्त्री, मन्त्रज्ञानसे हीन, मूर्ख और यज्ञोपवीत रहित पुरुष अग्निहोत्रमें आहुति न देवे, ये लोग जिसके होमकी अग्निमें आहुति देते हैं, उसके सहित अपनेको नरकमें डालते हैं, इसलिये वेद जाननेवाले याज्ञिक पुरुषको होता होना उचित है। जो यज्ञकी अग्नि स्थापित करके प्राजापत्य दक्षिणा दान नहीं करते, धर्म्मदर्शी पुरुष उन्हें आहिताग्नि नहीं कहते; श्रद्धावान् जितेन्द्रिय होकर समस्त पुण्यकर्म्म करे, कभी दक्षिणा-रहित यज्ञ न करे। जो यज्ञ करके दक्षिणा नहीं देते, उनकी प्रजा, पशु, स्वर्ग, यश, कीर्त्ति, आयु और समस्त इन्द्रियां नष्ट होती हैं। जो ब्राह्मण रजस्वला स्त्रीसे सङ्ग करते, जो आहिताग्नि नहीं हैं और जिसके वंशमें वेदज्ञानसे रहित पुरुष जन्म लेते हैं, वे सब ही शूद्रके समान हैं; ब्राह्मण शूद्रकी कन्याका पाणिग्रहण करके जिस स्थानमें केवल कूएंका जल ही उपजीव्य है, वहां बारह वर्ष वास करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! ब्राह्मण यदि अपरिणीता स्त्री और शूद्रको माननीय समझके अपनी शय्यापर शयन करने दे, तो वह अपनेको अब्राह्मण समझके उसके पीछे तृणशय्या पर शयन करे, तब शुद्ध होगा; इस विषयमें मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। जो ब्राह्मण नीच वर्णकी सेवा करके एक स्थान और एक आसनपर एक रात्रिके बीच उसके सङ्ग

विहार करके पापग्रस्त होता है, वह व्रतनिष्ट होकर तीन वर्षमें उस पापको नष्ट करनेमें समर्थ हुआ करता है। हे धर्म्मराज! परिहासके समय, स्त्रीके निकट, विवाहकालमें; गुरुके लिये और निज जीवनकी रक्षाके निमित्त मिथ्या वचन कहनेसे दोष नहीं होता; पण्डित लोग इस पांच प्रकारके झूठ व्यवहारको पाप नहीं कहते। श्रद्धावान् पुरुष नीच जातिसे भी उत्तम विद्या सीखे, अपवित्र जगहसे भी कुछ विचार न करके सुवर्ण ग्रहण करे, नीचकुलसे भी उत्तम स्त्री ग्रहण करे और विषसे अमृत लेके पीवे; क्यों कि स्त्रीरत्न और जल धर्म्मपूर्व्वक दूषित नहीं होते। वैश्यजाति वर्णसङ्करोंको निवारण करने और गऊ ब्राह्मणके हित तथा अपने परिवारोंके लिये शस्त्र ग्रहण करे। जानके ब्रह्महत्या सुरापान, गुरुस्त्री-गमन, सुवर्ण चुराना और ब्राह्मणस्व हरण करना, ये पांचो महापातक हैं; प्राणनाश ही इसका प्रायश्चित्त निश्चित है। सुरापान और अगम्य गमनके कारण जो पुरुष पतित होता है, उसके सङ्ग सहवास करने और अब्राह्मण होके ब्राह्मणी गमन करनेसे पुरुष शीघ्र ही पतित होता है। मनुष्य याजन, अध्यापन और योनिसम्बन्धके कारण पतित हुए पुरुषके सङ्ग व्यवहार करनेसे सम्वत्सरके बीच पतित हुआ करते हैं; एकत्र गमन करने एक आसन पर बैठने और एकत्र भोजन करनेसे पतित नहीं होते। हे धर्म्मराज! ब्रह्महत्या आदि पञ्च महापातकका प्रायश्चित्त नहीं कहा है, प्राणत्याग ही उसका प्रायश्चित्त है; इससे अतिरिक्त दूसरे पापोंके जो प्रायश्चित्त हैं, उससे पाप नष्ट करके अन्तमें पुरुष फिर उसमें प्रवृत्त न होवे, सुरापीनेवाले ब्रह्महत्यारे और विमाताके सङ्ग गमन करनेवाले पुरुषोंके मरने पर उनके दाहकर्म्म तथा प्रेतकार्य्य करनेकी आवश्यकता नहीं है; सपिण्ड लोग इस विषयमें विचार न करके उसका अशौच ग्रहण न करके अन्न और सुवर्ण ग्रहण करें। अमात्य और महत् पुरुषके पतित होने पर जबतक वह प्रायश्चित्त न करे, तबतक धार्म्मिक पुरुष धर्म्मके अनुसार उसे त्याग दे और उसके सङ्ग बात न करे। पाप करनेवाला पुरुष तपस्या और धर्म्माचरणसे पापको नष्ट करता है। तिसको चोर कहनेसे उसके समान पाप होता है, और जो पुरुष तस्कर नहीं है, उसे तस्कर कहनेसे उसके पापसे दूना पाप कहनेवालेको लगता है। कुमारी यदि व्यभिचारसे दूषित हो, तो वह ब्रह्महत्या पापके तीन भागका एक भाग भोग करती है और जो पुरुष उसे दूषित करता है, वह बाकी दो भाग ग्रहण करता है। ब्राह्मणको मारनेके लिये उद्योग अथवा प्रहार करनेसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त प्रतिष्ठा नहीं मिलती। हत्या करनेसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त नरकमें बास करना पड़ता है; इसलिये कभी ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करने वा मारनेके वास्ते तैयार न होवे। ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करनेसे उसके शरीरसे निकला हुआ रुधिर जितनी धूलिको गीली करता है, मारनेवाला पुरुष उतने ही वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास किया करता है। भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते युद्धमें शस्त्रसे मरकर शुद्ध होता अथवा जलती हुई अग्निमें अपने शरीरको आहुति देनेसे शुद्ध हो सकता है। सुरा पीनेवाला जलते हुए उष्ण वारुणी मद पीनेसे पापसे मुक्त होता अर्थात् उष्ण मद पीनेसे उसका शरीर जलनेपर वह मृत्युके कारण परलोकमें गमन करके पवित्र होता है। ब्राह्मण लोग सुरापान करके ऐसा आचरण करनेसे शुभ लोकमें गमन करते है; इसमें अन्यथा करनेसे असत् गतिको प्राप्त होवे हैं।

पापबुद्धि दुष्टात्मा पुरुष विमाताके साथ गमन करनेसे जलती हुई लोहमयी स्त्रीकी मूर्त्तिको आलिङ्गन करके प्राणत्यागनेसे शुद्ध

होता है। अथवा स्वयं शिर और कोश काट-कर अस्त्रलोमें लेकर नैऋत दिशामें गमन करके निपतित होवे; अथवा ब्राह्मणके निमित्त प्राण परित्याग करनेसे शुद्ध होगा। अथवा अश्वमेध, गोमेध वा अग्निष्टोम यज्ञ करके इस लोक और परलोकमें सत्कृत हो सकेगा। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष मरे हुए ब्राह्मणका कपाल धारण करके बारह वर्ष तक निरन्तर निज कार्य्यको प्रकाश करते हुए ब्रतचारी और मननशील होवे। ब्रह्महत्या करनेवाले पुरुषको इसी प्रकार मननशील और तपमें निष्ठावान होना उचित है जो पुरुष ऋतुमती स्त्रीको ऋतुमती जानके बध करता है, उसे ब्रह्महत्यासे दुगुना पाप होता है। सुरापीने-वाला ब्राह्मण निराहार ब्रह्मचारी होकर पृथ्वीपर शयन करते हुए तीन वर्ष तक केवल अग्निष्टोम यज्ञ करे, शेषमें एक बैलके सहित एक सहस्र गऊ दान करके शुद्ध होगा। वैश्यका बध करनेसे दो वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैलके सङ्ग एक सौ गऊ दान करे। शूद्रको मारनेसे एक वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैल और एक सौ गऊ दान करे। कुत्ता, सूअर और गधेको मारनेसे शूद्रके ब्रतका आचरण करे। हे राजन्! बिड़ाल, चूहा, मेड़क, कौवा, स्वर्णचातक और सांप आदि जीवोंकी हिंसा करनेसे पशु हत्याका पाप हुआ करता है। इस समय दूसरे सब प्रायश्चित्तोंकी कथा क्रमके अनुसार कहता हूं।

बिना जाने कीट आदिका बध करनेसे शोक-रूपी प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; गऊ बधके अतिरिक्त दूसरे पृथक् पृथक् उत्पातकोंका प्राय-श्चित्त सम्वत भरमें ही करे। वेदजाननेवाले ब्राह्मणकी भार्य्यासे गमन करने पर तीन वर्ष और परस्त्री मात्रके सङ्ग गमन करनेसे दो वर्ष तक दिनके चौथे भागमें भोजन करके ब्रह्म-चारी और ब्रतमें निष्ठावान होवे। परस्त्रीके साथ एक स्थान और एक आसन पर बैठनेसे तीन दिन केवल जल पीके समय बितावे। हे कुरुनन्दन! जो पुरुष बिना कारणके ही पिता, माता और गुरुको परित्याग करता है, वह जिस प्रकार धर्म्म-निर्णयके अनुसार पतित होता है, उसी तरह जो पुरुष अग्निहोत्र नष्ट करता है, वह भी पतित हुआ करता है। भार्य्याके व्यभिचारिणी होनेपर उसे विशेष रीतिसे अवरुद्ध करके भोजन और वस्त्र मात्र देवे; परस्त्री-गमन करनेसे पुरुषके लिये जैसा प्रायश्चित्त है, उसे भी उसी ब्रतका आचरण करावे, जो स्त्री अपने पतिको त्यागके दूसरे पुरुषका आसरा करके पापाचार करती है; राजा उसे अनेक लोगोंसे परिपूरित स्थानमें कुत्तोंसे भक्षण करावे। इसी तरह पुरुषको भी व्यभिचार करने पर उसे जलती हुई लोहमय-शय्यापर सुलावे और उसमें काठका ढेर लगा देनेसे पाप करनेवाला मनुष्य भस्म होगा। महा-राज! स्त्रियोंको पतिके विषयमें व्यतिक्रम कर-नेसे उन्हें भी इसी तरह दण्ड देना योग्य है। जो दुष्टात्मा पाप-कर्म्म करके सम्वत्के बीच प्रायश्चित्त नहीं करता, उसे दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त न करनेवाले पुरुषके सङ्ग जो मनुष्य दो, तीन, चार अथवा पांच वर्षतक वास करता है, वह मुनिव्रत अवलम्बन करके भिक्षा मांगके जीवन व्यतीत करे। जेठे भाईके क्वारा रहते छोटा भाई यदि विवाह करे, तो उसे परिवेत्ता कहते हैं, वह उसके जेठे और जिसके उद्योगसे विवाह होता है, वे सभी अध-र्म्मके कारण पतित हुआ करते हैं। बीरघाती पुरुष जिस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी पापशुद्धिके लिये एक महीने तक उसही कृच्छ्र वा चान्द्रायण ब्रतका आचरण करे; अन्तमें परिवेत्ता जेठे भाईको वह विवाहिता भार्य्या प्रदान करे, अनन्तर छोटा भाई बड़ेकी अनुमतिसे फिर उसे ग्रहण करे, तब वह दोनों

भाइयोंसे परिणीता स्त्री धर्म्मके अनुसार शुद्ध होती है। गऊको छोड़के दूसरे पशुओंकी हिंसा दोषयुक्त नहीं होती; पण्डित लोग जानते हैं, कि पशुओंके ऊपर प्रतिपालक पुरुषोंकी सब तरहकी प्रभुता है। पापी पुरुष सुरागायके चर्व्वरको धारण करके निज कर्म्मको कहते हुए मट्टीका पात्र लेकर सवेरे सात घरमें भिक्षाके वास्ते भ्रमण करें और उससे जो प्राप्त हो, वही भोजन करें; बारह दिनतक इसी तरह व्रत करनेसे उसके अनन्तर शुद्ध होंगे। पाप शान्ति न होनेपर सम्वत्‌भर ऐसाही व्रत करे; तो पाप नष्ट हो सकेगा। मनुष्योंके बीच इसी तरहका प्रायश्चित्त ही उत्तम है। दान करनेमें समर्थ पुरुषोंके विषयमें इन्हीं सब दानोंका विधान करे,—जो लोग नास्तिक नहीं हैं, उनके निमित्त केवल एक गऊका दान पण्डितोंके जरिये कहा गया है। ब्राह्मण यदि कुत्ता, सूअर, कुक्कुट और गधेका मांस, मूत्र अथवा पुरीष भोजन करे, तो फिरसे उसका संस्कार करना होगा। सोमपान करनेवाला ब्राह्मण यदि सुरा पीनेवालेका गन्ध सूंघे, तो पहिले तीन दिन तक केवल गर्म्म जल पीवे, फिर तीन दिन गर्म्म दूध पीवे; तिसके अनन्तर तीन दिन उष्ण जल पीकर तीन दिन वायु भक्षण करे, सब वर्णोंके विशेष करके बिना जाने ब्राह्मणोंके किये हुए पापोंका इसी प्रकार सनातन प्रायश्चित्त कहा गया है।

१६५ अध्याय समाप्त।

---

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तलवार युद्धके जाननेवाले नकुलने कथाकी समाप्ति देखकर शरशय्या शायी पितामह भीष्मदेवसे यह बात कही।

नकुल बोले, हे धर्म्मजाननेवाले पितामह! सब शस्त्रोंके बीच धनुष अत्यन्त उत्तम है; पर मेरे मतमें तलवार ही प्रशंसनीय है; क्यों कि धनुष कटने और घोड़ोंके नष्ट होने पर केवल तलवारसे आत्माकी भलीभांति रक्षा करी जा सकती है, अकेला तलवार ग्रहण करनेवाला वीर पुरुष, धनुषधारी और गदाशक्तिसे प्रहार करनेवाले शत्रुओंको निवारण करनेमें समर्थ होता है। हे पितामह! इससे मुझे इस विषयमें बहुत ही संशय और कौतूहल उत्पन्न हुआ है; युद्धमात्रमें कौन शस्त्र उत्तम है? किस कारण किस जरिये किस तरह खड्ग उत्पन्न हुआ था और पहिले कौन खड्गविद्याका आचार्य्य था? आप वह सब वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत! धनुर्व्वेदके जाननेवाले शरशय्याशायी धर्म्मज्ञ भीष्मदेव बुद्धिमान् माद्रीपुत्रका यह वचन सुनकर सुशिक्षित द्रोणशिष्य महानुभाव नकुलसे कौशलयुक्त सूक्ष्म और विचित्र अर्थके सहित स्वरवर्णसे युक्त उत्तम वचन कहने लगे।

भीष्म बोले, हे माद्रीपुत्र! तुमने धातुमान् पर्व्वतकी तरह मुझे सावधान किया; इससे जो पूंछते हो, उस विषयका यथार्थ वृत्तान्त कहता हूं, सुनो, हे तात! पहिले यह दृश्यमान जगत् जल समूहमें समुद्रमय, निष्प्रकम्प, अनाकाश, अन्धेरेसे परिपूरित, स्पर्श रहित, शब्दहीन, अप्रमेय और अत्यन्त गम्भीर था, उस समय पृथ्वीतलका पता न था; पितामह ब्रह्माने उस ही समय जन्म लिया। उस सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्माने वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, स्वर्ग, पाताल, भूमि, नैऋती, चन्द्रमा, तारा, ग्रह, नक्षत्र, सम्वत्सर, ऋतु, महीना, पक्ष, लव और क्षण इन सबकी सृष्टिकी। अनन्तर भगवान् पितामहने लौकिक-शरीर धारण करके मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अङ्गिरा, सब कार्य्योंमें समर्थ रुद्र और प्रचेता नाम अत्यन्त तेजस्वी ऋषिसन्तानोंको उत्पन्न किया। दक्ष प्रजापतिसे साठ कन्या उत्पन्न

हुई, ब्रह्मर्षियोंने पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उन कन्याओंको ग्रहण किया । उन्हीं कन्याओंसे विश्वगण, देवता, पितर, भूत, गन्धर्व्व, अप्सरा, विविध, राक्षस, पतङ्गो, मृग, मकरी, प्लवग, महोरग, भूचर, खेचर, जलचर, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज आदि प्राणी तथा स्थावर जङ्गमसे युक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने इन सब जीवोंको उत्पन्न करके शाश्वत वेदोक्त धर्म्म प्रयोग किया, आचार्य्य और पुरोहितके सहित देवता लोग उस ही धर्म्मका अनुष्ठान करने लगे । आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य, दोनों अश्विनीकुमार, भृगु, अत्रि, अङ्गिरा सिद्ध लोग, तपस्वी, कश्यप, वशिष्ठ अगस्त्य, नारद, पर्व्वत, बालखिल्य ऋषि, प्रभास, सिकत, घृतप, सोमवायव्य, वैश्वानर मरीचिपायी, आकृष्ट, हंस, अग्नियोनि ये सब ऋषि, वाणप्रस्थ तथा प्रश्नि आदि ऋषि ब्रह्माकी आज्ञामें स्थित रहे ।

दानवेन्द्र समूह क्रोध लोभसे युक्त होकर पितामहका वह शासन अतिक्रम करके धर्म्म नष्ट करने लगा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु विप्रचित्ति, वीरोचन, सम्बर, प्रह्लाद, नमुचि और बलि, ये सब तथा समूहके सहित दूसरे बहुतेरे दैत्य दानव धर्म्मबन्धन उल्लङ्घन करके अधर्म्ममें रत हुए थे । सब कोई समान वंशमें उत्पन्न हुए हैं ; इसलिये जैसे देवता लोग हैं । वैसे ही हम भी हैं, दैत्य लोग ऐसा ही धर्म्मअवलम्बन करके देवर्षियोंके सङ्ग स्पर्द्धा करने लगे । हे भारत ! वे लोग जीवोंके ऊपर करुणा तथा उनका प्रियकार्य्य नहीं करते थे । भेद, दण्ड, दानरूपी तीनों उपायको अवलम्बन करके दण्डसे प्रजा समूहको पीड़ित करने लगे वे सब मुख्य मुख्य असुर लोग विज्ञानमार्गसे नहीं चलते थे । अनन्तर भगवान ब्रह्मा ब्रह्मर्षियोंके सहित हिमालय पर्व्वतके सुन्दर शिखरपर उपस्थित हुए । देवोंमें श्रेष्ठ विधाताने प्रजा समूहकी प्रयोजन सिद्धिके निमित्त फूले हुए वृक्षोंसे परिपूर्ण उस पर्व्वत पर निवास किया । अनन्तर सहस्रवर्षके बाद ब्रह्माने विधानके अनुसार यज्ञ आरम्भ किया, विधिके अनुसार कर्म्म करनेवाले यज्ञ दक्ष ऋषियोंके जरिये यथारीति वह यज्ञ पूर्ण होने लगा । यज्ञका स्थान प्रकाशमान अग्नि और समित समूहसे परिपूरित, भ्राजमान सुवर्ण यज्ञकलशसे अलंकृत, मुख्य मुख्य देवताओंसे घिरकर ब्रह्मर्षियोंसे सुशोभित हुआ था । मैंने सुना है, यज्ञमें ऋषियोंके बीच आश्चर्य्य घटना हुई थी । उदित तारोंसे शोभित निर्म्मल आकाशमें जैसे चन्द्रमाका उदय होता है, वैसे ही कोई भूत अग्निको विक्षिप्त करके प्रकट हुआ । वह भूत नीलोत्पल दलके समान श्यामवर्ण ; उसके सब दांत तीक्ष्ण, उदर अत्यन्त क्षीण, आकार बहुत ऊंचा, तेजसे-युक्त और अनभिभवनीय था । उसके उठते ही पृथ्वी विचलित और तरङ्गमालाके सहित आवर्त्तयुक्त महोदधि क्षुभित हुआ, उत्पातजनक उल्कापात होने लगा । वृक्षोंकी सब शाखा टूट गयीं, समस्त दिशा कलुषित हुईं और अकल्याणयुक्त वायु बहने लगा । उस समय सब जीव भयके कारण बारम्बार दुःखित होने लगे । अनन्तर पितामह उस तुमुल कारण और अद्भुत भूतको उपस्थित देखकर देवता गन्धर्व्व तथा महर्षियोंसे यह वचन बोले, कि जगत्की रक्षा और असुरोंके बधके लिये मैंने इस बलवान असिनाम भूतको इसी तरह चिन्ता किया था । क्षण भरके अनन्तर भूत उस अद्भुत रूपको परित्याग करके उद्यत कालान्तकके समान तीक्ष्णधार तलवार रूपसे प्रकाशित हुआ । अनन्तर ब्रह्माने वृषभध्वज नीलकण्ठ रुद्र देवको वह अधर्म्म-वारण तीक्ष्ण अस्त्र प्रदान किया । महर्षियोंसे स्तूयमान अनन्त अहिमाधार भगवान रुद्रदेवने उस खड्गको ग्रहण करके दूसरा रूप धारण किया

उस समय उन्होंने चतुर्भुज होकर पृथ्वीपर स्थित होके मस्तकसे सूर्य्यको स्पर्श किया। और महालिङ्ग मूर्त्ति धारणकर ऊर्द्ध दृष्टि होकर मुखसे ज्वाला बाहर करने लगे। नील, पाण्डुर, लोहित आदि अनेक तरहके रूप बदलते हुए रुद्रने सुवर्ण तारसे खचित कृष्ण-लौन वस्त्र धारण किया। उनके माथेपर सूर्य्यके समान एक नेत्र प्रकट हुआ, तब काले और पीले वर्णवाले उनके दोनों नेत्र सुशोभित हुए। अनन्तर भगनेत्र हर महाबली पराक्रमी शूल-धारी महादेवने प्रलयकी अग्नि समान प्रकाश-मान तलवार ग्रहण करके बिजलीयुक्त बाद-लकी तरह दोनों बगल और अग्रभागमें धार-वाला विकूटयुक्त ढाल ग्रहण करके युद्धकी इच्छासे आकाशमें तलवार घुमाते हुए विविध मार्गसे भ्रमण करने लगे। हे भारत! उस समय रुद्रदेवके महाहास्य और निनाद करनेसे उनका भयङ्कर रूप प्रकाशित हुआ। रौद्र कर्म्म करनेवाले रुद्रदेवने युद्धके निमित्त वैसा रूपधारण किया, उसे सुनकर दानव लोग हर्षित होकर उनके सम्मुख दौड़े। वे सब जलते हुए अङ्गार, अयोमय क्षुरधारवाले सब शस्त्र और दूसरे घोर आयुधों तथा पत्थ-रोंकी वर्षा करने लगे; अनन्तर दानवोंकी सेना बलपूर्व्वक विध्वंश करनेवाले अच्युत रुद्र-देवको देखकर मोहित और विचलित हुई। वह अकेले ही तलवार ग्रहण करके द्रुतपदसे घूम रहे थे; तब असुर लोग उन्हें सहस्ररूपसे मालूम करने लगे। वह तृणसमूहमें पड़ी हुई दावानल अग्निकी भांति शत्रुओंके बीच छेदन भेदन, पीड़न, कृन्तन, विदारण और दाहन करते हुए भ्रमण करने लगे। महाबली दानव लोग तलवारके वेगसे छिन्नभिन्न होगये; किसीकी भुजा कटी, किसीकी गर्द्दन, किसीकी छाती और किसीके शिर कटके पृथ्वी पर गिर पड़े। कितनेही तलवारकी चोटसे पीड़ित होकर युद्धत्यागके आपसमें एक दूसरेके विषयमें आक्रोश करते हुए दशों दिशामें भाग गये। कोई भूगर्भ, कोई पर्व्वतके बीच, कोई कोई आकाशमार्ग और कोई जलके भीतर प्रविष्ट हुए। उस अत्यन्त दारुण कठोर संग्रामके समाप्त होने पर मांस और रुधिरमय कीचड़से युक्त पृथ्वीने अत्यन्त भयङ्कर मूर्त्ति धारण की। फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे युक्त पर्व्वत समूहकी तरह दानवोंके रुधिरपूरित मृत शरीरसे पृथ्वी भर गई। उस समय पृथ्वी रुधिरकी धारासे युक्त होकर मदविह्वल रुधिरसे भींगे हुए वस्त्रवाली श्यामा स्त्रीकी तरह शोभायमान हुई। रुद्रदेवने दानवोंको मारके जगतमें धर्म्म स्थापित करते हुए रौद्ररूप त्यागकर कल्याण युक्त शिव रूप धारण किया, अनन्तर सब देव-ताओं और महर्षियोंने आश्चर्य्यमय जयशब्दके जरिये महादेवकी पूजा की, अन्तमें भगवान रुद्रदेवने धर्म्मकी रक्षा करनेवाले विष्णुका सत्कार करके दानवोंके रुधिरसे भींगी हुई तलवार प्रदान की। हे तात! विष्णुने मरी-चिको, भगवान मरीचिने महर्षियोंको, मह-र्षियोंने महेन्द्रको, देवराजने लोकपालोंको, लोकपालोंने सूर्य्यपुत्र मनुको वह बहुत बड़ा खड्ग प्रदान किया; और उन्होंने मनुसे यह वचन कहा था,—कि तुम मनुष्योंके प्रभु हो; इससे इस धर्म्मगर्भ तलवारके जरिये प्रजासमू-हकी पालन करो। जिन्होंने शरीर और मनकी प्रीतिके निमित्त धर्म्मबन्धन अतिक्रम किया है, उन लोगोंको धर्म्म पूर्व्वक दण्ड देकर रक्षा करनी उचित है; इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करना उचित नहीं है। दण्ड चार प्रकारका है। दुष्ट-वचनसे निग्रह करना वाक्दण्ड है, सुवर्ण वसूल करना अर्थ दण्ड, शरीरकी अङ्ग-हानि करना शारीरिक दण्ड और अधिक अपराधके कारण बधरूपी प्राणदण्ड विहित है। तलवारका यह समस्त रूप दूर्व्वार अवहके

माने; प्रतिपाल्य पुरुषके व्यतिकर्मके कारण तलवारके इसी तरहसे सब रूप प्रमाणीकृत हुआ करते हैं।

अनन्तर मनुने लोकाधिपति निजपुत्र क्षुपको अभिषिक्त करके प्रजासमूहकी रक्षाके लिये वह तलवार प्रदान की; क्षुपसे वह इक्ष्वाकुको मिला; इक्ष्वाकुसे पुरूरवा, पुरूरवासे आयुने उसे पाया; आयुसे नहुष, नहुषसे ययाति, ययातिसे वह पुरुको मिला; पुरुसे अमूर्त्तरयस, उनसे राजा भूमिशय, भूमिशयसे दुष्मन्तपुत्र भरतने वह तलवार पाया; उनसे धर्मज्ञ राजा ऐलविलको मिला, ऐलविलसे राजा धुन्धुमार, धुन्धुमारसे काम्बोज, उनसे मुचकुन्दने पाई। मुचकुन्दसे मरुत, मरुतसे रैवत, रैवतसे युवनाश्व, युवनाश्वसे इक्ष्वाकु वंशीय रघु, उनसे प्रतापी हरिणाश्व हरिणाश्वसे सुनकने उस तलवारको पाया। सुनकसे धर्मात्मा उशीनर उशीनरसे यदुवंशीय भोज, भोजसे शिवि, शिविसे प्रतर्द्दनने उसे पाया; प्रतर्द्दनसे अष्टक, अष्टकसे पृषदश्व, पृषदश्वसे भरद्वाज, भरद्वाजसे द्रोण, द्रोणसे कृप और कृपसे भाइयोंके सहित तुमने इस परम तलवारको पाया है। इस असिका कृतिका नक्षत्र है, अग्नि देवता, रोहिणी गोत्र और रुद्रदेव परम गुरु हैं। हे पाण्डुपुत्र! सब लोग जिसे सदा कीर्त्तन करनेसे जयलाभ करते हैं, अत्यन्त गोपनीय असिके उन आठनामोंको मुझसे सुनो, असि, विशासन, खड्ग तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और कर्म्मपाल। हे माद्रीपुत्र! सब शास्त्रोंमें खड्गही प्रधान है; यह महेश्वर प्रणीत कहके पुराणमें निश्चित हुआ है। हे शत्रुदमन! पृथुराजने पहिले धनुष उत्पन्न किया और उसहीसे धर्मपूर्व्वक पृथ्वी पालन करते हुए अनेक शस्य दोहन किया था। हे माद्रीपुत्र! धनुषको भी ऋषि-प्रणीत कहके प्रमाण कर सकते हो। युद्ध जाननेवाले पुरुषोंको सदा खड्गकी पूजा करनी योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ! तलवारकी उत्पत्ति और संसर्ग विषयक यह प्रथम कल्प यथारीतिसे विस्तार-पूर्व्वक वर्णित हुआ। मनुष्य सदा इस उत्तम खड्गकी उत्पत्तिका विषय सुनकर इस लोकमें कीर्त्तिलाभ और परलोकमें अत्यन्त सुख भोग करते हैं।

१६६ अध्याय समाप्त।

---

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मदेव जब इतनी कथा कहके चुप हुए, तब युधिष्ठिरने घर आके विदुरके संग एकत्र वर्त्तमान चारों भाइयोंसे पूछा,—धर्म्म, अर्थ, काम इन तीनों विषयोंसे लोक व्यवहार चलता है; उसके बीच कौन उत्तम, कौन मध्यम और कौनसा निकृष्ट है, तथा काम क्रोध और लोभको जीतनेके लिये किस विषयमें चित्त लगाना चाहिये; आपलोग अच्छी तरह प्रसन्न होकर यह विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, अनन्तर अर्थ तत्वके जाननेवाले बुद्धिमान विदुर पहिले धर्म्मशास्त्रको स्मरण करके कहने लगे।

विदुर बोले, अनेक शास्त्रोंको पढ़ना, निज धर्म्मका आचरण करना; दान, श्रद्धा, यज्ञक्रिया, क्षमा, कपटहीनता, दीनोंके ऊपर दया, यथार्थ वचन और इन्द्रियनिग्रह, ये कईएक धर्म्मकी सम्पत्ति हैं; आप इन्हें धर्म्मको गति समझिये; आपका चित्त जिससे विचलित न हो,—धर्म्म और अर्थ इन सबका मूल है; मैं इन्हें एकही समझता हूं। ऋषि लोग धर्म्मके सहारे संसारसे पार हुए हैं, सब लोक धर्म्मसे ही प्रतिष्ठित हैं; देवताओंको धर्म्मसे ही वृद्धि हुई और धर्म्ममेंही अर्थ स्थित है। हे राजन्! पण्डित लोग धर्म्मको सब गुणोंके बीच श्रेष्ठ, अर्थको मध्यम और कामको कनिष्ठ कहा करते हैं; इसलिये स्थिर चित्तवाले पुरुष धर्म्मको मुख्य समझें। अपने विश-

समें जैसा आचरण किया जाता है, सब जीवोंके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, विदुरका वचन समाप्त होनेपर धर्म्म, अर्थके तत्वज्ञ अर्थशास्त्रके जाननेवाले पृथापुत्र अर्जुनने युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार वच्यमाण वचन कहना आरम्भ किया।

अर्जुन बोले, यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, इसलिये इसमें प्रवृत्ति विधायक कर्म्म ही मुख्य हैं, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और विविध शिल्पकर्म्मोंका व्यतिक्रम न करनेसे ही अर्थ होता है, मैंने सुना है, अर्थके बिना धर्म्म और काम स्थित नहीं हो सकते ; बिना अर्थसिद्धिके धर्म्म और काम निवृत्त होंगे ; इसलिये जैसे सब जीव प्रजापतिकी उपासना करते हैं, वैसे ही सत्कुलमें उत्पन्न पुरुष धनवान मनुष्यकी सदा सेवा किया करते हैं। जटा, मृगछाला धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय, सिरमुड़े और निष्ठावान् ब्रह्मचारी लोग भी अर्थके अभिलाषी होकर पृथक् पृथक् धर्म्मके अनुसार निवास करते हैं ; दूसरे गेरुए वस्त्र पहरके श्मश्रु ल लज्जाशील शान्त, सब तरहकी आसक्तिसे रहित होके और दूसरे कोई कोई पुरुष कुलरीतिको अवलम्बन करके निज निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हुए स्वर्ग का मजा किया करते हैं। आस्तिक और नास्तिक लोग परम संयममें रत होके अज्ञानके समान अर्थके प्रधान विषयको प्रकाशित करते हैं। जो सेवकोंको भोगसे और शत्रुओंको दण्डसे शासित करते, वेही धनवान हैं। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! यही मेरा अपना मत है, अब नकुल और सहदेव कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं ; इससे इनका वचन सुनिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मअर्थके जाननेवाले नकुल, सहदेव उत्तम वचन कहनेको उद्यत हुए। नकुल और सहदेव बोले, मनुष्य सोते बैठते और चलनेके समय विविध उपायसे अर्थागमकी चेष्टा करे। परम प्रिय दुर्लभ अर्थके प्राप्त होनेपर पुरुष इस लोकमें कामनाका फल भोगता है यह प्रत्यक्ष दीखता है ; इसलिये इसमें सन्देह नहीं है। धर्म्मके संग मिला हुआ अर्थ और अर्थके सहित धर्म्म अवश्य ही आपके विषयमें अमृतके समान है ; इस ही कारण यह हम लोगोंको सम्मत है। अर्थहीन मनुष्योंको काम्य वस्तुका भोग नहीं प्राप्त होता और धर्म्महीन पुरुषको धन नहीं मिलता ; इसलिये जो पुरुष धर्म्म और अर्थसे रहित हुआ है, सब लोग उससे व्याकुल होते हैं, इसलिये स्थिरचित्तवाले पुरुषोंको धर्म्मको मुख्य मानके अर्थ साधन करना योग्य है, ऐसा होनेसे विश्वस्त जीवोंके बीच सब विश्वस्त रूपसे कल्पित होता है। पहिले धर्म्मका आचरण करे। तिसके अनन्तर धर्म्मयुक्त अर्थ प्राप्त करे, पीछे काम सेवन करे ; क्या कि जिसके प्रयोजन सिद्ध हुए हैं, उसके लिये कामही श्रेष्ठ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नकुल, सहदेव ऐसा कहके चुप हुए। तब भीमसेन वच्यमाण वचन कहने लगे।

भीमसेन बोले, निष्काम पुरुष अर्थकी इच्छा नहीं करते, कामहीन पुरुष धर्म्मके अभिलाषी नहीं होते और जिसे काम नहीं है वह किसी विषयकी कामना भी नहीं करता, इसलिये कामही उत्तम है। ऋषि लोग कामनाके कारण फल मूल पलाश आदि तथा वायु भक्षण करके अत्यन्त सावधान होके तपस्यामें रत हुआ करते हैं। दूसरे लोग स्वाध्यायशील होके भी कामनाके कारण वेद वेदान्त आदि शास्त्रोंके अनुशीलनमें विरत होते हैं। कोई कोई श्रद्धा सहित यज्ञ कर्म्ममें कामनाके कारणसे दान करते हैं। बनिये, कृषक, पशुपालक, कारुकर, शिल्पकार और जो लोग देवकार्य किया करते हैं, वे सभी कामनाके अनुसार कार्य्योंमें नियुक्त होते हैं, कोई कोई मनुष्य

कामना युक्त होकर समुद्रमें प्रवेश करते हैं। कामके रूप अनेक तरहके हैं ; सब पदार्थ ही कामसे व्याप्त होरहे हैं। हे महाराज ! कामसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है,—न था और न होगा ; यही सार पदार्थ है ; धर्म्म और अर्थ इसहीमें स्थित हो रहे हैं। जैसे दहीसे माखन, तिलसे तेल, मट्ठेसे घृत, काठसे फूल और फल तथा पुष्पसे मधु श्रेष्ठ है ; वैसे ही धर्म्म और अर्थसे काम उत्तम है ; काम ही धर्म्म-अर्थ स्वरूप है। कामना न रहती तो ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको सुवर्ण और धन दान न करते और लोगोंकी अनेक तरहकी चेष्टा सिद्ध न होती ; इसलिये धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंके बीच कामही प्रधान रूपसे दीख पड़ता है। हे राजन् ! आप उत्तम वेषसे भूषित होकर मदसे मतवाली खूबसूरत स्त्रियोंके सङ्ग कामनानुसार क्रीड़ा करिये ; हमारे लिये कामही उत्तम है। हे धर्म्मराज ! मैंने अच्छी तरह विचार करके बुद्धिसे यह निश्चय किया है ; इसलिये आपको इस विषयके विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मेरा यह नृशंस वचन युक्ति रहित नहीं है, इसलिये साधुओंसे यह संग्रहीत हुआ करता है। धर्म्म, अर्थ और कामको समान रीतिसे सेवन करना योग्य है ; जो पुरुष एकको सेवन करता है, वह जघन्य है, धर्म्म और अर्थ दोनोंको सेवन करनेवाला पुरुष मध्यम है ; और जो बुद्धिमान् हृदयके सहित चन्दन चर्चित और माला तथा आभूषणोंसे भूषित होकर धर्म्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गोंकी सेवामें रत होता है, वही उत्तम मनुष्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भीमसेन वीरोंके निकट संक्षेप और विस्तार युक्त वचनसे अपना अभिप्राय प्रकट करके चुपहुए। तब शास्त्र जाननेवाले धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर विदुर आदिकी बातोंको मुहूर्त्त भरके बीच भली भांति विचारके सत्यको धारण करके कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, आप लोगोंने धर्म्मशास्त्रोंको निर्णय करके सब प्रमाणोंको निःसन्देह मालूम किये हैं। मैंने जो जाननेकी इच्छासे कहा था, उसका सिद्धान्त वचन सुना ; आप लोगोंने जो कहा, वह अवश्यही निश्चित वचन है, परन्तु अब मैं कुछ कहता हूं, सावधानचित्तसे सुनिये, जो मनुष्य पाप, पुण्य, धर्म्म, अर्थ और काममें रत नहीं हैं, जो दोष रहित और सुवर्ण तथा लोष्ट्रमें समदर्शी हैं ; वे सुख, दुःख और अर्थ-सिद्धिसे छूट जातेहैं। जातिजरा और जराविकारसेयुक्त मनुष्य लोग बार बार सुख दुःख आदिके जरिये सावधान होकर मोक्षकी प्रशंसा किया करते हैं ; परन्तु हम मोक्षका विषय कुछ भी नहीं जानते। भगवान् स्वयम्भूने कहा है, कि राग, द्वेष और स्नेहसेयुक्त पुरुषोंको मुक्ति नहीं होती ; ममताहीन पण्डित लोग मुक्ति-लाभ करते हैं ; इसलिये प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें आसक्त न होवे। मोक्षप्राप्तिका यही उत्तम उपाय है, कि मेरे इच्छानुसार प्रवृत्त होनेपर भी विधाता मुझे जिस विषयमें जिस तरह नियुक्त करता है, वैसा ही करता हूं ; विधाता ही सब प्राणियोंको समस्त विषयोंमें नियुक्त करता है ; इसलिये सबको जानना चाहिये, कि विधाता ही बलवान् है। इसे जानना उचित है, कि कर्म्मसे अप्राप्य अर्थ नहीं मिलता ; जो अवश्य होनहार है, वही प्राप्त होता है ; धर्म्म, अर्थ, काम ; इन त्रिवर्गोंसे हीन मनुष्यभी अर्थ लाभ करता है ; इस लिये सब लोकोंके हितके लिये विधाताने इस विषयको अत्यन्त गोपनीय कर रखा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भीमसेन आदि युधिष्ठिरका वह सब युक्तियुक्त मनोहर वचन सुनके हर्षित हुए और हाथ जोड़के उस कुरुप्रवीर युधिष्ठिरको प्रणाम किया। हे राजन् ! वे सब राजालोग उत्तम वर्णाक्षरोंसे विभूषित युधिष्ठिरके कही हुई कण्टक रहित कथा सुनके

अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे। वीर्य्यवान् महात्मा धर्म्मपुत्रने भी उन लोगोंको उस विषयमें विश्वास देखकर प्रशंसा की। अनन्तर वह सावधान चित्तवाले भीष्मदेवके समीप आके फिर परम धर्म्मका विषय पूछने लगे।

१६७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान पितामह! आप कौरवोंको प्रतिदिन बढ़ाया करते है, इस लिये मैं और भी कुछ पूछता हूं उसे वर्णन करिये। कैसे मनुष्य प्रियदर्शन होते हैं? किसके सङ्ग परम प्रीति होती है। परिणाम और वर्त्तमान कालमें कौनसे लोग हितकारी हुआ करते हैं। आप मेरे समीप इन सब पुरुषोंका विषय वर्णन करिये। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि बहुतसा धन सम्बन्धी और बान्धव सुहृदोंके समान नहीं होसकता। हितकारी वचन सुने और हितकर कार्य्योंको करे, ऐसा मित्र अत्यन्त दुर्लभ है। हे धार्म्मिक प्रवर! आप यह सब वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! जिन पुरुषोंके साथ मित्रता करनी चाहिये और जिनके साथ मित्रता करनी योग्य नहीं है, उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं सुनिये। हे नरनाथ! जो लोग लोभी, क्रूर, कर्म्मत्यागी, धूर्त्त, शठ नीचाशय, पापी, सबसे शङ्का करनेवाले, आलसी, दीर्घसूत्री, कोमलताहीन, लोकनिन्दित, गुरुस्त्री हरनेवाले, विपदमें पड़े हुए बान्धवोंको त्यागनेवाले, दुष्टात्मा, लज्जारहित, सबतरहसे पापदर्शी, नास्तिक, वेदनिन्दक, जनसमाजमें स्वेच्छाचारी तथा इन्द्रियोंके वशमें होनेवाले लोगोंसे द्वेष करनेवाले कार्य्यके समय असावधान, पिशुन, नष्टबुद्धि, मत्सरी, पाप करनेवाले, अशुद्धचित्तवाले, नृशंस कितव, जो पुरुष सदा मित्रोंका अपकार और दूसरेके अर्थकी इच्छा करते हैं, जो नीचबुद्धि शक्तिके अनुसार दान करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते जो पुरुष सदा मित्रोंके विषयमें असन्तोष प्रकाशित करते हैं; जो चञ्चल चित्तवाला मनुष्य बिना कारणके ही क्रोध और अकस्मात विरोध किया करता है; जो पापी हितैषी मित्रोंको शीघ्र परित्याग करता, जो मित्रद्रोही मूढ़ पुरुष थोड़ी बुराई अथवा अज्ञानके कारण कोई कार्य्य करके उसही समय मित्रोंकी उपासना किया करता है; जो पुरुष मित्रमुख शत्रु है, जो विपरीतदृष्टि अथवा कुटिलदर्शी है, जो हितमें रत मनुष्यको परित्याग करता है, सुरापीनेवाला शत्रुता करनेवाला, क्रुद्ध, दया रहित, दूसरेसे डाह करनेवाला मित्रद्रोही, प्राणिहिंसामें रत, कृतघ्न, छिद्र खोजनेवाला और जो पुरुष जनसमाजमें अधम रूपसे विख्यात हैं, उनके साथ कभी मित्रता करनी उचित नहीं है।

अब जिसके साथ मित्रता करनी उचित है, वह मुझसे सुनिये। जो लोग सत्कुलमें उत्पन्न हुए वचन युक्त, ज्ञान-विज्ञानके जाननेवाले, रूपवान, गुणवान्, अलुब्ध, परिश्रमी, उत्तम मित्र, कृतज्ञ, सर्व्वज्ञ, लोभहीन, सदा कसरत करनेवाले, वंशधर, धुरन्धर, दोषरहित और जनसमाजमें विख्यात हैं वे सब मनुष्य राजाओंके ग्राह्य हुआ करते हैं; जो लोग शक्तिके अनुसार सदाचारमें रत होकर सन्तुष्ट होते हैं, बिना कारणके क्रोध नहीं करते, वे सब अर्थ कोविद लोग मनही मन विरक्त होनेपर भी दूषित नहीं होते; वे स्वयं कष्ट सहके भी मित्रका कार्य्य सिद्ध करते हैं; बहुतसे रङ्ग जैसे वस्त्रको विरक्त नहीं करते, वैसेही वे लोग मित्रोंसे विरक्त नहीं होते; क्रोधके वशमें होकर निर्द्धन और लोभ मोहके कारण स्त्रियोंको दुःखित नहीं करते; वे लोग प्रसन्न हृदय, विश्वासी, धर्म्म करनेवाले सुवर्ण और लोष्ट्रमें समदर्शी और सुहृदोंके विषयमें दृढ़-

वृद्धि हुआ करते हैं, जो मनुष्य शास्त्रज्ञानका अभिमान और निज विभूषण त्यागके प्रजाके सङ्ग सदा स्वामीके कार्य्यमें तत्पर होते हैं, वैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ जो राजा मित्रता करता है, उसका राज्य चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान बढ़ता है, सदा शास्त्रमें रत, क्रोध जीतनेवाले युद्धमें पराक्रमी सत्वंशमें उत्पन्न, शीलयुक्त, गुणवान शूर पुरुषोंके सङ्ग मित्रता करनी उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिले मैंने जिन लोगोंको दोषयुक्त कहा, कृतघ्न और मित्रघाती पुरुष उन सबसे भी अधम हैं; यह निश्चय जान रखो, कि दुराचारियोंको सब लोगोंको परित्याग करना योग्य है।

युधिष्ठिर बोले, आपने जो मित्रद्रोही और कृतघ्नका विषय कहा, मैं उसका पूरा इतिहास विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे मेरे समीप उसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! उत्तर दिशामें म्लेच्छ-देशके बीच जो घटना हुई थी; मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे निकट वह प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं सुनो। मध्यदेशीय गौतम नाम किसी ब्राह्मणने देवकर्म्म रहित एक गांव देख कर भीख मांगनेकी इच्छासे उसमें प्रवेश किया वहां सब वर्णोंके विषयको जाननेवाला ब्रह्मनिष्ठ, सत्यसन्ध, दानमें रत एक धनवान डकैत वास करता था। ब्राह्मणने उसके स्थानमें पहुंचके रहनेके लिये घर और वार्षिक भिक्षा मांगी। डाकूने उस ब्राह्मणके योग्य नया वस्त्र और एक पतिहीन युवा स्त्री दान की। हे राजन्! उस समय ब्राह्मण डाकूके समीप वह सब पाके प्रसन्न-चित्त होकर उस स्थानमें स्त्रीके सहित परम सुखसे समय बिताने और उसके कुटुम्बकी सहायता करने लगा; उसने उस समृद्धियुक्त डकैतके स्थानमें कई वर्ष तक वास किया; क्रमसे बाण वेधनेमें वह अत्यन्त यत्नवान हुआ। हे राजन्! वह डाकुओंकी तरह सदा वनचारी हंसोंको मारने लगा। गौतम धीरे धीरे हिंसायुक्त, दयाहीन और सदा प्राणियोंके बधमें रत रहनेसे दस्युओंके सहवासके कारण उनके समान होगया। उस समय उसी भांति अनेक पक्षियोंको मारते और डकैतके घरमें वास करते हुए उसको कई महीने व्यतीत हुआ। अनन्तर जटाचीर मृगछाल धारण करनेवाले, स्वाध्यायमें रत, पवित्र, विनययुक्त, मिताहारी, ब्रह्मनिष्ठ और वेदपारग दूसरे एक ब्राह्मणने उस स्थानमें आगमन किया। वह ब्रह्मचारी गौतमके स्वदेशीय और उसके अत्यन्त प्यारे तथा सखा थे; गौतम डाकुओंके जिस गांवमें वास करता था, वह भी उस ही जगह उपस्थित हुए। वह शूद्रका अन्न नहीं लेते थे, इस ही कारण डाकुओंसे परिपूरित उस गांवमें ब्राह्मणका घर खोजते हुए घूमने लगे। अनन्तर उस विप्रने गौतमके गृहमें प्रवेश किया गौतम भी उस समय वहां उपस्थित हुआ; इससे परस्पर भेंट हुई। हे धर्मराज! नये ब्राह्मणने गौतमको कन्धेपर हंसका भार और हाथमें धनुष-बाण लिये रुधिर पूरित शरीरसे राक्षसकी तरह घरके दर्वाजेपर आया हुआ देखकर पहिलेकी पहचानके कारण उसे चीन्हकर यह वचन कहा, कि तुम वंशके धुरन्धर विप्र होके मोहके वशमें पड़के यह कौनसा कार्य्य कर रहे हो; मध्यदेशके विख्यात् ब्राह्मण होके किस कारण दस्यु भावको प्राप्त हुए हो; तुम अपने वेदपारग पूर्व्व ज्ञाति समूहका स्मरण करो, तुम उन्हींके वंशमें जन्म लेके ऐसे कुलाङ्गार हुए हो। हे द्विज! तुम स्वयं अपनेको जानके और सत्यशील, अध्ययन दम तथा दयाको स्मरण करके इस निवास स्थानको छोड़ो। हे राजन्! अनन्तर गौतमने उस हितैषी मित्रका ऐसा वचन सुनके और उनकी बातोंको विशेषरूपसे निश्चय करके आर्त्त पुरुषकी तरह उत्तर दिया कि, हे द्विजसत्तम!

मैं धनहीन और वेदज्ञानसे रहित हूं ; इसही कारण धन संग्रह करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं तुम ऐसाही समझो । हे विप्रवर ! आज मैं आपको देखके कृतार्थ हुआ, आजकी रात आप इसही स्थानमें वास करिये ; कल्ह हम दोनों साथही चलेंगे । दयालु ब्राह्मणने वहां पर किसी वस्तुको स्पर्श न करके गौतमके वचनके अनुसार उस रातको वहांपर ही वास किया । वह भूखे थे, इससे गौतमने उन्हें भोजन करानेके लिये बार बार यत्न किया, परन्तु भोजन करनेमें उनको रुचि न हुई ।

१६८ अध्याय समाप्त ।

---

भीष्म बोले, हे भारत ! रात बीतने पर भोरके समय उस ब्राह्मणके जानेके अनन्तर गौतमने घरसे निकलके समुद्रकी ओर गमन किया । चलते चलते रास्तेमें समुद्रकी ओर जानेवाले बनियोंको देखा, फिर वह उन लोगोंके साथ समुद्रकी ओर जाने लगा । हे राजन् ! किसी पर्व्वतकी कन्दरामें स्थित मत-वाले हाथियोंके जरिये वह बनियोंका समूह अधिकांश नष्ट हुआ । ब्राह्मण उस समय किसी तरह विपदसे छूटके भयसे तथा जीवनकी इच्छा करके उत्तर दिशाकी ओर दौड़ा । वह अर्थसे भ्रष्ट और उक्त स्थानसे च्युत होकर अकेलाही कादरकी तरह बनमें घूमने लगा । अनन्तर वह समुद्रकी ओर जानेका उत्तम मार्ग न पाकर एक रमणीय बनमें उपस्थित हुआ । नन्दनबनके समान यक्ष किन्नरोंसे सेवित वह बन सब ऋतुओंमें फलसेयुक्त फूला हुआ आमके बनसे शोभित और शाल, ताल, तमाल, कालागुरु और उत्तम चन्दनके वृक्षोंसे अलंकृत था । उस समय वहां सुन्दर और सुगन्धियुक्त पहाड़की शिखरके सब छिद्रोंमें भारुण्डनाम विख्यात मनुष्यके रूप- समान पक्षियोंके समूह और पहाड़से समुद्र तक जानेवाले भूलिङ्ग शकुन आदि पक्षी किलोल कर रहे थे । गौतम उन सब पक्षियोंके मनो-हर शब्दोंको सुनते हुए गमन करने लगा । हे महाराज ! अनन्तर उसने अत्यन्त रमणीय सिकताचित स्वर्गके समान सुखदायक किसी विचित्र समतल स्थानमे श्रीसंयुक्त मण्डलाकार एक वृहत् बटवृक्ष देखा । उसके अनुरूप सब शाखा मानो छत्रके समान हुई थीं, उसके मूल स्थलमें चन्दन-जल छिड़का हुआ था । गौतम उस समय पितामहकी सभा समान, दिव्य फूलोंसे शोभित, श्रीयुक्त, अत्यन्त उत्तम मनोहर वृक्षका स्थान देखकर परम प्रसन्न हुआ ; वह उस सुरपुर समान फूले हुए वृक्षोंसे परिपूरित पवित्र स्थानको पाके हर्षपूर्व्वक वहां बैठ गया ।

हे कुन्तीपुत्र महाराज ! गौतमके वहां बैठने पर सुख स्पर्शयुक्त शुभवायु उसके सब अंगोंको प्रफुल्लित करते हुए पुष्प समूहोंको स्पर्श करके बहने लगा । ब्राह्मण पवित्र वायुके लगनेसे श्रम-रहित होके परम सुखसे सोगया, सूर्य्यने भी अस्ताचलपर गमन किया । अनन्तर सूर्य्यके अस्त तथा सन्ध्याकालके उपस्थित होने पर नाड़ीजङ्घ नामसे विख्यात् पितामहके प्रियमित्र कश्यप-पुत्र महाबुद्धिमान पक्षीप्रवर बकराज ब्रह्मलोकसे निज स्थानमें आये । देव-समान प्रभायुक्त देवकन्यापुत्र श्रीमान् विद्वान् निरूपम बकराज पृथ्वीपर धर्म्मराज नामसे भी विख्यात थे ; उनका सब शरीर सूर्य्यके समान सफेद भूषणोंसे विभूषित था, वह देवगर्भसे उत्पन्न हुए पक्षिराज उस समय सुन्दरतासे प्रकाशित थे, गौतम उस पक्षिश्रेष्ठको आया हुआ देखके विस्मययुक्त हुआ, वह भूख और घामसे अत्यन्त व्याकुल था, इस कारण मारनेकी इच्छासे उसे देखने लगा ।

राजधर्म्मा बोले, हे विप्र ! आपका मङ्गल तो है ? भाग्यसे ही आप मेरे स्थानपर उपस्थित

हुए हैं। सूर्य्य अस्त और सन्ध्याका समय उप-स्थित हुआ, आप अनिन्दित प्रिय अतिथि कृपापूर्व्वक मेरे स्थान आये हैं, इसलिये आज इसी स्थानपर विधिपूर्व्वक सत्कृत होकर निवास करिये, कलह सवेरे निज स्थानपर जाइयेगा।

१६८ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! उस समय गौतम उस मधुर वचनको सुनकर विस्मित और कौतू-हल युक्त होकर राजधर्म्माको देखने लगा।

राजधर्म्मा बोले, हे द्विजवर! मैं कश्यपका पुत्र हूं, दाचायणी मेरी माता है; आप गुण-वान अतिथि हैं, आपका मङ्गल तो है?

भीष्म बोले, अनन्तर कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उस ब्राह्मणका विधिपूर्व्वक सत्कार करके शाल पुष्पमय दिव्य आसन प्रदान किया, भागीरथी गङ्गामें जो सब मछलियां विचरती हैं उन्हें और दूसरी पीवर मछलियां तथा अत्यन्त जलती हुई अग्नि गौतम अतिथिके लिये ला दी। ब्राह्मण भोजन करके प्रसन्न हुआ, महातपस्वी बकराज उसकी थकावट दूर होनेके लिये अपने दोनों पङ्खोंसे उसे वायु करने लगे, अनन्तर वह परिश्रम रहित होकर बैठा, तब राजधर्म्माने उसका नाम और गोत्र पूछा। वह "मैं गौतम हूं"—इतना ही कहके और कुछ न बोला, फिर पचिराजने उसे दिव्य फूलोंसे सुवासित सुगन्धमय पत्तोंसे युक्त दिव्य शय्या दी; वह उसपर परम सुखसे सोया। अनन्तर जब गौतम शय्यासे उठा, तब कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उसके आगमनका प्रयोजन पूछा। हे भारत! गौतम उनसे बोला, हे महाबुद्धिमान! मैं अत्यन्त दरिद्र हूं, इसलिये धनसञ्चय करनेके वास्ते समुद्रकी ओर जानेकी इच्छा की है।

राजधर्म्मा प्रसन्न होकर उससे बोले, हे द्विजवर! आप आतुर न होइये कृतकार्य्य होकर धन-सञ्चयके सहित घर जाइये। बृह-स्पतिके मतके अनुसार परम्पर, दैव, काम्य और मैत्र भेदसे अर्थ सिद्ध चार प्रकारकी है; इस समय मैं तुम्हारा मित्र हुआ हूं और तुम्हारे ऊपर मेरी सुहृदता उत्पन्न हुई है; इससे तुम जिस तरह धनवान् होगे, मैं उसमें यत्नवान् होऊंगा। अनन्तर पक्षिराजने भोरके समय गौतमको सुखसे बैठा हुआ देखके यह वचन बोले, हे प्रियदर्शन! तुम इस मार्गसे जाइये, अवश्य ही कृतकार्य्य होगे; यहांसे तीन योजन जाने पर विरूपाक्ष नामसे विख्यात महाबली पराक्रमी मेरे मित्र एक राक्षस राजको देखोगे, हे विप्र! तुम मेरे वचनके अनु-सार उनके समीप जाओ, वह तुम्हें निःसन्देह सब अभिलषित वस्तु दान करेंगे।

हे धर्म्मराज! गौतम पक्षिराजका ऐसा वचन सुन, इच्छानुसार अमृत समान फलोंको खाकर सावधान होके चलने लगा। महाराज! वह उस मार्गमें अगर, चन्दन और भोजपत्रोंसे सुन्दर वनोंसे होता हुआ शीघ्रताके सहित जाने लगा। अनन्तर वह शत्र-तोरण सम्पन्न पहाड़की दीवार और विप्रयुक्त शैलयन्त्रोंसे परिपूरित मेरुव्रज नाम नगरमें पहुंचा। हे राजन्! वह वहां पहुंचके बुद्धिमान् राक्षस-राजके प्रिय मित्रके भेजनेसे आया हूं, कहके प्रिय अतिथि रूपसे मालूम हुआ। हे युधिष्ठिर! राक्षसराजने अपने दूतोंसे कहा, कि नगरके दर्वाजेसे गौतमको शीघ्र ले आओ; शीघ्रता करनेवाले राजदूतोंने स्वामीकी आज्ञा पाते ही नगरके द्वारपर उपस्थित होकर गौतमका नाम लेकर उसे बुलाया। हे महाराज! वे सब दूत उस समय ब्राह्मणसे बोले, तुम शीघ्रता करो, जल्दी चलो; राजा तुम्हें देखनेकी इच्छा करता है; विरूपाक्ष नाम राक्षसराज तुम्हें देखनेके लिये आतुर होरहे हैं; इसलिये जल्दी आओ। अनन्तर गौतम ब्राह्मण भयभीत तथा

उस परमसम्पत्तिको देखकर अत्यन्त विस्मित होके राक्षसराजके दर्शनकी इच्छा करता हुआ, दूतोंके सङ्ग शीघ्रही राजमन्दिरमें उपस्थित हुआ।

१७० अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, अनन्तर गौतम राक्षसराजको विदित होकर उसके रमणीय मन्दिरमें प्रवेश करते ही उससे सत्कार प्राप्त करके सुन्दर आसनपर बैठा राजाने उसका गोत्र, आचार, वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य्यका विषय पूछा; उसने केवल गोत्र बताया और कुछ भी नहीं कहा। राक्षसराजने उस ब्रह्मतेज रहित स्वाध्याय हीन गोत्र मात्रके जाननेवाले ब्राह्मणका निवास पूछा। राक्षस बोला, हे विप्र! तुम्हारा निवास कहां है, तुमने किस गोत्रमें विवाह किया है, डरो मत, सत्य कहो; निशङ्क चित्तसे विश्वास करो।

गौतम बोला, मैंने मध्यदेशमें जन्म लिया इस समय डाकूके घर वास करता हूं; एक विधवा शूद्रासे विवाह किया है, यह तुम्हारे निकट यथार्थ कहा।

भीष्म बोले, अनन्तर राक्षसराजने विमर्षयुक्त होके मनही मन चिन्ता की, कि किस तरह यह कार्य्य सिद्ध होगा, किस प्रकार मेरा सुकृत सञ्चय हो सकेगा। यह केवल जातिका ब्राह्मण है, महात्मा बकराजका मित्र है, इसीसे उन्होंने इसे मेरे पास भेजा है; वह सदा मेरे आश्रित, भ्राता, बान्धव और हृदयसे सखा हैं; इसलिये मैं उनका प्रिय कार्य्य सिद्ध करूंगा। आज कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन मैं सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराऊंगा, यह भी उनके साथ भोजन करेगा; तब इसे धन दान करूंगा। आज पुण्यतिथि है, यह भी अतिथि होकर आया है; दानके निमित्त संकल्पा हुआ धन भी उपस्थित है; फिर अब कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। राक्षसराजके ऐसा विचार करनेके अनन्तर पाटम्बरधारी स्नात और चन्दन आदिसे अलंकृत सहस्र विद्वान् विप्र उसके गृहपर उपस्थित हुए। हे महाराज! विरूपाक्षने आये हुए उन ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक यथायोग्य सत्कार किया; उनकी आज्ञाके अनुसार सेवकोंने भूमिपर कुशके आसन बिछा दिये। ब्राह्मणलोग राक्षसराजसे सत्कार पाके आसनोंपर बैठ गये, तब राजाने तिल, दाभ और जलसे उनकी पूजा की। महाराज! विश्वदेव पितर और अग्निमूर्त्तिस्वरूप सदाचारी ब्राह्मणलोग चन्दन चर्चित फलमालासे युक्त और भलीभांति पूजित होकर सुधाकर समूहकी तरह शोभित हुए। अनन्तर राक्षसराजने ब्राह्मणोंको घृत और मधु युक्त उत्तम अन्नोंसे भरे हुए हीराजटित निर्म्मल सुवर्ण पात्र प्रदान किया। हर वर्ष आषाढ़ी और माघीपूर्णमासीको बहुतेरे ब्राह्मण उसके स्थानमें इच्छानुसार उत्तम भोजन पाते थे; मैंने ऐसा सुना है, कि विशेषकरके शरत् ऋतुके बीतनेपर कार्तिककी पूर्णमासीको राक्षसराज ब्राह्मणोंको इसी तरह भोजन कराके बहुतसे रत्न दान किया करता था। जो हो, ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकने पर उन्हें दक्षिणा देनेके निमित्त महाबलवान् विरूपाक्षने सोने, चांदी, मणि, मोती, महामूल्यवान् हीरे, प्रवाल और राङ्कव आदि रत्नोंके ढेर मंगाके कहा, हे द्विजसत्तमो! आपलोग इच्छा और उत्साहके अनुसार इन रत्नोंको लेके जिसने जिसमें भोजन किया है; वह उस ही पात्रको लेकर अपने अपने घर जावें। महात्मा राक्षसराजके ऐसा कहनेपर पवित्र वस्त्रवाले माननीय ब्राह्मणोंने इच्छानुसार उन सब रत्नोंको ग्रहण किया और पवित्र रत्नोंसे पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजन्! अनन्तर राक्षसराजने अनेक देशोंसे आये हुए राक्षसोंको निषेध करके उन ब्राह्म-

पोंसे फिर कहा, हे ब्राह्मणलोगो ! आज एक दिनके लिये इस स्थानमें आपलोगोंको राक्षसोंसे कुछ भय नहीं है ; इसलिये आपलोग आनन्दित होकर शीघ्रही अपने अभिलषित देशोंमें जाइये। अनन्तर ब्राह्मणलोग निज निज दिशाकी ओर दौड़े ; गौतम भी शीघ्रताके सहित सुवर्णभार उठाके अत्यन्त कष्टसे ढोता हुआ पूर्व्वोक्त बटवृक्षके निकट उपस्थित हुआ और परिश्रमसे अत्यन्त थककर तथा भूखा होके वहां बैठ गया। हे धर्मराज ! अनन्तर मित्रवत्सल पक्षिश्रेष्ठ राजधर्म्माने गौतमको स्वागत प्रश्नसे अभिनन्दित करते हुए उसके समीप गये और अपने दोनों पङ्खोंको डुलाकर उसकी थकावट दूर करने लगे ; फिर बुद्धिमान् पक्षीने उसका यथा उचित सत्कार करके भोजनकी सामग्री ला दी। गौतम उस समय परिश्रम रहित होके भोजन करके सोचने लगा, कि "मैंने लोभ और मोहके वशमें होकर बहुतसा सुवर्ण भार ग्रहण किया है, मुझे बहुत दूर जाना पड़ेगा ; रस्तेमें प्राणधारणके लिये भोजनकी कुछ भी सामग्री नहीं है ; इससे किस तरह प्राण धारण करूंगा।" हे पुरुषप्रवर ! अनन्तर कृतघ्न ब्राह्मणने मार्गमें जानेके समय खाने योग्य कुछ भी वस्तु सङ्गमें न देखकर मनही मन ऐसाही सोचा, कि यह मांसराशि बकराज मेरे बगलमें स्थित है, इसेही मारके ग्रहण करके शीघ्रताके सहित वेग पूर्व्वक गमन करूंगा।

१७१ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, पक्षिराज बटवृक्षके निकट ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त वायुकी सहायतासे युक्त महा अर्च्चिमान् अग्नि स्थापित की थी उन्होंने विश्वास पूर्व्वक उसके निकटमें ही शयन किया। दुष्टात्मा कृतघ्न ब्राह्मणने उन्हें मारनेकी इच्छासे उनके अगाड़ी सोया। अनन्तर उस दुष्टात्माने उस विश्वासी बकराजको जलते हुए अङ्गारसे मार डाला ; मारके हर्षित हुआ, पाप अथवा दोष नहीं देखा। अनन्तर उसने उस मृत पक्षीको पङ्खहीन तथा लोम रहित करके आगके बीच पकाया। पकानेके बाद उस पक्षिमांस और सुवर्णको लेके अत्यन्त जलदी वेगपूर्व्वक जाने लगा।

दूसरे दिन राक्षसराज विरूपाक्षने निज पुत्रको सम्बोधन करके कहा, हे पुत्र ! आज मैंने खगवर राजधर्म्माको नहीं देखा वह प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्माकी वन्दना करने जाया करते हैं ; परन्तु मुझे बिना देखे कभी घर नहीं जाते थे। दो सन्ध्या और दो रात्रि बीत गई, वह मेरे स्थानपर नहीं आये ; इसलिये मेरा मन प्रसन्न नहीं होता है ; वह सुहृत् कहां हैं, उनकी खोज करो। वेदज्ञानसे हीन ब्रह्मवर्च्चस रहित, हिंसामें रत वह अधम ब्राह्मण वहां गया है, वह उनका वध कर सकता है. मुझे ऐसीही शङ्का होरही है ; मैंने इङ्गितसे जान लिया है, कि गौतम अत्यन्त दुराचारी, नीचबुद्धि, निर्दयी, दारुण आकृति, और दस्युओंकी तरह अधम प्रकृतिवाला है. वह उस स्थानपर गया है ; इसही लिये मेरा मन व्याकुल होरहा है। हे पुत्र ! इससे तुम शीघ्रही यहांसे राजधर्म्माके स्थानपर जाके मालूम करो, कि वे शुद्ध स्वभाववाले सुहृद जीवित हैं, वा नहीं। बुद्धिशक्तिसे युक्त राक्षसराजका पुत्र पिताका वचन सुनकर शीघ्रताके सहित राक्षसोंको सङ्ग लेकर बट वृक्षके निकट गया और जाके वहांपर राजधर्म्माकी हड्डी देखी। उसे देखके वह अत्यन्त दुःखित होकर रोता हुआ शक्तिके अनुसार शीघ्रताके सहित गौतमको पकड़नेके लिये दौड़ा। अनन्तर राक्षसोंने बहुत दूर जाके पङ्ख, हड्डी और चरण रहित राजधर्म्माके शरीरके सहित गौतमको पकड़ा ; उसे पकड़के उन

लोगोंने शीघ्रताके सहित मेरुव्रज नगरमें आके राजाके समीप राजधर्म्माका मृत शरीर और पाप कृतघ्न गौतमको उपस्थित किया। राजा-पुरोहित तथा मन्त्रियोंके सहित उसे देखकर रोने लगे, राजभवनमें बहुतही आर्त्तनाद उत्पन्न हुआ; नगरके बीच बालक स्त्री सबका चित्त व्याकुल होगया। अनन्तर राक्षसराजने पुत्रको आज्ञा दी, कि "इस पापीका शीघ्र वध करो"—और ये सब राक्षस लोग इच्छानुसार इसका मांस भक्षण करके सन्तुष्ट होवें। हे राक्षस-लोगो! मेरे विचारमें ऐसा आता है, कि तुम-लोग इसी समय इस पापाचारी पापकर्म्म कर-नेवाले पापमें रत पापात्माका वध करो। घोर पराक्रमी राक्षसोंने राक्षसेन्द्रका ऐसा वचन सुनके उस पापीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। महाराज! उन सब राक्षसोंने शिर नीचा करके राक्षसराजसे कहा। इस अधम मनु-ष्यको भक्षण करनेके लिये इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपिये, इसका पापमय शरीर भक्षण करनेके वास्ते हम लोगोंको आज्ञा देना आपको उचित नहीं है। राक्षसराजने निशा-चरोंके वचनमें सम्मत होके उनसे कहा, हे राक्षसलोगो! इस कृतघ्नको इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपो। शूल, पट्टिशधारी राक्ष-सोंने स्वामीकी आज्ञा पातेही उस पापीको टुकड़े टुकड़े करके उसही समय दस्युओंके हवाले किया दस्युओंने भी उस पापाचारीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। हे धर्म्मराज! मांसभक्षी नृशंसलोग भी कृतघ्नोंको भक्षण नहीं करते। हे राजन्! ब्राह्मणघाती, सुरा पीनेवाले चोर और व्रतघ्न पुरुषोंकी बल्कि निष्कृति होती है; परन्तु कृतघ्नलोगोंकी किसी प्रकार निष्कृति नहीं होती। जो नराधम मित्रद्रोही, कृतघ्न और नृशंस हैं; क्रव्याद तथा दूसरे मांस-भक्षी कीड़े भी उन्हें भक्षण नहीं करते।

१७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर प्रतापशाली राक्षस-राज रत्न, गन्ध और अनेक वस्त्रोंसे अलंकृत चिता तैयार कराके बकराजको जलाकर विधि पूर्वक उनका प्रेत कर्म्म करने लगे। उस समय दक्षनन्दिनी पयस्विनी शोभना सुरभीदेवी उसके ऊपरके विभागमें प्रकट हुईं; उनके मुखसे चीर-मिश्रित फेन निकलके राजधर्म्माकी चितामें गिरा। अनन्तर बकराज उसहीके जरियेसे फिर जीवित होके उठकर विरूपाक्षके निकट उपस्थित हुए। उसही समय देवराज विरूपाक्षके नगरमें आके उससे बोले, हे राक्ष-सराज! तुमने प्रारब्धसेही राजधर्म्माको फिर जीवित किया। पहिले समयमें प्रजापतिने राज धर्म्माको जो शाप दिया था, देवेन्द्रने वह प्राचीन वृत्तान्त विरूपाक्षको सुनाया; उन्होंने कहा,—हे राजन्! बकराज प्रजापतिके निकट नहीं गये, इसीसे उन्होंने इनके ऊपर क्रुद्ध होके यह वचन कहा था, कि "दुष्ट स्वभाववाला बकाधम जब मेरी सभामें नहीं आया, तब शीघ्रही वह नष्ट होगा"; इसलिये ब्रह्माके वचन अनुसार ये गौतमके जरिये मरकर उन्हींके अमृत सेचनसे फिर जीवित हुए हैं।

अनन्तर राजधर्म्मा बकने पुरन्दरको प्रणाम करके कहा। हे नरेश्वर! यदि आपने कृपा की है, तो मेरे प्रियमित्र गौतमको फिर जीवित करिये; पुरुषप्रवर इन्द्रने उनके वचनके अनुसार अमृत छिड़कके गौतमको फिर जिला दिया। हे धर्म्मराज! बकराजने सुवर्णपात्र आदिसे युक्त उस पापाचारी सुहृदको पाकर परम प्रीतिके सहित आलिङ्गन करके धन रत्नके सहित उसे बिदा कर दिया; आप भी निज स्थानमें आके पहिलेकी भांति प्रजापतिकी सभामें गमन किया। ब्रह्माने उस महात्माको अतिथि सत्का-रसे सम्मानित किया। गौतम भी फिर डाकूके स्थानपर पहुंचके शूद्राभार्य्यासे बहुतसे पापी पुत्र उत्पन्न किया। उस समय देवताओंने उसको

विषयमें महाशाप दिया था, कि यह पापाचारी कृतघ्न ब्राह्मण पुनर्भू पत्नीके गर्भसे बहुत समय-तक बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके महानरक-गामी होगा।

हे भारत! मुझसे नारद मुनिने पहिले यह सब वृत्तान्त कहा था, मैंने वह सब स्मरण करके तुम्हारे समीप यथार्थ रीतिसे यह महत् उपाख्यान् वर्णन किया। कृतघ्न पुरुषको यश, सुख और आश्रय स्थान कहां है। कृतघ्न अत्यन्त अश्रद्धेय है, कृतघ्न पुरुषका किसी तरह निस्तार नहीं होता। मनुष्यमात्रकोही मित्रद्रोह करना उचित नहीं; मित्रद्रोही मनुष्य महाघोर अनन्त नरकमें गमन करता है। मित्रतायुक्त मनुष्यको सदा कृतज्ञ होना उचित है, मित्रोंसे समस्त वस्तु प्राप्त होती हैं; मित्रसे ही सम्मान मिलता है, मित्रोंसे सब भोग वस्तुयें भोगी जाती हैं, मित्रोंसे ही विपदसे छुटकारा मिलता है; बुद्धिमान पुरुष उत्तम सत्कारके जरिये मित्रको पूजा करें। पापी, कुलाङ्गार निरपत्रप पापकर्म्ममें रत पुरुषोंमें अधम मित्रद्रोही कृतघ्न पुरुषोंको पण्डितलोग परित्याग करें। हे धार्म्मिकवर! यह मैंने तुम्हारे निकट पापाचारी मित्रद्रोही कृतघ्नका विषय वर्णन किया, फिर कहिये अब कौनसे विषयको सुननेकी अभिलाषा करते हो?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! उस समय महानुभाव भीष्मकी कही हुई इतनी कथा सुनके युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए थे।

१७३ अध्याय समाप्त।

---

## मोक्षधर्म्म प्रकरण।

नारायण, पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके पश्चात् पुराण आदिकी कथा कहे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने राज-धर्म्माश्रित परम पवित्र आपद्धर्म पूर्ण रीतिसे कहे; अब गृहस्थ आदि सब आश्रमवालोंके लिये जो श्रेष्ठ हो, उस धर्म्म विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! आश्रममात्रमें ही धर्म्म विहित है, उसमेंसे सत्यस्वरूप परमात्म विषयको सुनना, मनन, निदिध्यासनमय, तपस्याके ज्ञानरूप फल इस जीवनमेंही दीख पड़ते हैं; धर्म्मके द्वार अनेक तरहके हैं, इस लोकमें उनकी समस्त क्रिया कभी निष्फल नहीं होती। ज्ञानलाभ, उसके निमित्त चित्त-शुद्धि, स्वर्ग कामना और पुत्रोंको उत्पन्न करना आदि जिन जिन विषयोंको जो लोग निश्चय करते हैं, उसे ही वे कल्याणकारी समझा करते हैं; विषयान्तरोंमें उनकी प्रवृत्ति नहीं होती; जब असार तृण आदि तुच्छ वस्तुओंकी तरह असार रूपसे समझ पड़ता है, तभी इससे निःसन्देह विराग उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! अनेक दोषोंका आधार संसार जब इस प्रकार असार कहके निश्चित हुआ है, तब बुद्धिमान मनुष्योंको आत्ममोक्षके निमित्त यत्न करना उचित है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धननाश अथवा पुत्र कलत्र वा पिताके परलोकगामी होनेपर जिस बुद्धिके जरिये शोक दूर किया जाता है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, धन नष्ट होने तथा स्त्री, पुत्र और पिताके मरनेपर 'हाय! कैसा दुःख है!' ऐसी चिन्ता करते हुए शोक दूर करनेके लिये आत्मज्ञानके निमित्त शमगुण आदिकोंका अनुष्ठान करें। इस विषयमें पण्डित लोग इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी ब्राह्मणने स्येनजित् राजाके निकट सुहृदभावसे आके जो कहा था, उसे सुनो। कोई ब्राह्मण-पुत्र शोकसे दुःखित राजा स्येनजित्को शोकसे विह्वल और व्याकुल देखकर बोला, हे राजन्! तुम क्यों मोहित होते हो। स्वयं शोचनीय होकर किस निमित्त दूसरेके लिये शोक प्रकाश

करते हो। जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते हैं, वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे। तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं; सबकोही जहांसे आये हैं, वहांही फिर जाना पड़ेगा।

सेनजित् बोले, हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते हैं। ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके भी आप शोकित नहीं होते हैं।

ब्राह्मण बोला, देव, तिर्य्यग् मनुष्य आदि उत्तम और मध्यम समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्म्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे हैं, "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्म ही मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वीही मेरी है, यह जैसी मेरी है दूसरे कीभी वैसीही है, ऐसाही विचारनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता; मैं इस ही बुद्धिसे हर्षित वा दुःखित नहीं होता। जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर जिस प्रकार पृथक् होते हैं, जीवोंका समागम भी वैसा ही है। पुत्र, पौत्र, स्वजन, बान्धव सबही इसी प्रकार हैं, इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है; क्यों कि इनका अवश्यही विच्छेद होता है। जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है; वह तुम्हें नहीं जानता, तुम भी उसे नहीं जानते; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो? विषय बासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःख नाश होनेके लिये सुख उत्पन्न हुआ करता है, सुखसे भी दुःख प्रकट होता है; इससे दुःखही बार बार उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये मनुष्योंके सुख दुःख चक्रकी तरह घूम रहे हैं। तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। मनुष्य कभी सदा सुख दुःख भोग नहीं करता, अकेला शरीरही सुख दुःखका स्थान है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका शरीरही सुख और दुःखका आश्रय है; जीव जिस शरीरसे जो कर्म्म करता है, उसही शरीरके जरिये उसका फल भोगता है। जीवनका कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके सहित उत्पन्न होते हैं, दोनों संसार यात्राके समय विविध रूपसे वर्त्तमान रहतीं और दोनोंही एकही समय नष्ट होते हैं। मनुष्यलोग अनेक तरहके स्नेहपाशके जरिये विषयमें फंसके जलमें स्थित बालूके पुलके समान अकृतार्थ रूपसे अवसन्न होते हैं। तिलको पेरनेवाले तेली लोग जैसे प्रीति पूर्व्वक तिलोंको चक्रमें पेरते हैं, वैसेही सब कोई अज्ञानसे उत्पन्न हुए क्लेश कदम्बसे आक्रान्त होकर सृष्टि चक्रमें पेरे जारहे हैं। मनुष्य, भार्य्या आदि परिवार समूहके भरण पोषणके वास्ते चोरी आदि अशुभ कर्म्म किया करता है; परन्तु इस लोक और परलोकमें अकेलाही उस दुष्कर्म्म जनित क्लेशको भोग करता है। मनुष्यमात्रही पुत्र, कलत्र आदि कुटुम्बोंमें आसक्त होकर कीचड़में फंसे हुए जीर्ण जङ्गली हाथीके समान शोक समूहमें डूबते रहते हैं। पुत्र नाश, वित्तनाश और स्वजन सम्बन्धियोंके विनाश होनेपर मनुष्योंको दावानलके समान महत् दुःख प्राप्त होता है। सुख दुःखकी उत्पत्ति और क्षय आदि सब दैवके वशमें है; प्रत्युपकारकी इच्छा न करके जो लोग उपकार करते हैं, वे मित्रपदके वाच्य होते हैं, मनुष्य तैसे सुहृदोंसे युक्त होवें, अथवा असुहृतही हों, शत्रुयुक्त हों अथवा मित्रवानही होवें, बुद्धिमान् हों, अथवा बुद्धिहीनही होवें, दैव वशसे ही सुख लाभ किया करते हैं। मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रु भी दुःख नहीं दे सकते; बुद्धि रहनेसेही धन नहीं होता, धन होनेपर भी सुख नहीं

होसकता ; बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है मूर्खता भी असम्वृद्धिका कारण नहीं होती ; इससे प्राज्ञपुरुष ही लोक-निर्म्माण वृत्तान्तको जानते हैं ; दूसरे नहीं । क्या बुद्धिमान्, क्या दुर्ब्बुद्धि, क्या कादर, क्या साहसी, क्या मूर्ख, क्या दीर्घदर्शी, क्या निर्ब्बल और क्या बलवान, जो पुरुष भाग्यवान होता है, वही सुख भोग किया करता है । पत्र गोप्रतिपालक और तस्कर, इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, निश्चय है, कि गऊ उस होकी है ! जनसमाजमें जो सब मूढ़ मनुष्य हैं, और जिन्होंने बुद्धि तत्वसे अतीत परब्रह्मको जाना है, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते हैं, इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले लोग तत्त्वज्ञ पुरुषोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यप्रकारके मनुष्योंमें रत नहीं होते, वे लोग आत्मतत्व ज्ञान लाभकोही सुख और एकबारगी मूढ़ता और अत्यन्त बुद्धिमत्ताकी मध्यमवर्त्तिताको दुःख कहा करते हैं । जिन्होंने सुख दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धि सुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते और जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए परन्तु मूढ़ताको परित्याग किया है, वह अत्यन्त आनन्दित और दुःखित होते हैं । सुरपुरके देवताओंको तरह मूढ़लोग महागर्व्व और ऐश्वर्य्यसे अचेत होकर सदा आनन्दित हुआ करते हैं । दुःखके बीतने पर सुख, होता है आलस्यही दुःखको और दक्षता ही सुखका कारण होती है ; सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित इसी तरह आलसहीन पुरुषको अवलम्बन करती हैं ; आलसीके निकट कभी नहीं जातीं । सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय जिस समय जो उपस्थित होवे, सावधान चित्तसे उसकी उपासना करे । पुत्र कलत्रके वियोग निबन्धनसे सहस्रों शोकके विषय और अनिष्ट घटना आदि सैकड़ों भयके विषय प्रति दिन मूढ़ मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं, पण्डितोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते । बुद्धिमान्, स्वाभाविक बुद्धि शक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्यासमें रत, असूया रहित, दन्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता । बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके विचारते हैं, जो प्राणियोंके उदय और लयके विषयको जानते हैं, शोक उन्हें स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ; शोक , ताप, दुःख वा भय जिसके कारण हुआ करता है, क्रमसे क्रम उसका एक अंग परित्याग करना उचित है । जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है वही दुःखका कारण हुआ करता है । विषयोंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है, वही सुखका कारण हो जाता है ; कामानुयाई मनुष्य कामके सहितही नष्ट होता है । लोकमें विषय सुख और दिव्य महत् सुख कहके जो विख्यात हैं, वे वासना क्षयजनित सुखके सोलहवें अंशके समान नहीं हैं । पूर्व्वदेहके किये हुए शुभ वा अशुभकर्म्म जिस प्रकारसे किये गये हैं, तैसेही वे बुद्धिमान् मूढ़ और शूर पुरुषोंको अवलम्बन करते हैं । इसी तरह प्रिय और अप्रिय सुख तथा दुःख प्राणियोंमें घूमा करता है । गुणवान मनुष्य ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके सुखमें निवास करते हैं ; इसलिये समस्त कामोंका निन्दा करते हुए क्रोधको पीछे करते हैं । पण्डितलोग कहते हैं, यह क्रोध देहधारियोंके शरीरमें कामरूपसे स्थित मृत्युस्वरूपसे हृदयके बीच दृढ़भावसे उत्पन्न होता है । कछुवेके निज अङ्ग समेटनेकी तरह यह आत्मा जब सब तरहके कामोंको संहार करता है, तब आपही आत्मज्योति दीख पड़ती हैं, जबतक जो वस्तु हमारी कहके मानी जाती हैं, उस समय तक वे सब दुःखके कारण हुआ करती हैं । यह आत्मा जब किसीसे डरती नहीं और इससे कोई भय नहीं करते, यह जब इच्छा और

हेंससे रहित होता है, तब ब्रह्मस्वरूप लाभ करता है। सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, भय, अभय, प्रिय और अप्रिय परित्याग करनेसे ही चित्त शान्त होगा। जब कर्म्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके विषयमें कुछ असत् अभिप्राय वा पाप नहीं किया जाता, तभी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति हुआ करती है। नीच बुद्धि मनुष्य जिसे किसी तरह परित्याग नहीं कर सकते, मनुष्योंके जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणान्तक रोगरूपसे वर्णित हुई है, उस तृष्णाको जो मनुष्य परित्याग कर सकते हैं, वेही सुखी होते हैं।

हे राजन्! इस विषयमें पिङ्गलाकी कही हुई सब गाथा सुनीजाती है; दुःखके समय उसने जिस प्रकार सनातनधर्म्म लाभ किया था उसे सुनो। पिङ्गला नामी कोई वारवनिता अभिसार स्थानमें निज प्राणकान्तके वियोगसे कातरसे होके बोली थी, मैंने उन्मत्त होके निर्व्विकार कान्तके सहित बहुत समयतक वास किया; परन्तु कालके मेरी अन्तिमें स्थिति करनेपर भी पहिले मैं कभी कान्तके निकट न गई एकमात्र अविद्याने जिसे धारण कर रखा है, उस नेत्र, कान आदि नवद्वारोंसे युक्त गृहको मैंने विद्याबलसे छिपा रखा है। जो स्त्री, कान्त अन्तिके आगमन करनेपर भी कौन स्त्री उसे "ये कान्त हैं"—ऐसा समझती है; मैंने इस समय कामनाको त्याग दिया; नरकरूपी धूर्त्त लोग कामुक रूपसे फिर मुझे वहीं ठग सकेंगे, अब मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ, मैं सदा जागतीथी, पहिलेका किया हुआ सुकृत दैववशसे अनिष्ट वा दृष्टरूपसे परिणत होता है, इस समय मुझे इन्द्रिय-विजय और बोधका उदय हुआ; बासना भी दूर होगई। जिन्हें आशा नहीं है, वेही सुखसे सोते हैं, नैराश्यही परम सुख है, पिङ्गला इस समय आशाको निराश करके अनायासही सोती है।

भीष्म बोले, ब्राह्मणके इन सब तथा दूसरे युक्तियुक्त वचनसे राजा सेनजित् सावधान चित्तसे सुखी होके हर्षित हुए।

१७४ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इन सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहनेपर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता पुत्र युक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्षधर्म्मकी व्याख्यामें निपुण लोक तत्वकी जाननेवाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंकी परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें। आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये, जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्रकामना करे। अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए बनमें गमन करके ध्याननिष्ठ होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्विकार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं?

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्यु से ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरनके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है। जब यह जानता हूं, कि यद्यपि मृत्यु इस स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञानावरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयु क्षीण होती है तब बुद्धिमान पुरुषको उचित है, कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियोंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथनेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याण साधक कर्म्म हैं, उसे आजही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमे तुम्हें अतिक्रम न करे. कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कलह करना होगा, उसे आजही करना योग्य है, अपराह्नके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वाह्नमेंही करना चाहिये, मनुष्योंके कर्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती।

मनुष्य युवा अवस्थामेंही धर्म्मशील होवे; क्यों कि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्युकाल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इस-लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है। मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे घेर बोये हुए हरिनको पकड़के चलदेता है, वैसेही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त सन्सारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंको अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे शार्दूल हरिणको पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरुषोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरुषने गोल आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्व्वल, क्या बलवान् क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होतेही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, जब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मतेही जरा मृत्यु उसके नाशके लिये उसका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त हो रही है। गावमें वास करनेके लिये लोगोंको जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका मुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त वासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवालोंको अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, वचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते

तथा धर्ममें बाधा करनेवाले हिंसक और तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधिरूपी मृत्युको सेना जब आगमन करती है, तब कोई कभी उसे निवारण नहीं कर सकता।

जो मिथ्या सम्पर्कसे रहित है, वही सत्य है, उस सत्यमें ही अमरत्वरूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म-प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके एक साधन सत्य योगमें रत, वेद शास्त्रमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरिएही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु ये दोनों शरीरमें स्थित है, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं, इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म-यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त, मननशील, प्रणवजपरूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और ध्यान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान पुरुष पिशाचके निष्फलचैत्य यज्ञकी तरह हिंसा साध्य पशु वधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके वचन मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं, विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्मासे आत्माके जरिये आत्मरूपसे उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा, दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्तिहीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्! आपको जब अवश्यही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान् होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं; उसे विचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका वचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसाही अनुष्ठान करो।

१७५ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धनवान् अथवा निर्द्धन मनुष्य जो कि पृथक् पृथक् धर्म्मशास्त्रको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन लोगोंका सुख वा दुःख लाभ कैसा है। और किस तरह हुआ करता है?

भीष्म बोले, प्राचीन पण्डित लोग इस विषयमें शान्ति सुखसे युक्त मुक्तिपथ अवलम्बी शम्पाकके कहे हुए इस पुराने इतिहासको कहते है। कुभार्य्या, कुवस्त्र और भूखसे क्लेशित होकर सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करनेवाले शम्पाक नाम किसी ब्राह्मणने पहिले मुझसे यह कथा कही थी। मनुष्यके इस लोकमें उत्पन्न होते ही अनेक तरहके सुख और दुःख उसे अवलम्बन करते हैं; परन्तु उस सुख वा दुःखके प्राप्त होनेपर जब वह दैवविहित करके मालूम होता है, तब मनुष्य सुख लाभसे हर्षित और दुःखसे असन्तुष्ट नहीं होता; तुम कामहीन करके सदा भार धारण करते हुए अपने कल्याणका आचरण नहीं करते हो; क्या तुम चित्त संयम करनेमें समर्थ नहीं हो। जिसके धन, स्त्री आदि कुछ भी नहीं है, उसे अकिञ्चन कहते हैं, तुम वही

अकिञ्चन होके इन्द्र आदि त्यागके भ्रमण करते हुए सुख अनुभव करोंगे। दरिद्र पुरुषही सुखसे सोता और उठता है ; दरिद्रताही लोकमें कल्याणकारी मार्ग और अनामय सुख स्वरूप है। यह शत्रु रहित मार्ग कामियोंको दुर्लभ और निष्काम पुरुषोंके अनायासही प्राप्त होता है ; मैं तीनों लोकोंको देखकर इस समय वैराग्य युक्त शुद्ध स्वभाववाले अकिञ्चनके समान कोई नहीं देखता हूं। मैंने अकिञ्चनता और राज्य दोनोंको तुलादण्डपर तौला था ; परन्तु राज्यसे समधिक गुणशालिनी अकिञ्चनताही अधिक हुई थी। अकिञ्चनता और राज्य इन दोनोंके बीच महान् विशेषता यही है, कि समृद्धियुक्त मनुष्य काल-कवलितकी तरह सदा व्याकुल रहता है, और जो लोग धन रत्नोंको परित्याग करनेसे विमुक्त तथा आशा रहित हुए हैं ; अग्नि, चोर आदि उपद्रव, मृत्यु तथा डाकूलोग उनका कुछ भी नहीं कर सकते। सुरपुर-वासी देवता लोग उस कामचारी, शय्यारहित, बाहुपर शिर रखके पृथ्वीमें शयन करनेवाले तथा शान्ति मार्गको अवलम्बन करनेवालोंकी सदा प्रशंसा किया करते हैं। धनवान् क्रोध और लोभसे युक्त होकर, चेत-रहित वक्र-दृष्टि, रूखा मुख, कुटिल भौं, पापकर्म्म और क्रोधयुक्त होकर निठुर वचन प्रयोग करता है ; वह यदि पृथ्वीमण्डलको भी दान करनेकी इच्छा करे, तौभी कौन पुरुष उसे देखनेकी इच्छा करेगा। लक्ष्मीके साथ सदा सहवास होना मूर्खोंको मोहित करता है। जैसे वायु शरत् कालके बादलोंको उड़ा देती है, वैसेही सम्पत्ति धनवान् पुरुषोंके चित्तको हरण किया करती है ; और रूप तथा धनका अभिमान उसे अवलम्बन करता है ; "मैं सद्वंशमें उत्पन्न हुआ, सिद्ध तथा मैं सामान्य मनुष्य नहीं हूं"—इन तीनों कारणोंसे उसका चित्त प्रमत्त होता है। वह संसारमें आसक्त होके पिताकी इकट्ठी की हुई सब सम्पत्ति व्यय करके निर्धन होनेपर दूसरेका धन हरनेमें पाप नहीं समझता। जैसे व्याधा बाणोंसे हरिणोंको विद्ध करता है, वैसेही राजालोग उन मर्य्यादा रहित परधन हरनेवाले मनुष्योंके विषयमें दण्डविधान किया करते हैं। इसी प्रकार इसी भांतिके अनेक दु:ख और दारुच्छेद आदि सब क्लेश इस लोकमें मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं ; इस विनश्वर देह आदिके सहित अपत्य और धन रत्नरूपी लोक धर्म्मकी अवज्ञा करके बुद्धिबलसे उन अवश्य होनेवाले क्लेशोंका प्रतिकार करे। बिना त्यागके सुख नहीं मिलता ; त्यागके बिना परम पदार्थ प्राप्त नहीं होता ; बिना-त्यागके निर्भय होके शयन नहीं किया जाता ; इसलिये सब विषयोंको परित्याग करके सुखी हूजिये। पहिले हस्तिनापुरमें शम्पाक नाम ब्राह्मणने मेरे समीप इसी तरह ऊपर कहे हुए विषयको वर्णित किया था, इसलिये त्याग ही सबसे उत्तम है, यह सर्व्व-सम्मत है।

१७६ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, कृषि, वाणिज्य, यज्ञ और दान आदि कर्म्मकी अभिलाष करते हुए मनुष्य अर्थलाभमें असमर्थ होकर धनकी तृष्णासे युक्त होनेपर कौन कार्य्य करके सुखभोग कर सकते हैं।

भीष्म बोले, हे भारत ! जिसे लाभ, हानि, मान, अपमान, विषयोंमें समज्ञान, धन आदिके निमित्त प्रयासाभाव, सत्य वाक्य, वैराग्य और कर्म्म करनेमें इच्छा नहीं है, वेही मनुष्य सुखी कहके वर्णित होते हैं। प्राचीन लोग इन पांचो विषयोंको मोक्षका कारण कहा करते हैं ; यही स्वर्ग, धर्म्म और अत्यन्त उत्तम सुख स्वरूपसे माने गये हैं। हे धर्म्मराज ! इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासको वर्णन किया

करती है। मङ्कि नाम किसी पुरुषने जो कहा था उसे सुनो। मङ्किके धनकी इच्छा करनेपर बारम्बार उसकी कोशिश नष्ट हुई, तब जो कुछ धन बाकी था, उसके ही जरिये उसने जुआ काठके सहित दमनके योग्य दो बैल खरीदा। जुआके दोनों ओर जुते हुए वे दमनीय दोनों बैल दमनके लिये निकले और दौड़के मार्गमें बैठे हुए एक ऊंटके ऊपर सहसा जा गिरे। जब जुएमें जुते हुए दोनों बैल सहसा ऊंटके कन्धे पर गिरे, तब महावेगशाली ऊंट क्रोधयुक्त होकर उठा और उन दोनोंको उठाकर चलने लगा। बलवान ऊंटके जरिये दोनों बैलोंका हरण तथा मरण देखके मङ्किने उस समय यह वचन कहा, दैवके धन दान न करनेपर निपुण पुरुष भी यदि अत्यन्त श्रद्धा तथा पूर्ण रीतिसे चेष्टा करे, तोभी उसे प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, मैंने पहिले अनेक उपायके जरिये सावधान, चित्तसे धन उपार्जनका अनुष्ठान किया; परन्तु किसीसे भी कृतकार्य्य न होके शेषमें दो बैल खरीदा; उसमें भी यह दैव विड़म्बना दीख पड़ी। उत्पथमें दौड़नेवाला ऊंट काकतीयको तरह मेरे दोनों प्रियबैलोंको उठाकर बार बार उछालते हुए गमन कर रहा है, जुएमें फंसे हुए दोनों बैल मानो दो मणिकी तरह लटक रहे हैं; इसलिये यह केवल दैव-विहित है; इस विषयमें पराक्रम प्रकाश करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। पुरुषके यत्न करनेपर किसी विषयमें यदि कोई कार्य्य सिद्ध होवे, तो विशेष अनुसन्धान करके देखनेसे वह भी दैवविहित कहके प्रतिपन्न होता है, इसलिये इस संसारमें जो लोग सुखकी इच्छा करें, उन्हें वैराग्य अवलम्बन करनाही अवश्य उचित है। वैराग्यवान् पुरुष धन प्राप्तिसे निराश होके सुखसे सोता है। सब तरहकी आसक्तिसे रहित शुकदेवने जब जनकके यहांसे महावनके बीच प्रस्थान किया। उस समय कई एक उत्तम वचन कहा था, कि सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्ति और समस्त कामनाका परित्याग, इन दोनोंके बीच सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्तिसे उसका परित्याग ही उत्तम कल्प है। कोई पुरुष भी धनोपार्जन प्रवृत्तिके पारगामी नहीं हुआ; मूढ़ मनुष्यकी ही शरीर और जीवनमें तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। हे कामुक मन! इसलिये धनोपार्जन प्रवृत्तिसे निवृत्ति रहे, वैराग्य अवलम्बन करके शान्तिलाभ करो; तू बार बार वञ्चित होता है; तोभी वैराग्यका आश्रय नहीं करता है।

हे वित्त-कामुक मन! यदि मैं तेरे सम्बन्धमें विनाश्य कहके न समझा जाऊं और तू यदि मेरे सङ्ग इसी तरह विहार करे; तो अनर्थक मुझे लोभमें आसक्त मत कर। तूने बार बार जिन द्रव्योंको सञ्चय किया था, वे सब नष्ट हुई हैं। रे मूढ़ चित्त! तू कब धनकी अभिलाषको परित्याग करेगा; हाय! मेरी कैसी मूर्खता है। मैं अबतक भी तेरा विलास-भाजन हुआ हूं; परन्तु इसी तरह पुरुष किसी किसी समय दूसरेके अधीनता पाशमें बद्ध होता है। भूत वा भविष्य मनुष्योंके बीच कोई कभी कामनाकी पराकाष्ठाको प्राप्त नहीं हुआ; होगा भी नहीं। मैं इस समय सब कर्म्मोंको त्यागकर मोहनिद्राको विसर्जन करके जाग्रत हुआ हूं। हे वासना! बोध होता है, तुम्हारा हृदय वज्रसारमय अत्यन्त दृढ़ है; क्यों कि सैकड़ों अनर्थोंसे अनिष्ट होने पर भी सौ टुकड़े होकर फट नहीं जाता। हे वासना! मैं तुम्हें तथा तुम्हारी जो कुछ प्रिय वस्तु हैं, उन्हें भी जानता हूं, मैं तुम्हारी प्रिय कामना करते हुए आत्माको सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं हूं। संकल्पसे तेरा जन्म हुआ है; इसलिये सङ्कल्पही तुम्हारा मूल है; वह भी मुझसे छिपा नहीं है, मैं सङ्कल्पको परित्याग करूंगा, इससे तूं जड़के सहित नष्ट होगी। धनकी लालसासे सुखलाभ नहीं होता; धन प्राप्त होने पर भी बहुतसी

चिन्ता हुआ करती है ; प्राप्त धनके नष्ट होनेसे मृत्युके समान दुःख होता है ; धन लाभ भी संशयसे युक्त है ; दूसरेके समीप प्रार्थना करने पर भी यदि धन न मिले, तो उससे बढ़के दुःख और कुछ भी नहीं है ; प्राप्त हुए धनसे भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता ; बल्कि फिर भी उसको इच्छा किया करता है । स्वादिष्ट गङ्गा-जलकी तरह धन तृष्णाकी अत्यन्त ही वृद्धि करता है, और यही मुझे नष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है ; जो हो, इस समय मैं मोह-निद्रासे रहित हुआ हूं,—इसलिये । हे वासना ! अब तू मुझे परित्याग कर, अथवा तूने जब मेरे पञ्च भौतिक शरीरका आश्रय किया है, तब मेरे सहित इच्छानुसार यथा सुखसे निवास कर।

हे वासना ! तू लोभकी अनुगामी हुआ करती है, इसी लिये तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति नहीं है , इससे सब कामना परित्याग करके मैं सतोगुण अवलम्बन करूंगा । मैं शरीरमें सब प्राणियों और मनमें आत्माको देखते हुए योग विशेषमें चित्त लगाकर तथा श्रवण विषयमें सतोगुण अवलम्बन करके परब्रह्ममें मन स्थिर कर निरामय आसक्तिहीन और सुखी होकर लोकके बीच इस प्रकार भ्रमण करूंगा, कि अब तू मुझे फिर दुःखसमूहमें न डुबा सकेगी। हे वासना ! तू यदि मुझे परिचालित करे, तो मुझे दूसरा उपाय नहीं है, तृष्णा, शोक और श्रम आदि, तुझसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं। मुझे बोध होता है; धन नष्ट होनेपर सबसे अधिक दुःख उत्पन्न होता है, धनहीन मनुष्यको स्वजन और बन्धु लोग अवज्ञा किया करते हैं ; बहुसंख्य अवज्ञा निबन्धनसे युक्त धन विषयमें बहुतेरे कष्टपूरित दोष दीख पड़ते हैं ; धन विषयमें जो कुछ सुख है, वह भी दुःखसे मिला हुआ है। डाकू लोग अगाड़ी धनवान पुरुषका ही वध करते, अनेक तरहके दण्डसे दुःख देते और सदा व्याकुल किया करते हैं। अर्थ लोभही दुःख है, इसे मैंने बहुत दिनोंमें समझा है। हे काम ! तू जिसे अवलम्बन करता है, उसीको अवरुद्ध कर रखता है ; इससे तू बालककी तरह मूर्ख है, किसीसे भी तेरी तुष्टि नहीं होती और अग्निकी भांति किसी प्रकार तुझे परिपूर्ण नहीं किया जा सकता । तू दुर्लभ और सुलभ कुछ भी नहीं जानता ; पातालकी भांति दुष्पूर होके मुझे दुःखयुक्त करनेकी अभिलाष करता है । हे काम ! अब तू फिर मेरा आश्रय न कर सकेगा, मैं इच्छानुसार वैराग्य अवलम्बन करके परम सुख प्राप्त करके इस समय अब काम्य वस्तुओंकी इच्छा नहीं करता। मैंने इसके पहिले अत्यन्त क्लेश सहा है। "इस समय मैं बुद्धिमान नहीं हूं"—ऐसा नहीं समझता, मैंने धन-हानि निबन्धनसे छुटकारा पाके इस समय सब तरहसे क्लेश रहित होकर सुखसे सोता हूं। हे काम ! मैं मनकी सब वृत्तियोंको त्यागके तुझे भी परित्याग करता हूं। तू अब फिर मेरे सङ्ग अनुरक्ति तथा निवास मत करना। जो मेरी निन्दा किया करते हैं, मैं उन लोगोंके विषयमें क्षमा करूंगा, दूसरे यदि मेरी हिंसा करें तोभी मैं उनकी हिंसा न करूंगा ; मेरे विषयमें विद्वेष प्रकाशित करके यदि कोई अप्रिय वचन कहे ; तो मैं उसके उस अप्रिय वचनका अनादर करके उसे प्रिय वचनही कहूंगा। मैं तृप्तियुक्त होके और इन्द्रियोंको जीतकर जो कुछ वस्तु प्राप्त होगी, उससे ही योवन बिताते हुए आत्मशत्रु तुम्हें फिर सकाम नहीं करूंगा। यह समझ रखो कि वैराग्य, सुख तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब भूतोंमें दयारूपसे मैं उपस्थित हुआ हूं। अब सतोगुणावलम्बी होकर मुक्ति मार्गमें प्रयाण करता हूं ; इसलिये, काम लोभ, तृष्णा और दीनता मुझे परित्याग करें मैं काम और लोभको त्यागके सुखी हुआ हूं, इस समय

निर्बुद्धियोंकी तरह लोभके वशमें होकर फिर दुःख भोग न करूंगा। कामनाके जो संगपरित्याग किये जाते हैं। जो सदा कामके वशमें रहते हैं वे लोग केवल दुःख भोग करते हैं कामसे युक्त जो कुछ रजोगुण है, उसे पुरुषमात्रकोही त्यागना उचित है; क्यों कि अलज्ज और अरतिरूप दुःख काम तथा क्रोधसे उत्पन्न हुआ करते हैं, ग्रीष्म ऋतुमें ठण्डे तालावमें प्रवेश करनेकी भांति इस समय मैं परब्रह्ममें प्रविष्ट हुआ हूं; सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर दुःख रहित हुआ हूं, निर्विकार सुखही सदा मेरे समीप स्थित है, लोकमें जो कुछ कामसुख तथा जो कुछ दिव्य महत् सुख है, वे सब तृष्णा क्षयरूपी सुखके सोलहवें, अंशके समान नहीं है। स्थूल शरीरके सङ्ग गिनती करनेसे जो सातवां होता है, सब अनर्थोंका मूल स्वरूप उस परम शत्रु कामका नाश कर अविनश्वर ब्रह्मपुर पाके मैं राजाकी तरह सुखी हुआ हूं। यह प्रसिद्ध है, कि मङ्किने दोनों बैलोंके नष्ट होनेपर ऐसाही विचारके शोक रहित हो सब कामना त्याग कर महत् सुख स्वरूप परब्रह्मको प्राप्त होके अमरत्व लाभ किया था। उसने कामके मूल माया बन्धनको तोड़ा था, इसीसे महत् सुख लाभ किया।

१७७ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! बिदेहराज जनकने सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर जो कुछ कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं; उन्होंने कहा था, "हमारे विभवका अन्त नहीं है, तोभी मेरा कुछ भी नहीं है; सारी मिथिला नगरीके भस्म होनेपर भी मेरा कुछ न जलेगा।" हे धर्म्मराज! बोध्य ऋषिने वैराग्य विषयक जिन श्लोकोंको कहा था; प्राचीन लोग उनका भी इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो। राजा नहुषने वैराग्यके कारण शान्तिसुखसे युक्त, शास्त्रज्ञानसे तृप्त, शान्त बोध्य नाम ऋषिसे कहा था, हे महाबुद्धिमान्! आप मेरे ऊपर कृपा करके शान्तिमय उपदेश दान करिये।

बोध्य बोले, मैं उपदेश ग्रहण करके निवास करता हूं; परन्तु किसीको भी उपदेश दान नहीं करता। इस समय उस उपदेशका लक्षण कहता हूं, आप स्वयं उसका विचार करिये। पिङ्गला, कुरर पक्षी, सांप, वनके बीच सारङ्ग पक्षीका खोज, इषुकार और कुमारी ये छः मेरे उपदेष्टा हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! आशा अत्यन्त बलवती है, नैराश्यही परम सुख है; पिङ्गला नामी वेश्या आशाको त्यागके सुखकी नींद सोई थी। मांसयुक्त कुरर-पक्षीको देखकर मांस रहित कुरर पक्षियें उसे मारनेमें उद्यत होती हैं, तब वह मांसको त्यागनेसे सुखी हुआ करता है। गृहारम्भ केवल दुःखका मूल है, कदापि सुखका कारण नहीं होता, सांप दूसरेके बनाये हुए गृहमें प्रवेश करके सहजमें ही सुखसे रहता है। मुनि लोग भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके सारङ्ग पक्षीकी तरह जीवोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करके परम सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं। कोई इषुकार मनुष्य वाण बनानेमें आसक्त चित्त होकर निज समीपमें राजाको गमन करते हुए न जान सका। बहुतसे लोगोंके इकट्ठे रहनेपर सदा कलह हुआ करता है, दोनोंका परामर्श ही निश्चय है; पिताके वशमें रहनेवाली किसी कुमारीने ब्राह्मण भोजन करानेकी इच्छा करके चावलोंको छाटने लगी, उस समय उसके हाथमें स्थित सब शङ्ख (चूड़ी) बजने लगी, तब उसने दोनों हाथोंमें केवल दो शङ्खोंको रखके बाकी सब शङ्खोंको तोड़के शब्दको निवारण किया था।

मैं उस ही कुमारीके शङ्खकी तरह अकेले ही विचरण करूंगा।

१७८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहारज्ञ! मनुष्य किस व्यवहारसे शोकरहित होकर पृथ्वीपर विचरते और लोकके बीच कौन कार्य्य करके उत्तम गति प्राप्त करते हैं?

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रह्लाद और अजगर वृत्तिको अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करनेवाले किसी मुनिके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। बुद्धिमान् राजा प्रह्लादने रागद्वेषसे हीन दृढ़ चित्तसे भ्रमण करनेवाले किसी बुद्धिमान् ब्राह्मणसे प्रश्न किया कि, हे ब्रह्मन्! आप स्वस्थ, दम्भ रहित दयावान्, जितेन्द्रिय, कर्म्म-हीन, सर्व्वत्र दोषदर्शी, सत्यवादी प्रतिभायुक्त मेधावी और तत्त्वज्ञ होकर भी बालककी तरह घूम रहे हैं, आप वस्तु लाभकी इच्छा नहीं करते, प्राप्त न होने पर भी असन्तुष्ट नहीं होते; सदा तृप्तकी भांति किसी विषयकी अवज्ञा नहीं करते। काम क्रोधके प्रबलवेग लोगोंको हरण कर रहे हैं, तौभी आप विरक्तकी तरह धर्म्म, काम और अर्थयुक्त कार्य्योंमें निर्व्विकार चित्तके समान मालूम होरहे हैं। आप धर्म्म और अर्थका अनुष्ठान नहीं करते तथा काममें भी प्रवृत्त नहीं होते। रूप, रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंका अनादर करके कर्त्तृत्व भोक्तृत्व आदि अभिमानसे रहित होकर साक्षीकी तरह भ्रमण कर रहे हैं। हे ब्रह्मन्! आपका कैसा तत्त्व दर्शन, किस प्रकार शास्त्रका सुनना और किस प्रकारका धर्म्मानुष्ठान है; यदि उसे मेरे विषयमें उत्तम समझते हो, तो शीघ्रही बयान कीजिये।

भीष्म बोले, लोकधर्म्मको जाननेवाले उस मेधावी मुनिने पूछनेपर अर्थयुक्त मधुर वचनसे प्रह्लादको उत्तर दिया, हे प्रह्लाद! कारण रहित एकमात्र अद्वितीय परम पुरुषसे जीवोंकी उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि वा नाशके विषयकी आलोचना करके, मैं इसकी आलोचना करके हो हर्षित तथा दुःखित नहीं होता। स्वभावके कारण वर्त्तमान प्रवृत्तियों और स्वभावमें रत सब लोगोंको भली भांति देखना उचित है, मैं इसे जानकर ब्रह्मलोक प्राप्तिसे भी प्रसन्न नहीं होता, हे प्रह्लाद! वियोगपरायण प्राणियोंके संयोग और विनाशावसान समस्त सञ्चयोंका अवलोकन करो। मैं किसी विषयमें ही मन नहीं लगाता। जो लोग गुणयुक्त जीवोंको अन्तवन्त अवलोकन करते और उत्पत्ति तथा लयके विषयको जानते हैं; उनके लिये कोई कार्य्य शेष नहीं है।

हे दानवराज! यह देखता हूं, कि समुद्रके बीच क्या बड़े, क्या छोटे शरीर जलचर जीवोंका पर्य्यायक्रमसे नाश हो रहा है, स्थावर जङ्गम आदि सब जीवोंको स्पष्ट भावसे मृत्युके मुखमें पतित होते देखता हूं। आकाशचारी पक्षियोंकी भी यथा समयमें मृत्यु होती है; आकाशमें घूमनेवाले छोटे और बड़े तारे भी नष्ट होते दीख पड़ते हैं। इसी तरह सब भूतोंको मृत्युके वशमें होते देखकर ब्रह्मनिष्ठ और कृतकृत्य होकर सुखकी नींद सोता हूं। कभी अनायास प्राप्त हुए उत्तम भक्ष्य भोजन किया करता हूं, कभी कई दिनोंतक विना भोजन किये ही सोता हूं, कभी लोग मुझे बहुतसा और कभी थोड़ा अन्न भोजन कराते हैं; कभी कुछ भी अन्न उपस्थित नहीं होता। मैं कभी चावलोंके किनकोंको भक्षण करता, कभी पिण्याक फल भोजन किया करता हूं। कभी पक्वान्न आदिक अनेक प्रकारकी भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करता हूं मैं कभी पलङ्ग पर सोता, कभी पृथ्वीपर शयन किया करता हूं कभी महलमें मेरी शय्या सञ्जित हुआ करती है, कभी, चार वसन, कभी शनसूतके बने हुए वस्त्र,

कभी कभी क्षौमवस्त्र और कभी मृगछाल धारण करता हूं ; समयके अनुसार महामूल्य-वान् वस्त्रोंको भी पहना करता हूं। यदृच्छा प्राप्त धर्म्मयुक्त उपभोग वस्तुओंमें मैं अनास्था नहीं करता और इसके अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी उसके लिये मेरी रुचि नहीं होती। मैं पवित्र भावसे स्थिरता युक्त, मरण-विरोधी, मंगलजनक शोकहीन और तुलना रहित इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अत्यन्त मूढ़ लोग इसका आचरण करना तो दूर रहे इसे जाननेमें भी समर्थ नहीं होते ; यह ब्रह्म प्राप्तिका उपाय स्वरूप है। मैं स्थिर चित्तसे निज धर्म्मसे विचलित न होकर पूर्व्वापर सब मालूम करके परिमित भावसे जीविकानिर्व्वाह करते हुए निर्भय, राग, द्वेष आदिसे रहित, निर्लोभ और मोहहीन होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। जिसमें भक्ष्य, भोज्य और पेय विषयका नियम नहीं है ; अदृष्टके परिणामके कारण देश और कालकी व्यवस्था नहीं है ; कुत्सित पुरुष जिसके आचरण करनेमें असमर्थ हैं उस हृदय सुख दायक अजगर व्रतका मैं पवित्र भावसे आचरण करता हूं। "अमुक धन मैं लाभ करूंगा",- इसी तरह तृष्णासे युक्त होकर लोभ धन न प्राप्त होनेपर दुःखित होते हैं, इसे तत्वबुद्धिके जरिये निपुणताके सहित आलोचना करके मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। दीन पुरुष कृपण भावसे सत् और असत् सबहीके निकट धनके निमित्त आश्रित होते हैं, इसे देखकर मैं उपशमको अभिलाष करके और चित्तका जीतके इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। सुख, दुःख, लाभ, हानि, रति, अरति, जीना और मरना सब दैवके अधीन है, इसे यथार्थ रीतिसे जानकर मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अज-गर सर्प उपस्थित फलको भोग किया करता है, उसे सुनके मैं राग, भय, मोह और अभि-मानसे रहित, धृति, मति और बुद्धिसे युक्त तथा प्रशान्त होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मेरे सोने और भोजन करनेका नियम नहीं है, मैं स्वभावसेही दम, नियम, सत्य, व्रत और शौच युक्त, फल सञ्चयसे रहित और आनन्दित होकर इस अजगरव्रतका आचरण करता हूं। इच्छाके विषय पुत्र और वित्त आदि निबन्धन परिणाम दुःखके कारण हैं, समस्त दुःख स्वयंही परा-ङ्मुख हुए हैं ; इससे मैं ज्ञानलाभ करके अन्तः-करणको तृषित और अस्थिर देखकर उसे स्थिर करनेके लिये पवित्र भावसे इस आत्मनिष्ठ अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मैं वचन, मन और अन्तःकरणका अनुरोध न करके प्रिय सुखकी दुर्लभता और अनित्यता देखते हुए पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। बुद्धिमान कवियोंने आत्मकीर्त्तिको प्रसिद्ध करते हुए निजमत और परमतके जरिये यह शास्त्र ऐसा कहता है—इसी तरह अनेक वितर्क करके बहुतायतके सहित आत्मतत्वका विषय वर्णन किया है। मूर्ख मनुष्य उस प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे प्रसिद्ध तर्कसे अगोचर आत्म तत्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते ; मैं उसेही अज्ञान आदि नाशक अन्तर्हित और अनन्त दोष निवारक रूपसे आलोचना करके दोष और तृष्णा त्यागके मनुष्योंके बीच भ्रमण किया करता हूं।

भीष्म बोले, इस पृथ्वीमण्डल पर जो महा-नुभाव मनुष्य रागहीन और भय, लोभ, मोह तथा मान रहित होकर इस अजगर व्रतका आचरण करते हैं, वे अवश्यही सुखी होते हैं।

१७८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बान्धवों, वित्त, कर्म्म और बुद्धि इन सबके बीच मनुष्योंकी

किस विषयसे प्रतिष्ठा होती है, मैं इसेही पूछता हूं आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, बुद्धिसेही जीवोंकी प्रतिष्ठा होती है, इस लोकमें बुद्धिसेही निःश्रेयस लाभ हुआ करता है; बुद्धिही साधुओंमें स्वर्गरूपसे सम्मत है। ऐश्वर्य्य नष्ट होनेपर राजा बलि; प्रह्लाद, नमुचि और मङ्किने बुद्धिसेही पुरुषार्थ लाभ किया था; इससे बुद्धिसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। हे धर्म्मराज ! इस विषयमें पण्डित लोग इन्द्र और काश्यपके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो। ऐश्वर्य्यसे मतवाला कोई वैश्य काश्यपवंशीय संशितव्रती तपस्वी ऋषिपुत्रको रथचक्रसे गिराया था। गिरनेसे पीड़ित होकर ऋषिपुत्रने शरीर त्यागनेका निश्चय करके क्रुद्ध भावसे कहा, मैं अवश्यही जीवन परित्याग करूंगा; इस पृथ्वीमण्डल पर निर्द्धन मनुष्योंको जीवन धारण करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। ऋषिपुत्रके मुमूर्षु होकर चेतरहित अवस्था इस प्रकार चुप्पचित्त और शब्द रहित होके निवास करनेपर देवराज इन्द्र सियारका रूप धरके उसके समीप आके बोले, हे काश्यप ! समस्त जीव सब तरहसे मनुष्य योनि प्राप्त होनेकी इच्छा करते है, मनुष्य जन्म होनेसे सब कोई ब्राह्मणत्वका अभिनन्दन किया करते हैं। तुम मनुष्य-जन्म पाके ब्राह्मण हुए हो, विशेष करके वेद अध्ययन किया है; अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व, ब्राह्मणत्व और श्रोत्रियत्व लाभ करके मूढ़ताके वशमें होकर तुम्हें शरीर त्यागना उचित नहीं है। लाभ मात्रही अभिमानसे युक्त है, अर्थात् "मैंने यह धन प्राप्त किया है"—सब वस्तुओंके प्राप्त होने पर इसी प्रकार अभिमान हुआ करता है। इस विषयमें जो जनश्रुति है, अर्थात् किसीके धनमें अभिलाषा मत करो, यह अवश्यही तुम्हें विदित होगा, तुम्हारा सौन्दर्य्य अत्यन्तही सन्तोष युक्त है; इसलिये तुमने जो मरनेका निश्चय किया है, लोभही उस विषयमें कारण है। इस जगत्में जिन्हें पांच अंगुलियोंसे युक्त हाथ हैं, उनका सभी प्रयोजन सिद्ध होता है; हाथ युक्त लोगोंको मैं अत्यन्त सराहना किया करता हूं, धनके निमित्त तुम्हारी जैसी इच्छा है, हाथ युक्त मनुष्योंके विषयमें मेरी वैसीही अभिलाष हुआ करती है, हस्तलाभसे अधिक लाभ और कुछ भी नहीं है। हे ब्राह्मण ! हाथ नहीं है, इसहीसे हम लोग कण्टक उद्धार नहीं कर सकते और अनेक प्रकारके कीट हमारे अङ्गमें दंशन करते रहते हैं, उन्हें नष्ट करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। जिन्हें दैवके दिये हुए दश अंगुलियोंसे युक्त दोनों हाथ विद्यमान हैं, वे लोग दंशन करनेवाले कीटोंको सहजमेंही पृथक् कर सकते हैं, सर्दी, वर्षा और धूपसे अपना बचाव करनेमें समर्थ होते हैं। अन्न, वस्त्र, सुख, शय्या आदि सहजमेंही उपभोग कर सकते हैं; जनसमाजके बीच वाहनोंपर चढ़के उन्हें चलाते हुए सुख भोग कर सकते और आत्म सुखके लिये अनेक प्रकार उपायसे सबको वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हाथ और जीभ नहीं हैं, वे कृपण तथा अल्पबलवाले हैं, वेही उन सब दुःखोंको सहते हैं। हे मुनि ! भाग्यसेही तुम सियार, कीट, मूषिक, सांप वा मेढक नहीं हुए अथवा दूसरी किसी पापयोनिमें जन्म नहीं लिया। हे काश्यप ! मनुजत्व लाभसेही तुम्हें सन्तुष्ट रहना उचित है; तुम जब सब जीवोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हो, तब फिर दूसरे लाभकी क्या आवश्यकता है; मेरी दशा देखो, ये सब कृमि समूह मुझे डस रहे हैं, हाथ नहीं है, इसीसे मैं इन्हें नष्ट तथा निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तिर्य्यग् प्राणियोंको भी शरीर त्यागना पापका कारण हुआ करता है, इसलिये मैं इस शरीरको नहीं त्याग सकता और इससे अधिक पाप युक्त दूसरी योनिमें

पड़नेकी इच्छा नहीं होती। समस्त पाप योनियोंके बीच मैंने जो शृगाल योनि पाई है, इससे भी अधिक पाप युक्त दूसरी अनेक पापयोनि हैं, कितनेही लोग जातिके वरियेही अत्यन्त सुखी हुआ करते हैं; दूसरे लोग उसहीसे अत्यन्त दुःखित होते हैं; इस जगत्में कोई पुरुषको किसी विषयमें एकबारगी सुखी नहीं देखता हूं। मनुष्य लोग धनवान होके फिर राज्यकी इच्छा करते हैं राज्य प्राप्त होनेपर फिर देवत्वकी इच्छा किया करते हैं, देवत्व प्राप्त होनेपर इन्द्रत्व लाभके अभिलाषी होते हैं। तुम यदि धनवान हो जाओ तथापि राजा वा देवता न होगे, यद्यपि देवत्व लाभ करके अन्तमें इन्द्रत्व लाभ करो; तौभी तुम सन्तुष्ट न होगे। प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। बहुत जल रहने पर भी प्यास कभी नहीं शान्त होती, काष्ठ प्राप्त होनेसे अग्निकी तरह प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे विषयतृष्णा अत्यन्तही बढ़ती है। जैसा तुम्हें शोक हुआ है, वैसाही हर्ष भी तुममें निवास कर रहा है, इससे तुम आत्मागत हर्षसे शोकको दूर करो। जब कि सुख और दुःख दोनोंही प्राप्त होते हैं, तब फिर उसके लिये दुःख करनेका क्या प्रयोजन है। जो लोग कामना और उसके सब कार्य्योंकी मूल बुद्धि तथा इन्द्रियोंको पिञ्जरेमें बद्ध पक्षीकी तरह शरीरके बीच रोक रख सकते हैं; जैसे कल्पित दूसरे सिर और तीसरे हाथका कटना सम्भव नहीं है, वैसेही उन्हें किसी स्थानमें किसी विषयमें भय नहीं होता। जो पुरुष जिस विषयका स्वाद नहीं है, उसमें कामना नहीं होती; दर्शन, स्पर्शन और श्रवण निबन्धनसे रसज्ञान हुआ करता है। तुमने कभी मद्य और लड़ाक पक्षीके मांसका स्वाद नहीं ग्रहण किया है; किन्तु उपर कही हुई दोनों वस्तुओंसे बढ़के उत्तम भक्ष्य और कुछ भी नहीं है। हे काश्यप! जीवोंको जो सब भक्ष्य वस्तु हैं, उनमेंसे तुमने जिसे नहीं खाया है, उसके विषयमें तुम्हारा स्वाद ग्रहण भी नहीं है; इसलिये अशन स्पर्शन और दर्शन त्याग विषयमें नियम निर्द्धारण करना ही पुरुषोंको निःसन्देह कल्याणकारी बोध होता है। हाथयुक्त जीवही निःसन्देह बलवान् और धनवान् हुआ करते हैं। मनुष्य लोग मनुष्योंके दासत्व शृंखलमें बद्ध होकर बध बन्धन आदि विविध क्लेशोंसे बार बार क्लेशित हुआ करते हैं, वे लोग वैसी अवस्थामें पड़के भी क्रीड़ा, आमोद तथा हास्य किया करते हैं। दूसरे बाहुबलशाली कृतविद्य मनस्वी पुरुष भी भवितव्यताकी अलङ्घनीयता निबन्धनसे अत्यन्त निन्दित पापकर्म्ममें अनुरक्त होते हैं, वे लोग अत्यन्त घृणित नीच व्यवहार करनेमें भी उत्साह किया करते हैं। पुक्कस और चाण्डाल जातीय पुरुष भी मायाके प्रभावसे आत्मयोनिमेंही सन्तुष्ट रहके आत्म त्यागकी इच्छा नहीं करते; इसलिये मायाका कैसा प्रभाव है, इसे देखिये।

हे काश्यप! विकल अंगवाले, पक्षाघातके कारण अर्द्धाङ्ग और रोगमें फंसे हुए मनुष्योंको देखकर तुम निज जातिके बीच अपनेको सहजमेंही सब तरहसे सुखी और लाभवान समझो तुम्हारा यह ब्राह्मण शरीर यदि निर्भय और रोग रहित रहे तथा सब अङ्ग विकल न हों तो तुम जनसमाजमें निन्दित न होगे। हे विप्रवर! कोई जाति नाशकारी कलङ्क होने पर भी जब आत्म परित्याग करना उचित नहीं है, तब किस कारण तुमने शरीर त्यागनेका सङ्कल्प किया है। तुम्हें आत्म त्याग करना योग्य नहीं है, तुम धर्म्म साधनके लिये उठके खड़े हो जाओ। हे ब्रह्मन्! यदि तुम मेरा यह वचन सुनो और इसमें श्रद्धा करो, तो वेदमें कहे हुए धर्म्मके मुख्य फल पाओगे। तुम प्रमाद रहित होके वेदाध्ययन, अग्नि संस्कार,

सत्य वचन इन्द्रिय दमन और दानधर्म प्रतिपालन करो; किसीके साथ ईर्षा न करना। जो लोग स्वाध्यायमें रत होके यजन याजन आदि कर्म्मोंके अधिकारी हुए हैं, वे शोक क्यों करेंगे। किस लिये वो अमङ्गल चिन्ता करनेमें रत होंगे; वे लोग यथा उचित यज्ञ आदिके जरिये समय बितानेकी इच्छा करके अत्यन्त सुख लाभ करेंगे। जो लोग शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें जन्म लेते हैं, वे यज्ञ, दान और सन्तान उत्पन्न करनेके लिये शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, और जो लोग आसुर नक्षत्र, दुष्ट तिथि तथा दुष्ट मुहूर्त्तमें उत्पन्न हुए हैं, वे यज्ञहीन और सन्तान रहित होके आसुरी योनिमें पड़ते हैं। मैं पूर्व्व जन्ममें वेदनिन्दक, पुरुषार्थ रहित, निरर्थक, आन्विक्षिकी विद्यामें अनुरक्त, कुतर्क, परायण, नास्तिक और पाण्डित्याभिमानी महामूर्ख था, सभाके बीच युक्तियुक्त हेतु-वादोंको प्रकट किया करता था, वेद वचनमें अनादर प्रकाशित करके चिल्लारस्वरसे ब्राह्मणोंको अतिक्रम करके वक्तृता करता और स्वर्ग आदि अदृष्ट फलोंमें सुझे शङ्का था। हे द्विजवर! उसही फलके परिणाम बलसे मुझे यह शृगालत्व प्राप्त हुई है; मैं सियार होके भी यदि कभी सैकड़ों दिन तथा रात्रिके अनन्तर फिर मनुष्य-योनि पाऊंगा; तो सदा सन्तुष्ट, प्रमाद रहित होकर यज्ञ दान और तपस्यामें रत रहके ज्ञेय, पदार्थोंका ज्ञान और त्यज्य विषयोंका परित्याग करूंगा।

सियारका वचन समाप्त होनेपर कश्यप वंशीय मुनिपुत्रने विस्मय युक्त होके उठकर कहा कैसा आश्चर्य्य है; तुम अत्यन्त निपुण वक्ता और बुद्धिमान् हो। ब्राह्मणने ऐसा वचन कहके ज्ञान युक्त नेत्रसे उस सियारकी ओर देखतेही देवोंके देव शचिपति इन्द्रका दर्शन किया, अनन्तर द्विजवर कश्यपने देवराजकी भक्ति श्रद्धाके सहित पूजा की और उनकी आज्ञासे निज स्थानमें प्रविष्ट हुए।

१८० अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या, गुरुसेवा और बुद्धि कल्याणप्राप्तिका कारण है, वा नहीं; उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मन स्वयं काम क्रोध आदि अनर्थके वशमें होकर पापमें प्रवृत्त होता है। और निज कर्म्मोंको पाप युक्त करके क्लेशदायक नरक आदिकोंमें दुःख भोगका अधिकारी हुआ करता है, पाप करनेवाले दरिद्रपुरुष बार बार दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु लाभ करते हैं, और सत्कर्म्मोंमें रत, दान्त, श्रद्धावान धनाढ्य मनुष्य सदा उत्सव, स्वर्ग और सुख लाभ किया करते हैं, नास्तिकोंका दोनों हाथ बांधके दुष्ट हाथियोंके जरिये दुर्गम और सांप तथा घोर भयसे युक्त वनके बीच रखना उचित है, इसके अतिरिक्त उन लोगोंके लिये और कुछ शासन नहीं है। जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंके विषयमें प्रीति किया करते हैं, वे सब वदान्य पुरुष दान आदि कर्म्मोंको अनुकूलताके कारण योगियोंके कल्याणकारी मार्गमें देवयानमें निवास करनेमें समर्थ होते हैं धान्यके बीच पुलाक और पक्षियोंके बीच जैसे मशक निकृष्ट हैं, वे वैसेही जिन मनुष्योंको धर्म्म कर्म्ममें सुखकी आशा नहीं है, वे भी मनुष्योंके बीच निकृष्ट हुआ करते हैं।

पुरुषके परम यत्नवान होनेपर भी पूर्व्वकर्म उसका अनुसरण करते हैं, सोनेपर भी उसके सहित शयन किया करते हैं, प्राचीन कर्म्म जब जिस प्रकारसे किया जाता है, उसही समय वह उसी प्रकार फलदायक वा अफलदायक हुआ करता है। प्राक्तन कर्म्म छायाके समान है।

पुरुषके स्थित होनेपर स्थित, गमन करनेपर अनुगामी और कर्म करनेपर उसके सहित अविच्छिन्न रहके अनुकूलता करता है। पहिले जिस तरहसे जो कर्म किया गया है, मनुष्य उसही आत्मकृत कर्मको उसही प्रकार सदा भोग किया करता है। निज कर्म फलका आश्रय स्वरूप पूर्व्वकर्मके कारण अदृष्टके जरिये प्रेरित जीवोंको काल सदा आकर्षण कर रहा है। जैसे फूल और फल अवचित न होनेसे निज समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म भी, वैसे ही मान, अवमान लाभ, हानि, चय और उदय आदि प्राक्तन कर्म्मके भीतर बार बार प्रवृत्त और निवृत्त होते हैं। मनुष्य गर्भ शय्यामें शयन करते हुए भी पूर्व्व देह सम्बन्धीय आत्मकृत सुख दुःख भोग करता है, क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जो लोग जिस अवस्थामें जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म किया करते हैं, वे उसही अवस्थामें उसका फल पाते हैं। जैसे बछड़ा हजार गऊके बीच निज जननीको खोज लेता है वैसेही पूर्व्वकर्म भी कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे वस्त्र पहिले मलसे मलिन होके फिर धोनेसे शुद्ध होते हैं। उसी तरह विषयत्यागनिबन्धनसे सन्तापित लोगोंको अत्यन्त महत् अनन्त सुख हुआ करता है। तपोवनमें बहुत समयतक तपस्या करके धर्म्मबलसे जिसके पाप धोये गये हैं, उन्होंके मनोरथ सिद्ध होते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें मछलियोंके पैर नहीं दीखते, ज्ञानवान मनुष्योंकी गति भी वैसी ही है। दूसरे आक्षेप और अपराध वाक्यके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है, निपुणताके सहित अपने अनुरूप हितसाधन करना उचित है, ऐसा होनेसे ही प्रभा और कल्याणलाभ हुआ करता है।

१८१ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलय कालमें किसमें जाके लयको प्राप्त होता है, आप मुझसे वही कहिये। समुद्र, पहाड़, आकाश, बलाहक, पृथ्वी, पवन और अग्निके सहित इस संसारको किसने बनाया है। सब जीव किस तरह उत्पन्न हुए हैं; वर्णविभाग किस प्रकार हुआ है; सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरनेपर कहां जाते हैं इस लोकसे परलोकमें कैसे जाना होता है; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, भरद्वाजके प्रश्नके अनुसार भृगु मुनिके कहे हुए इस प्राचीन इतिहासको पुराने पण्डित लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। कैलास शिखरपर बैठे हुए महातेजस्वी दीप्यमान महर्षि भृगुका दर्शन करके भरद्वाज प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

भरद्वाज बोले, समुद्र, पर्व्वत, आकाश, बलाहक, भूमि, पवन और अग्निके सहित इस विश्वको किसने बनाया है। सब भूत किस प्रकार उत्पन्न हुए और वर्ण विभाग किस तरह हुआ है, सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवित लोगोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरकेही कहां गमन करते है, परलोक और इस लोकके विषय किस प्रकारके हैं? यह सब वर्णन करनेके उपयुक्त आपही है; इसलिये ऊपर कहे हुए सब विषयोंको वर्णन करिये।

ब्रह्मसङ्काश ब्रह्मर्षि भृगुने भरद्वाजके ऐसे संशययुक्त विषयोंको सुनके उनसे सब विषय कहने लगे।

भृगु बोले, सत् और असत् रूपसे अनिर्व्वचनीय अज्ञानसे उत्पन्न मानस नाम महर्षियोंसे विश्रुत अनादि निधन, अभेद्य, अजर, अमर, अव्यक्त रूपसे विख्यात, अक्षय, अव्यय और

शास्त्रत एक देवता है ; अब विशिष्ट जीव जिससे उत्पन्न होते और अन्तमें जिसमें लीन हुआ करते हैं ; वही देव पहिले महत्‌को सृष्टि करता है, महत्‌से अहंकार, अहङ्कारसे आकाश, आकाशसे जल, जलसे अग्नि वायु और अग्नि तथा वायुके मेलसे महीमण्डल उत्पन्न होता है, अनन्तर स्वयम्भू मानस दिव्य तेजमय एक पद्मकी सृष्टि करते हैं उसही पद्मसे वेद पूर्ण ऐश्वर्य्य विधि ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। आकाश आदि पञ्चभूतमय और जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके सृष्टिकर्त्ता वह महातेजस्वी ब्रह्मा उत्पन्न होतेही "सोऽहं"—यह वाक्य उच्चारण करनेसे अहङ्कार नामसे विख्यात् हुए हैं। सब पर्व्वत जिसकी हड्डी, पृथ्वी जिसका मेद और मांस है, सागर उसका रुधिर, आकाश पेट, पवन, श्वास, अग्नि. तेज, नदियें शिरा, चन्द्रमा और सूर्य्य उनके दोनों नेत्र, ऊर्द्ध तथा आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण और सब दिशा उनके हाथ हुए हैं ; वह अचिन्त्यस्वभाव ब्रह्मा सिद्धोंको भी निःसन्देह दुर्व्विज्ञेय हैं। वही विश्वव्यापी भगवान अनन्त नामसे विख्यात् हैं। सब भूतोंके आत्मभूत अहङ्कार तत्वमें जो स्थित हैं ; कृतबुद्धि पुरुष उन्हें सहजमें जाननेमें समर्थ नहीं होते। सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण अहङ्कारको जिन्होंने सृष्टि की थी, जिससे कि सम्सार उत्पन्न हुआ है ; तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने उसका विषय तुमसे कहा।

भरद्वाज बोले, आकाश, दिशा, भूमि और अनिलका क्या परिमाण है ? पूरी रीतिसे उसे वर्णन करके मेरा संशय छेदन करिये।

भृगु बोले, हे तपोधन ! चौदहों भुवन परिपूरित, सिद्ध देवताओंसे सेवित यह रमणीय आकाश अनन्त है ; इसका अन्त नहीं मालूम होता। ऊर्द्ध गति और अधोगतिके अनुसार दिनमें चन्द्रमा और रात्रिमें सूर्य्यदेव कमलाओंके नेत्रोंसे नहीं दीखते ; उस दृष्टिके अगोचर स्थानमें सूर्य्यके समान प्रकाशयुक्त अग्निके समान तेजस्वी स्वयं प्रकाशमान् देवता लोग निवास करते हैं। वे प्रथित तेजस्वी देवता लोग भी दुर्गमत्व और अनन्तत्व निबन्धनसे आकाशका अन्त नहीं देख सकते। हे मानद ! तुम मेरे समीप मालूम करो, कि ऊपरके सब जलते हुए लोक भी स्वयं प्रकाशमान देवताओंके जरिये इस अप्रमेय आकाशमें रुके हुए हैं। पृथ्वीके अन्तमें समुद्र, समुद्रके अन्तमें अन्धकार, अन्धकारके अन्तमें जल और जलके अन्तमें अग्नि है। इसी तरह रसातलके अनन्तर जल जलके बाद सर्प, सांपोंके अनन्तर फिर आकाश और आकाशके बाद फिर जल है। इसी प्रकार जलमय भगवानका अन्त मेरे समीप मालूम करो। अग्नि, वायु और जलका अन्त देवताओंको भी दुर्ज्ञेय है। अग्नि वायु, जल और पृथ्वीतलका रूप आकाशके समान है ; परन्तु तत्व दर्शनके कारण आकाशसे पृथक् मालूम होता है। मुनिलोग विविध शास्त्रोंमें इसी प्रकार त्रैलोक्य-सागर विषयमें विहित प्रमाण पाठ किया करते हैं। अदृश्य और अगम्य विषयका प्रमाण कौन कह सकता है ; देवताओं और सिद्धोंके गमन करनेका मार्ग आकाशकाही जब परिमाण नहीं है, तब अनन्त नामसे विख्यात् नामहीके अनुरूप परमात्मा स्वरूप महात्मा मानसका अन्त किस प्रकार सम्भव हो सकता है। जबकि उस दिव्य रूपकी ह्रास और वृद्धि होरही है तब दूसरा कौन पुरुष उसके जाननेमें समर्थ होगा, यदि वैसा दूसरा कोई रहता तो उसे जान सकता ; जो हो, उस स्थूल सूक्ष्म कार्य्य रूप पुष्करसे पहिले धर्म्ममय परम श्रेष्ठ, सर्व्वज्ञ, मूर्त्तिमान् सर्व्वशक्तिमान् प्रजापति सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं।

भरद्वाज बोले, ब्रह्मा यदि पुष्करसे उत्पन्न हुए तो पुष्कर उनसे ज्येष्ठ हुआ परन्तु आप

ब्रह्माको पूर्व्वज कहते हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह होता है।

भृगु बोले, मानसको जो मूर्त्तिब्रह्मरूपसे विख्यात् हुई है, उसही ब्रह्माके आसन विधानके लिये मानस पृथ्वीही पद्म रूपसे कही गई है; अर्थात् स्थूल सृष्टिके पहिले सूक्ष्म रूपसे जो मानस सृष्टि हुई थी, उस सूक्ष्म सृष्टिके अनन्तर दृश्यमान् स्थूल जगत्की सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए; जो हो, आकाश पर्य्यन्त ऊंचा सुमेरु पर्व्वत उस मानस पद्मकी कर्णिका स्वरूप है, जगत् प्रभु प्रजापति उसके बीच निवास करते हुए सब लोकोंकी सृष्टि करते हैं।

१८२ अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, हे द्विजसत्तम! मेरुके बीच निवास करते हुए सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्मा किस प्रकार विविध प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, मानसने पहिले मनसे विविध प्रजाकी सृष्टिकी थी; जीवोंकी रक्षाके लिये पहिले जलकी सृष्टि हुई, जो कि सब जीवोंका प्राण स्वरूप है; जिससे सब प्रजाकी बढ़ती होती और जिसे परित्याग करनेसे सब कोई नष्ट हुआ करते हैं; उसही जलसे यह समस्त जगत् घिरा हुआ है। पृथ्वी, पर्व्वत, बादल और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो सब विग्रह विशिष्ट वस्तु हैं, वे सबही जल सम्बन्धीय हैं; क्यों कि इसे जानना चाहिये कि, जलही घन होकर पृथ्वी आदि रूपसे परिणत हुआ है।

भरद्वाज बोले, किस प्रकार जल उत्पन्न हुआ, किस तरह अग्नि और वायु प्रकट हुए, पृथ्वीकी भी किस प्रकार उत्पत्ति हुई? इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! पहिले समय सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मर्षियोंका एक स्थानमें समागम हुआ; उन लोगोंके अन्तःकरणमें सर्व्वलोक उत्पत्ति विषयक सन्देह उत्पन्न हुआ था। उन सब ब्राह्मणोंने निश्चल और निराहारी होकर वायु भक्षण करते हुए मौन होके तथा ध्यान अवलम्बन करके देव परिमाणसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त वहां निवास किया। अनन्तर उनके हृदयाकाशमें दिव्य-सरस्वती प्रकट हुई; ब्रह्ममयी वाणी सबके ही श्रवणगोचर हुई। सृष्टिके पहिले यह अनन्तर आकाश अचलकी तरह निश्चल था, चन्द्रमा, सूर्य्य और वायुका सम्पर्क नहीं था, इससे यह प्रसुप्तकी भांति प्रकाशित होता था। तमोराशिके बीच दूसरे अन्धकारके प्रवेशकी तरह उस आकाशसे जल उत्पन्न हुआ, जल संघर्षसे वायु प्रकट हुआ। छिद्र रहित पात्र निःशब्द जान पड़ता है, परन्तु जैसे जलपूर्ण वायु उसे शब्दयुक्त करता है, वैसेही जलसे पूर्णनिरवकाश आकाशके बीच शब्दयुक्त वायु सागर तलको भेदते हुए उत्पन्न होता है। उस ही जल संघर्षणसे उत्पन्न हुआ यह वायु बह रहा है; आकाशको आश्रय करनेकी अवधिसे कभी प्रशान्त नहीं होता। वायु और जलके संघर्षणसे दीप्ततेज उर्द्धशिखा महाबल अग्नि आकाश-मण्डलको प्रकाशित करती हुई प्रकट हुई और वायुके संयोगसे जल और आकाशको एकत्र करके घनीभूत हुई। अग्निके आकाशसे गिरते रहने पर उसका जो स्नेहभाग था वही घनीभूत होकर पृथ्वी रूपसे परिणत हुआ। भूमि ही समस्त रस, गन्ध और प्राणियोंकी योनि है, भूमिसे ही सब वस्तु उत्पन्न होती हैं।

१८३ अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, प्रजापतिने जो पहिले भूतोंकी सृष्टि की थी और जिसके जरिये वे सब लोक घिरे हुए हैं, उनका महाभूत नामसे प्रसिद्ध होनेका क्या कारण है और उन ब्रह्मा-

बुद्धिमान् ब्रह्माने जब बहुतसे प्राणियोंकी सृष्टि की है; तब आकाश आदि पांचको ही महाभूत नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई ?

भृगु बोले, परिमित पदार्थके पक्षमें महत् शब्दका योग होता है और अपरिमित पदार्थ ही भूत नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं, इस ही कारण आकाश आदिकोंका महाभूत नाम युक्तियुक्त होता है। चेष्टात्मक वायु शुषात्मक आकाश उष्णात्मक अग्नि, द्रवमय जल, और अस्थिमांसमय कठिनात्मक पृथ्वी इन पञ्चभूतोंके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है; स्थावर जङ्गम सब पदार्थ ही इन पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं; कान, नाक, जीभ, त्वचा और नेत्र इन पांचोंका नाम इन्द्रिय है।

भरद्वाज बोले, स्थावर जङ्गम सब पदार्थ ही यदि पञ्चभूतोंसे संयुक्त हैं, तो वृक्षादि स्थावर शरीरोंमें पञ्चभूत क्यों नहीं दीखते। उष्मभाव निबन्धन निरग्नि और चलनसे रहित होनेसे चेष्टाहीन प्रकृत रूपसे निविड़ संयोग विशिष्ट वृक्षोंके शरीरमें पञ्चभूत नहीं दीख पड़ते। जिन्हें देखने, सुनने, सूंघने, चखने और स्पर्श करनेकी शक्ति नहीं है, वे किस प्रकार पाञ्चभौतिक होंगे। जो द्रव पदार्थ नहीं है, जिनमें अग्नि, भूमि और वायु नहीं है तथा जिनमें आकाश नहीं मालूम होता; उन वृक्षोंमें भौतिकत्व सम्भव नहीं हो सकता।

भृगु बोले, वृक्षोंके निविड़ संयोग विशिष्ट होने पर भी उनमें निःसन्देह आकाश है, क्यों कि सदाही उनमें फूल और फल प्रकाशित होते हैं उष्णताके कारण उनके त्वचा, फल पुष्प और पत्ते मलिन होते हैं; इससे अग्निके रहनेकी असम्भावना नहीं है। वृक्ष समूह म्लानि युक्त और शीर्ण होते हैं, इससे उनमें अवश्यही स्पर्शात्मक वायु है। अग्नि, वायु और वज्रके शब्दसे वृक्षोंके फल फूल गिरते हैं, इससे जबकि श्रोतसे शब्दका ज्ञान होता है, तब अवश्यही वे सब सुनते हैं। जबकि लता वृक्षोंमें लपटती और सब ओर गमन किया करती हैं, तब वृक्षोंको अवश्यही दर्शन शक्तिसे युक्त कहना पड़ेगा; क्यों कि दर्शन शक्तिसे हीनको गमन करनेकी सम्भावना नहीं रहती। पवित्र और अपवित्र गन्ध और अनेक तरहकी धूप सब वृक्ष रोग रहित और पुष्पित हुआ करते हैं, इससे वे अवश्यही प्राणशक्तिसे युक्त हैं; जड़से जलको आकर्षण व्याधि और उसकी प्रतिक्रिया दर्शन निबन्धनसे यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि वृक्षोंमें चखनेकी शक्ति है। कमल, उत्पल, मृणालसे जैसे लोग ऊपरको जल उठाते हैं, वैसेही वृक्ष वायुसे संयुक्त होकर मूलके जरिये जल पीते हैं। वृक्षोंको सुख दुःखका ज्ञान है और काटनेसे फिर उत्पत्ति होती है, इससे देखता हूं, कि उनमें जीवन है; इसलिये यह नहीं कह सकते कि वृक्षोंमें चैतन्यता नहीं है। वृक्ष जो जल खींचता है, अग्नि और वायु उसे जीर्ण किया करते हैं; उनके आहारके परिमाण अनुसार स्निग्धताकी भी वृद्धि होती है। सब जङ्गम पदार्थोंके शरीरमें पञ्चभूत संयुक्त हैं, जिनके जरिये सब शरीरके चेष्टा सम्पन्न होती हैं, वह सब हर एकमें प्रकाशित हुआ करता है। त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा और स्नायु, ये पांचो पार्थिव पदार्थ संहतरूपसे शरीरमें विद्यमान हैं; प्राणियोंमें अग्नि स्वरूप तेज, क्रोध, नेत्र, उष्मा और जठराग्नि जो कि सब भक्ष्य वस्तुओंको परिपाक करती है, ये पांचो आग्नेय पदार्थ हैं। कान, नाक, मुख, हृदय और कोठे अर्थात् अन्न आदिके स्थान, ये पांचो प्राणियोंके शरीरमें आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। कफ, पित्त, पसीना, चर्ब्बी और रुधिर, ये पांचो जलके अंश प्राणियोंके शरीरमें सदा स्थित रहते हैं। प्राणी लोग प्राण वायुके आसरे गमन आदि कार्य्य करते, व्यानवायुको अवलम्बन करके बलसाध्य कार्य्योंके लिये तैय्यार होते हैं, अपान वायु अधोगमन

करता है, समान वायु हृदयमें स्थित रहता है और उदान वायुसे उच्छ्वास, उर, कण्ठ और शिर स्थानको भेदकर शब्द उच्चारण होता है। ये पांचों प्रकारकी वायु इसी भांति प्राणियोंको अंगचालन आदि चेष्टा सिद्ध करती हैं। भूमिसे गन्ध, जलसे रस, तेजोमय नेत्रसे रूप और वायुसे स्पर्श ज्ञान हुआ करता है। गन्ध स्पर्श, रूप और शब्द, ये पृथ्वीके पांच गुण हैं; उसके बीच विस्तार पूर्व्वक गन्धका नव प्रकार गुण कहता हूं सुनो। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, दूरगामी, स्निग्ध, रूखा और विषद, ये नव प्रकार पार्थिव पदार्थोंके बीच गुण हैं। नेत्रसे पृथ्वी आदिका रूप देखा जाता है, त्वक इन्द्रियसे स्पर्श ज्ञान उत्पन्न होता है। शब्द, स्पर्श रूप और रस, ये चारों जलके गुण हैं, तिसमें जिस तरह रसज्ञान हुआ करता है, उसे कहता हूं सुनो। विख्यात महर्षियोंने रसको अनेक प्रकारका कहा है; मीठा, खारा, तीखा, कषैला, खट्टा और कडुवा, ये छः तरहके रस जलमय कहके प्रसिद्ध हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनों अग्निके गुण हैं; ज्योतिके जरिये वस्तुका रूप देखा जाता है। रूप अनेक प्रकार है; ह्रस्व, दीर्घ स्थूल, चतुरस्र, गोलाकार, सफेद, काला, लाल, नीला, पीला, अरुण, कठिन चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु और दारुण, ये सोलह तरहके रूपके गुण ज्योतिमय कहके विख्यात हैं। शब्द और स्पर्श, ये दोनों वायुके गुण हैं, उसमेंसे स्पर्श अनेक प्रकारका है! गर्म्म, ठण्डा, सुखदायक, दुःखदायक, स्निग्ध, विषद, कड़ा, कोमल, श्लक्ष्ण, लघु और गुरु ये ग्यारह प्रकार वायुके गुण हैं। आकाशका गुण केवल अकेला शब्द है; उस शब्दके अनेक भेद हैं, उसे विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम, धैवत, पञ्चम और निषाद ये सात प्रकारके गुण आकाशसे उत्पन्न होते हैं; ये सब शब्द व्यापक भावसे सर्व्वत्र रहनेपर भी पटह आदि वाद्ययन्त्रोंमें विशेषरूपसे मालूम हुआ करते हैं। मृदंग, भेरी, शङ्ख आदि वाद्ययन्त्र, बादल, रथ, प्राणी वा अप्राणी, जिनमें जो कुछ शब्द सुन पड़ते हैं, वे सब इन सातों स्वरोंके अन्तर्गत कहके वर्णित हुआ करते हैं। इसी भांति आकाशसे प्रकट हुए शब्दका अनेक प्रकार रूप है, पण्डित लोग आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति कहा करते हैं। ये सब शब्द स्पर्शसे प्रतिहत होकर बीच तरङ्गकी तरह उत्पन्न होते हैं और विषम अवस्थामें रहनेसे वे मालूम नहीं होते। देहारम्भकत्वक आदि प्राण और इन्द्रियोंके जरिये प्रथमसे ही बढ़ते रहते हैं। जल, अग्नि और वायु सदा देहधारियोंमें जाग्रत हैं, येही शरीरके मूल हैं, पञ्चप्राणोंको अवलम्बन करके इस शरीरमें निवास करते हैं।

१८४ अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! शरीरमें स्थित अग्नि इस पाञ्चभौतिक देहको अवलम्बन करते हुए किस प्रकार निवास करती है और वायुही किस प्रकार आकाश विशेषके जरिये सब शारीरिक चेष्टाओंको समाधान किया करता है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे समीप वायुकी गतिका विषय कहता हूं, वायु जिस प्रकार प्राणियोंको शारीरिक चेष्टा समाधान करता है, उसका विषय सुनो। अग्नि मस्तकमें निवास करके शरीरको पालती हुई शारीरिक चेष्टाओंको समाधान करती है और प्राणवायु मस्तक और अग्नि दोनोंमें वर्त्तमान रहके शरीरके गमन आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह प्राणही सर्व्वभूतमय सनातन पुरुष है; मन, बुद्धि, अहङ्कार सब जीव और शब्द स्पर्शरूपी विषयोंके स्वरूप, आन्तरिक विज्ञान और बाह्य इन्द्रिय आदि प्राणसेही परिचालित होती हैं। अनन्तर समान वायुके

जरिये इन्द्रिय आदि निज निज गतिको अवलम्बन करती हैं। अपानवायु जठराग्निको अवलम्बन करके मूत्राशय और पुरीषाशयमें स्थित अशित पीत वस्तुओंको परिपाक करके मूत्र और पुरीषरूपसे परिणत करता है। गमन आदिके कार्य्य, उसके अनुकूल चेष्टा और बोझा ढोनेकी सामर्थ, इन तीनों विषयोंमें जो वायु वर्त्तमान रहती है, अध्यात्मवित पुरुष उसे उदान वायु कहा करते हैं। मनुष्योंके शरीरकी सब सन्धियोंमे जो वायु संयुक्त है उसे व्यान वायु कहा जाता है। त्वक आदिमें फैली हुई जठराग्नि समान वायुसे सञ्चालित होकर रस, धातु, रुधिर और पित्त आदिकी परिणति कियाकरती है,यह जठराग्नि नाभीकनीचे स्थित होकर अपनी ऊर्द्ध-गतिको प्राणके मध्यस्थलमें स्थित करके उसकी सहायतासे अन्न आदि परिपाक करती है। मुखसे पावपर्य्यन्त एक प्रवाहमान् स्रोत है, उसके शेषमें गुह्य स्थान है। उस स्रोतके चारो ओरसे देहके बीच असंख्य नाड़ी विस्तीर्ण होरही हैं। प्राण वायुकी सहायतासे उसकी सहचर जठराग्निका समागम हुआ करता है, उस जठराग्निका नाम उष्मा है ;यही देहधारियोंके भुक्त अन्न आदिको परिपाक करती है। जठराग्निके वेगको बढ़ाने-वाला प्राणवायु पावतक आके प्रतिघातको प्राप्त होता है। तब वह फिर ऊपरको आके जठराग्निका सब तरहसे उत्क्षिप्त करता है। नाभीके नीचे पक्वाशय अर्थात् पक्वअन्न आदिकोंका स्थान है और ऊपरके हिस्से में आमाशय स्थित है ; शरीरके मध्य स्थलमें समस्त प्राण स्थित होरहा है। प्राण आदि पञ्च वायु और नाग, कूर्म्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नाम पञ्च-वायु, इन दश प्रकारके वायुके सहार चलकर सब नाड़ियें तिर्य्यग, ऊर्द्ध और अधोभाग हृदय प्रदेशमें प्रस्थान करती हुई अन्नके रसोंको ढोया करती हैं। मुखसे पांव तक जो स्रोत है, वही योगियोंके योगका पथ है ; क्लान्ति विजयी सुख दुःखको समान जाननेवाले धीर योग मस्तक स्थित सहस्र दल पद्ममें सुषुम्ना नाड़ीके जरिये इसही मार्गमें आत्माको धारण करते हुए परम पद लाभ करते हैं। स्थालीमें रखी हुई वाह्य अग्निकी तरह देहधारियोंकी बुद्धि, मन, कर्म्मेन्द्रिय और प्राण अपानके जरिये समर्पित जठराग्नि सदा प्रदीप्त हुआ करती है।

१८५ अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, प्राणवायुही यदि प्राणियोंको जीवित और चेष्टा युक्त करती है और प्राणकी सहायतासेही यदि सब जीव श्वास छोड़ते और वार्त्तालाप किया करते हैं, तब जीव स्वीकार करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है और अग्निका गुण उष्ण भाव है, उस अग्निके जरिये ही यदि अन्न आदि परिपाक होते और अग्निही यदि सब वस्तुओंको जीर्ण करती है, तब जीव निरर्थक है, मरेहुए जन्तुओंमे जीव नहीं प्राप्त होता, वायु ही उसे परित्याग करता और उसका उष्ण भाव नष्ट होजाता है, यदि जीव वायुमय होता अथवा वायुके सहित संश्लिष्ट रहता, तो वायु चक्रकी तरह दीखके वायुकी तरह विगत हो सकता है ; जैसे पत्थरमें बधा हुआ तूंबी फल जलमें डूब जाता है और बन्धनसे छूटनेपर उत्मग्न हुआ करता है, वैसेही जीव यदि वातप्रधान सघातसे सश्लिष्ट रहै; तो संघात नाशसे वह भी प्रनष्ट होगा। जैसे कूएंके बीच सलिलान्तर और अग्निके बीच प्रकाश प्रवेश करतेही नष्ट होता है, तैसेही वायु मण्डल विशिष्ट जीव भी नष्ट हो सकता है। इस पाञ्च भौतिक शरीरमें जीवन कहां है। पञ्चभूतोंमेंसे एकका अभाव होनेसेही अन्य चारोंका एकत्र सग्रह नहीं होता। अना-हारके कारण समस्त जल, उच्छ्वास निग्रह निब-न्धनसे वायु, बात आदिसे कोष्ट निरुद्ध होनेपर आकाश और अभोजनके कारण अग्नि नष्ट हुआ करती है ; व्याधिसे पराक्रम नष्ट होने-

पर पार्थिव अंश शोर्ण हो जाता है ; इसके बीच अन्यतर पीड़ित होनेसे भौतिक संघात पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं ; पञ्चभौतिक शरीर पञ्चत्वको प्राप्त होनेपर जीव किसका अनुसरण करेगा, किन विषयोंका ज्ञान करता है। "परलोक गमन करनेपर यह गऊ मेरा उद्धार करेगी"—इस उद्देश्यसे गऊ दान करनेपर कोई पुरुषके मरनेसे वह गऊ फिर किसका उद्धार करेगी। गऊ दान लेनेवाला और दाता, सभी जीव समान भावसे इस जगत्में मृत्युको प्राप्त होते हैं ; तब फिर उन लोगोंका समागम कहां। पक्षियोंसे उपभुक्त, पहाड़की शिखरसे गिरे और अग्निसे जले हुए पुरुषोंमें पुनर्जीवन कहां। जबकि कटे हुए वृक्षोंकी जड़ फिर उत्पन्न नहीं होती, केवल उसके बीज उत्पन्न हुआ करते हैं ; तब मरा हुआ पुरुष कहांसे पुनरागमन करेगा। पहिले बीज मात्र उत्पन्न हुआ था ; जो इस समय भी परिवर्त्तित होता है। मरण धर्मसे युक्त प्राणी लोग मरके प्रनष्ट होते हैं ; बीजसे बीजही प्रवर्त्तित हुआ करता है।

१८६ अध्याय समाप्त।

---

भृगु बोले, हे महर्षि ! जीवका विनाश नहीं होता ; प्राणी देहान्तरमें गमन करते हैं, शरीरही नष्ट होता है। जैसे लकड़ियोंके जलनेसे अग्नि विद्यमान रहती है, वैसेही शरीरके नष्ट होनेपर शरीराश्रित जीव कभी नष्ट नहीं होता।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन् । यदि अग्निकी तरह जीवका विनाश नहीं होता यही आपकी सम्मत है, तब काठके जलनेपर अग्नि अदृश्य क्यों होती है। इससे बोध होता है, कि जैसे अग्नि काठ न मिलनेसे बुझ जाती है ; उसी प्रकार जीव भी नष्ट हुआ करता है। जिसकी गति, प्रमाण वा संस्थान कुछ भी नहीं रहता, उसे विद्यमान वस्तु कहके किस प्रकार विवेचना की जावे।

भृगु बोले, यह ठीक है कि काष्ठोंके नष्ट हो जानेपर अग्निकी प्राप्ति नहीं होती ; परन्तु जैसे अग्नि निराश्रय होकर आकाशके अनुगत होनेसे दुर्लक्ष्य हुआ करती है, वैसे ही शरीरके नष्ट होनेपर जीव आकाशकी तरह स्थिति करता है ; जीव अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे ज्योतिवाले पदार्थोंकी भांति निःसन्देह इन्द्रियगोचर नहीं होता। विज्ञान रूपी अग्नि प्राणोंको धारण करती है इसलिये उसेही जीव रूपसे जानो। यह अग्नि वायुके सहित निवास करती है और उच्छ्वास वायुके निग्रह-निबन्धनसे नष्ट होती है, उस शरीराग्निके नष्ट होनेसे देह चेत रहित हुआ करता है, और गिरके पृथ्वीमें लीन होजाती है, पृथ्वीही शरीरके निवासका स्थान है। स्थावर और जङ्गम समस्त पदार्थ निश्चय आकाशके अनुगत होता है, अग्नि वायुका अनुगमन किया करती है। आकाश, वायु और अग्नि, इन तीनोंकी ऐक्यताके कारण भूमिमें ये तीनों एकत्रित वा जल स्थित करता है। जहांपर आकाश, वहांही वायु है और जहां वायु है वहांही अग्नि स्थित रहती है ; ये तीनोंही अदृश्य हैं, केवल देहधारियोंके सम्बन्धमें दृश्य हुआ करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे महात्मन् ! यदि आकाश, वायु, जल, अग्नि और भूमि ये पञ्चभूतही देहधारियोंमें वर्त्तमान हैं ; तो इनके बीच जीव किस प्रकार है, यही आप मेरे समीप वर्णन करिये। पञ्चभूतात्मक पञ्च विषयोंमें रत, पञ्च इन्द्रिय और चेतनता युक्त प्राणियोंके शरीरमें जीव जिस प्रकार निवास करता है उसे मैं जाननेकी अभिलाषा करता हूं। मांस, रुधिर, मेदा स्नायु और हड्डियोंसे युक्त शरीरके नष्ट होनेपर जीवकी उपलब्धि नहीं होती। पञ्चभूतोंसे युक्त शरीर यदि जीव रहित हो, तो शारीरिक वा मानसिक दुःख उपस्थित होनेपर कौन उस दुःखको अनुभव करेगा ? हे महर्षि।

जीव दोनों कानोंसे वचन सुनता है; परन्तु मन विषयान्तरमें व्यग्र रहनेसे, वह उसे सुननेमें समर्थ नहीं होता; इसलिये जीव निरर्थक है। जीव सावधान होनेपर नेत्रसे सब दृश्य वस्तुओंको देखता है पर मन व्याकुल होनेपर नेत्रोंसे देखकर भी नहीं देख सकता। जीव निद्राके वशमें होनेसे देखने, सुनने, सूंघने और बोलनेमें समर्थ नहीं होता तथा स्पर्श ज्ञान और रसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। इस शरीरके बीच कौन प्रसन्न होता, कौन क्रुद्ध होता है, कौन शोक करता और कौन व्याकुल होता है, कौन इच्छा करता कौन चिन्ता करता, कौन द्वेष करता है और कौन वाक्य उच्चारण करता है? आप मुझसे उसेही कहिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! मन पञ्चभूतोंसे पृथक् नहीं है। इससे मनके जरिये शरीरके क्रियाका निर्व्वाह नहीं होता। एकमात्र अन्तरात्माही स्थूल और सूक्ष्म शरीरके कार्य्योंका निर्व्वाह करता है; अन्तरात्माही शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस और दर्शन आदि सब विषयोंको जानता है। वह अन्तरात्माही पाञ्च भौतिक शरीरमें पाञ्चगणोंसे युक्त मनका द्रष्टा है और मनके जरिये सब शरीरके अनुगत होकर सुख दुःखोंका अनुभव करता है। अन्तरात्मा जब देहसे पृथक् होता है तब भौतिक शरीर कुछ भी अनुभव करनेमें समर्थ नहीं होता है। शरीराग्निके शान्त होनेपर जब कि दर्शन स्पर्शन और उष्णभाव कुछ भी नहीं रहता तब शरीर नष्ट होता है, जीवका कदापि विनाश नहीं होता। दृश्यमान् समस्त संसार जलमय है, जलही देहधारियोंकी मूर्त्ति है; जलके बीचही चित् स्वरूप मानस ब्रह्मा निवास करते हैं, वेही सर्व्व भूतोंकी सृष्टि किया करते हैं। आत्मा जब प्राकृत गुणों अर्थात् इन्द्रिय और मनसे संयुक्त होता है तब उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव कहा जाता है और जब वह उन गुणोंसे रहित होता है, तब परमात्मा स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है; इसलिये तुम सर्व्वलोकोंके सुख स्वरूप आत्माको मालूम करो। जो पद्मके बीच जलकी बूंद समान शरीरके बीच स्थित हो रहा है, उसेही सदा लोक सुखात्मक क्षेत्रज्ञ कहके जानना चाहिये। सत, रज और तम येही जीवके तीन गुण हैं; पण्डित लोग जीवको गुणोंको सचेतन कहा करते हैं। वे आत्माके प्रभावसे चेष्टा युक्त होकर सब कार्य्योंमें तत्पर हुआ करते हैं। आत्मज्ञ पुरुष इस जीवको परमात्माको परमश्रेष्ठ कहा करते हैं; उसनेही सप्त भुवनकी सृष्टि की है। शरीरके नष्ट होनेसे जीवका नाश नहीं होता, "जीव मर गया"—यह वचन मूर्ख लोग कहा करते हैं। शरीरके पञ्चत्व प्राप्त होनेपर जीव दूसरे शरीरमें गमन करता है; आत्मा इसी प्रकार सर्व्वभूतोंमें संवृत रहके गूढभावसे विचरण करता है, तत्वदर्शी लोग परमसूक्ष्म बुद्धिके जरिये उसे देखनेमें समर्थ होते हैं। विद्वान् पुरुष पूर्व्व और अपर रात्रिमें रत तथा लघु आहार करते हुए पवित्र चित्त होके आत्माके जरिये आत्माको अवलोकन करते हैं। प्रसन्नतासे शुभाशुभ कर्म्मोंको त्यागकर शुद्धचित्त और आत्मनिष्ठ होनेसे मनुष्य अनन्त सुख भोग करनेमें समर्थ होता है। जरायुज आदि शरीरोंमें अग्निकी तरह प्रकाशमान जो पुरुष हैं वही जीवनामसे विख्यात् है, उसहीसे प्रजापतिकी यह समस्त सृष्टि हुआ करती है।

१८७ अध्याय समाप्त।

---

भृगु बोले, हे द्विजसत्तम! पहिले ब्रह्माने अपने तेजसे सूर्य्य और अग्निके समान प्रकाशयुक्त मरीचि आदि ब्रह्मनिष्ठ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया था। अनन्तर उन्होंने सुखके लिये सत्य, धर्म्म, तपस्या, शाश्वत, वेद, पवित्रता और

आचारका विधान किया ; देवता दानव गन्धर्व्व दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, मनुष्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इनके अतिरिक्त सब भूतोंके सत, रज और तमोगुणसे युक्त जो सब वर्ण हैं, उनकी भी सृष्टि की थी। ब्राह्मणोंका सफेद, क्षत्रियोंका लाल, वैश्योंका पीला और शूद्रोंका काला वर्ण हुआ करता है।

भरद्वाज बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंकी जातिके जरिये यदि वर्णभेद हो, तो सब जातिही वर्ण सङ्करा दृष्टिगोचर हो सकती हैं। काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा और श्रम सबमें समान भावसे सम्भव नहीं होता ; इसलिये किस प्रकारसे वर्ण विभिन्न होगा। पसीना, पुरीष, मूत्र, कफ, पित्त और रुधिर सब शरीरोंसे भरता रहता है ; इससे किस प्रकार वर्णविभाग हो सकता है। अनेक स्थावर और जङ्गम जातिके वर्ण कई प्रकारके हैं ; उन सब विभिन्न जातियोंके वर्ण किस तरह निर्णय किये जा सकेंगे।

भृगु बोले, सब वर्णोंमें विशेष नहीं है, यह सब जगत् पहिले ब्रह्माके जरिये उत्पन्न होके ब्राह्मणमय था, फिर कर्म्मके अनुसार विविध वर्ण हुए हैं। जो सब ब्राह्मण काम भोगमें अनुरक्त, तीक्ष्णभाव, क्रोधी, साहसी, स्वधर्म्म-त्यागी और लोहिताङ्ग थे, वेही क्षत्रियत्वको प्राप्त हुए हैं। जो लोग गौओंसे जीविका निर्व्वाह करते हुए कृषिजीवी हुए हैं, और स्वधर्म्मका अनुष्ठान नहीं करते, उन्हीं पीतवर्णवाले ब्राह्मणोंने वैश्यत्व लाभ किया है ; और जो सब ब्राह्मण हिंसा तथा मिथ्यामें रत, सर्व्व-कर्म्मोपजीवी कृष्णवर्ण और पवित्रतासे परिभ्रष्ट थे, वेही शूद्र हुए हैं। इन सब कर्म्मोंसे पृथक् किये गये ब्राह्मण लोगोंने ही वर्णान्तरमें गमन किया है। लोगोंके यज्ञक्रिया आदि धर्म्म सदा प्रतिषिद्ध नहीं हैं। ब्राह्मणोंके चारों वर्णोंमें विभक्त होनेपर भी सबको ही वेदमें अधिकार है, केवल जो लोग भोगके कारण ज्ञानहीन हुए उन शूद्रोंको वेदमें अधिकार नहीं है ; इसे विधाताने कहा है। जो सब ब्राह्मण वेदोक्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं और सदा-व्रत तथा नियम धारण करते हुए वेदाध्ययन करते हैं, उनकी तपस्या नष्ट नहीं होती। जो लोग ब्रह्माके कहे हुए परमश्रेष्ठ वेदसे अनभिज्ञ हैं ; वे लोग ब्राह्मण नहीं हैं ; बहुतसी जाति उनके समान हैं। पिशाच, राक्षस, प्रेत और अनेक प्रकारकी म्लेच्छ जाति ज्ञान विज्ञानसे रहित होकर स्वेच्छाचारी होके कार्य्य किया करती हैं। प्राचीन महर्षियोंने निज तपोबलसे वेदविहित संस्कारमें रत स्वकर्म्मोंमें निश्चय कर-नेवाली और भी दूसरी प्रजासमूहको उत्पन्न किया है ; आदि देव विधाताकी सृष्टि वेदमूलक अक्षय तथा अव्यय है और मानसीसृष्टि योगा-नुष्ठान परायण हुआ करती है।

१८८ अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, हे वक्तृवर द्विजोत्तम विप्रर्षि! किन कर्म्मोंसे ब्राह्मण होता है, क्या करनेसे क्षत्रिय हुआ करता है और किस तरहके कार्य्योंसे वैश्य तथा शूद्र होते हैं? आप उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, जातधर्म्म संस्कारसे जो संस्कार-युक्त और पवित्र हुए हैं और जिन्होंने वेदाध्ययन किया है ; प्रतिदिन सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजा, आतिथ्य, वा बलि वैश्वदेव, इन षटक-र्म्मोंको किया करते हैं, पवित्रता और आचा-रसे युक्त पूर्णरीतिसे विघसाशी गुरुजनोंके प्रिय-पात्र, नित्यव्रती और सत्यपरायण हैं, उन्हींको ब्राह्मण कहा जाता है, जिनमें सत्य, दान, अद्रोह, अनृशंसता, दया, लज्जा और तपस्या है, वेही ब्राह्मण होते हैं। जो युद्ध आदि हिंसा-

कार्य्य किया करते हैं, वेदाध्ययनमें अनुरक्त होते और ब्राह्मणोंको अर्थदान तथा प्रजासमूहसे धन ग्रहण करते हैं, उन्हें ही क्षत्रिय कहा जाता है। जो लोग कृषि और पशुपालन करते दान करनेमें अनुरक्त रहते, पवित्रता और वेदाध्ययनसे युक्त हैं, वेही वैश्य कहाते हैं। जो पुरुष सदा सब वस्तुओंके भक्षणमें ही अनुरक्त, सब कर्म्मोंके करनेमें आसक्त, अपवित्र वेदज्ञानसे रहित और अनाचारी उसेही शूद्र कहते हैं। ब्राह्मणका लक्षण यदि शूद्रमें दीखे तो वैसा शूद्र भी शूद्र नहीं है और ब्राह्मणमें यदि उसके लक्षण न हों, तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जाता। सब उपायोंसे क्रोध और लोभका निग्रह तथा आत्मसंयम ही ज्ञानका पवित्र लक्षण है। क्रोध और लोभ कल्याण नष्ट करनेकोही उत्पन्न हुआ करते है, इसलिये उन्हें निवारण करना उचित है। सदा सावधान होके क्रोधसे श्री, मत्सरसे तपस्या, मान तथा अपमानसे विद्या और प्रमादसे आत्माको रक्षा करनी उचित है।

हे द्विजश्रेष्ठ! जिन्हें सब कर्म्मोंमें कामना नहीं है, और दान विषयमें जिनकी समस्त सम्पत्ति समर्पित हुई है, उसेही त्यागशील और बुद्धिमान् कहा जाता है। सब भूतोंकी हिंसा न करके सबके विषयमें मित्र भाव दिखाते हुए भ्रमण करे, परिजनोंकी बुद्धि पूर्व्वक त्यागके जितेन्द्रिय होवे, शोक रहित स्थान अर्थात् आत्मामें निवास करे तो इस लोक और परलोकमें किसी भयकी सम्भावना न होवे। सदा तपस्यामें रत, दान्त मौनव्रतावलम्बी, संयतात्मा, अजित काम आदिको जय करनेके अभिलाषी और सङ्गके कारण पुत्र कलत्र आदिमें आसक्ति रहित होना योग्य है। इन्द्रियोंसे जिन वस्तुओंका ज्ञान हुआ करता है, उसेही व्यक्त कहते हैं और इसे जानना उचित है, कि सूक्ष्म शरीरगोचर अतीन्द्रिय पदार्थही अव्यक्त है। गुरु और वेद वचनमें विश्वास न रखनेसे परम पदार्थ नहीं मिलता; इसलिये विश्वासमें चित्त स्थिर करना उचित है। प्राण उपाधिक "तुम इस पदके अर्थ गोचर जीवात्मामें मन समर्पण करो और जीवात्माको परब्रह्ममें अर्पण करो।" वैराग्यसेही निर्व्वाणपद मिलता है, योगियोंकी ध्यान ध्यानादिके सिवाय दूसरी कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण लोग वैराग्यसे सहजमें ही परब्रह्मको पाते हैं। सदा पवित्रता सदाचार और सब भूतोंमें यथायुक्त व्यवहारही ब्राह्मणके लक्षण हैं।

१८८ अध्याय समाप्त।

---

भृगु बोले, वेदज्ञानसे सत्यस्वरूप परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, स्वधर्म्मानुष्ठानरूपी तपस्याही सत्य है; सत्यनेही प्रजासमूहको उत्पन्न किया है; सत्यसेही ये सब लोक स्थित हैं, और सत्यसेही लोग स्वर्गमें जाते हैं। सत्यके विपरीत वेदाचारसे पृथक् यथेष्ट आचरणको मिथ्या कहते हैं, वह अज्ञान स्वरूप है; अज्ञानसेही तमोग्रस्त लोगोंकी अधोगति होती है; अज्ञानसे घिरे हुए लोग स्वर्ग दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। पण्डित लोग देवताओंके निवासस्थान स्वर्गको प्रकाशमय और तिर्य्यग् जातिके निवास स्थान नरकको अन्धकारमय कहा करते हैं। भूलोक वासी जीव सत्य और मिथ्या दोनोंही प्राप्त करते हैं। लोकमें सत्य और मिथ्याके विषयमें इस प्रकार व्यवहार होता है, कि धर्म्म और अधर्म्म, उजाला और अन्धेरा सुख और दुःख; उसके बीच जो सत्य है, वही धर्म्म है, जो धर्म्म है वही प्रकाश है, और जो प्रकाश है वही सुख है, जो मिथ्या है वही अधर्म्म है, जो अधर्म्म है वही अन्धेरा है जो अन्धकार है, वही दुःख है। इस विषयमें यही कहता हूं; कि बुद्धिमान् लोग शारीरिक और

मानसिक सुख दुःख तथा असुखोदयसे परिपूरित लोकसृष्टिको देखकर मोहित नहीं होते। बुद्धिमान् पुरुष दुःख नष्ट होनेके लिये यत्नवान् होवें। इस लोक और परलोकमें प्राणियोंका सुख नित्य नहीं है। जैसे राहुसे ग्रस्त चन्द्रमाकी किरण प्रकाशित नहीं होती, वैसेही अज्ञान युक्त जीवोंके सुखभी अन्तर्हित हुआ करते हैं। वह सुख दो प्रकारका है। शारीरिक और मानसिक लोकमें सुखके लिये ही दृष्ट फलोंकी प्रवृत्ति आविष्कृत होती हैं सुखसे बढ़के त्रिवर्ग फल और कुछ भी नहीं है। सुखही आत्माका गुण विशेष है, सुखहीके लिये धर्म्म और अर्थमें प्रवृत्ति होती है; धर्म्म और अर्थसेही सुखकी उत्पत्ति हुआ करती है, सब कार्य्यही सुखके लिये आरम्भ किये जाते हैं।

भरद्वाज बोले, हे ब्रह्मन्! आपने कहा, सुखही परम पदार्थ है परन्तु मैं ऐसा नहीं विचारता। आपने सुखको ही आत्माका गुण विशेष कहा है, परन्तु योगनिष्ठ ऋषि लोग इसकी अभिलाषा नहीं करते। सुनता हूं, कि त्रिलोक विधाता प्रभु ब्रह्मा ब्रह्मचारी होकर अकेले ही तपमें निष्ठावान् रहते हैं वह कभी काम सुखमें आत्म समाधान नहीं करते और जगत्के ईश्वर भगवान भवानीपतिने सम्मुख आये हुए रतिपतिको अनङ्गभावसे शान्त किया था। इन सब प्रमाणोंको देखकर कहता हूं, कि महानुभाव पुरुष कामसुखमें आसक्त नहीं होते और यह आत्माका गुण विशेष नहीं है; मैं आपके इस वचनमें विश्वास नहीं कर सकता, आपने कहा "सुखसे बढ़के परम वस्तु और कुछ भी नहीं है," फलोदय युक्त लोक प्रवाद दो प्रकारका है, पहला सुकृत; उससे सुखलाभ होता है, दूसरा दुष्कृत उससे दुःख प्राप्त हुआ करता है।

भृगु बोले, इस विषयमें मैं अपना अभिप्राय कहता हूं, अज्ञानसे अन्धकार उत्पन्न होता है वेही तमोग्रस्त लोग क्रोध, लोभ, हिंसा और मिथ्यासे परिपूरित होकर अधर्म्मका आचरण किया करते हैं, धर्म्ममार्गमें कदापि नहीं विचरते वे लोग इस लोक और परलोकमें सुख नहीं पाते। अनेक व्याधि रोग और उपतापसे परिपूरित, बध, बन्धन, क्लेश, भूख, प्यास और श्रमजनित उपतापसे उत्तप्त और वर्षा, वायु, गर्म्मी, सर्द्दीके कारण शारीरिक दुःखोंसे सन्तापित तथा बान्धव, धनके विनाश विप्रयोग जनित मानस दुःख वा जरा मरण जनित शोकोंसे परिपूरित हुआ करते हैं। जो लोग समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे संस्पृष्ट नहीं हैं; वेही सुख अनुभव करनेमें समर्थ होते हैं, स्वर्गमें इन सब दोषोंकी उत्पत्ति नहीं है; वहां सुख स्पर्श सुरभि वायु सदा बहा करती है, भूख, प्यास और श्रम नहीं है; जरा और पापका सम्पर्क नहीं है, स्वर्गमें नित्य सुख है और इस लोकमें सुख दुःख दोनोंही हैं। निरवच्छिन्न दुःखही नरक है; इसलिये पण्डित लोग सुखकोही परम पदार्थ कहा करते हैं। पृथ्वी उन जीवोंकी माता है, स्त्रियां उसके समान हैं, पुरुष प्रजापतिके समान है, उसमें तेजमय शुक्र है। पहिले समयमें प्रजापति ब्रह्माने इसही प्रकार स्त्री पुरुषोंके सहयोगसे लोक सृष्टिका विधान किया है। प्रजा निज निज कर्म्मोंसे आवृत रहके उत्पन्न हुआ करती है।

१९० अध्याय समाप्त।

---

भरद्वाज बोले, हे भगवन्! पुराने लोगोंने दान, धर्म्म, आचार, उत्तम रीतिसे की हुई तपस्या स्वाध्याय और होमके फलको किस प्रकार कहा है?

भृगु बोले, होमसे पापकी शान्ति होती है स्वाध्यायसे परम श्रेष्ठ शान्ति सुख मिलता है। दानसे भोग और तपस्यासे सुखप्राप्ति हुआ

करती है; यही प्राचीन लोगोंके मत हैं पण्डित लोग दानको दो प्रकारसे कहा करते हैं; पहिला पारलौकिक दूसरा ऐहिक। साधुओंको जो कुछ दान किया जाता है। परलोकमें उसका फल भोग हुआ करता है और दुष्टोंको जो कुछ दान किया जाता है, इस लोकमें उसका फल भोग हुआ करता है। मनुष्य जैसा दान करता है वैसाही फल भोग भी किया करता है।

भरद्वाज बोले, कौनसे अधिकारियोंको कैसा धर्म्माचरण करना चाहिये, धर्म्मका क्या लक्षण है और वह कितने प्रकारका है? इसेही वर्णन करना आपको उचित है।

भृगु बोले, जो बुद्धिमान पुरुष धर्म्माचरणमें नियुक्त होते हैं। उन्हें स्वर्ग फल प्राप्त होता है और जो लोग विपरीत आचरण करते हैं। वे मोहित होते हैं।

भरद्वाज बोले, पहिले समयमें ब्रह्माने जिन चारों आश्रमोंका विधान किया है आप उन सब आश्रम वासियोंका व्यवहार वर्णन करिये।

भृगु बोले, सब लोकोंके हित करनेवाले भगवान् ब्रह्माने पहिले धर्म्म रक्षाके निमित्त चार आश्रमोंका निर्देश किया था। उसके बीच गुरु कुलमें निवासरूपी ब्रह्मचर्य्य पहला आश्रम कहा जाता है। इस आश्रममें पूरी रीतिसे पवित्रता संस्कार व्रत नियम दोनो सन्ध्यामें सूर्य्य और अग्निकी उपासना तन्द्रा और आलस त्यागके गुरुको प्रणाम करना; वेदाभ्यास और वेद सुनके चित्तको पवित्र करना; त्रिकाल स्नान करके ब्रह्मचर्य्य पालन परिचर्य्या करते हुए गुरुसेवा और नित्य भिक्षा करनी होती है। भिक्षा आदिसे प्राप्त हुई सब वस्तु अन्तरात्माको समर्पण करके गुरु वचन निर्दिष्ट अनुष्ठानके अनुकूल होकर गुरुकी कृपासे प्राप्त हुए स्वाध्यायमें रत होना पड़ता है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जो ब्राह्मण पूर्वरीतिसे गुरुकी सेवा करके वेदज्ञान लाभ करता है, उसको स्वर्गफलकी प्राप्ति और मनो-कामना सिद्ध होती हैं।

गार्हस्थ्यको दूसरा आश्रम कहते हैं; उसके यथा उचित व्यवहारोंके लक्षण आगे कहता हूं। जिनका गुरुकुलमें वास समाप्त होचुका है, जो भार्य्याके सहित धर्म्माचरणके फलकी इच्छा करते हैं, उन्हीं सब सदाचारी पुरुषोंके लिये गृहस्थाश्रम विहित है। इस आश्रममें धर्म्म, अर्थ, काम, यह त्रिवर्ग प्राप्त हुआ करता है। अनिन्दित कर्म्मोंसे धन उपार्जन अथवा वेद पाठ वा दक्षिणासे प्राप्त हुआ धन, वा ब्रह्म-र्षियोंकी भांति उञ्छवृत्ति, अथवा खानसे लाया हुआ धन, वा हव्य-कव्य प्रदानसे देवकी कृपासे प्राप्त हुए धनसे गृहस्थ, गार्हस्थ्य आश्रम निर्व्वाह करे। पण्डित लोग इस आश्रमको सब आश्र-मोंका मूल कहा करते हैं। क्या गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, क्या परिव्राजक, क्या दूसरे सङ्कल्पित व्रत नियम धर्म्मके अनुष्ठान करनेवाले पुरुष; और सबके ही इस आश्रममें भिक्षा, अतिथि सत्कार और पुत्र आदिकोंका प्रतिपालन हुआ करता है। वाणप्रस्थ लोगोंके लिये फल मूल आदि सम्पादन गृहस्थाश्रमसे ही निभता है। ये सब साधु लोग सुन्दर पथ्य वस्तुओंका भोजन करके वेदपाठमें अनुरक्त होते हैं, ये लोग तीर्थ गमन और विविध देश दर्शनके निमित्त पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। उन्हें देखते ही उठके सम्मुख आना, असूय रहित होके वचन कहना, सुखासन, सुखशय्या और भोजनकी सामग्री दान करके सत्कार करना उचित है। इस विषयमें यह श्लोक है, कि जिसके गृहसे आशाके भङ्ग होनेपर अतिथि लौट जाता है वह उसे निज दुष्कृत देकर उसके सञ्चित पुण्यका ग्रहण करके गमन करता है। गार्हस्थ्य आश्रममें यज्ञकर्म्मसे देवता पितृतर्पणसे पितर, विद्याके अभ्यास, श्रवण और धारणादि

ऋषि और पुत्र उत्पन्न करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इस विषयमें दो श्लोक हैं, कि इस आश्रममें सब लोगोंका ही स्नेहयुक्त अथवा सुखदायक वचन कहना उचित है और परिताप पीड़ादान, पुरोध, अवज्ञा, अहङ्कार और दम्भ अत्यन्त निन्दित है। अहिंसा, सत्यवचन और क्रोधहीनता सब आश्रमोंमें ही तपस्या स्वरूप है। गार्हस्थ्याश्रममें माला, आभूषण और वस्त्र धारण, तैल मर्द्दन नित्य उपभोगके योग्य नृत्य, गीत वाद्य आदि सुनना नेत्रको प्रसन्न करने योग्य दर्शनीय वस्तुओंको देखना भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चूस्य आदि विविध खाद्य वस्तुओंके उपभोगसे विहार सन्तोष और काम सुखकी प्राप्ति होती है। गृहाश्रममें रह कर जिनको सदा धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंके सहित सत्व, रज और तमोगुणको कृतार्थता होती है, वे इस लोकमें सब सुखोंका अनुभव करके शिष्ट पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होते हैं। जो गृहस्थ उञ्छवृत्ति होकर भी स्वधर्म्माचरणमें रत रहता है और काम सुख तथा सब कर्म्मोंको त्यागता है, उसके विषयमें स्वर्ग दुर्लभ नहीं है।

१९१ अध्याय समाप्त।

---

भृगु बोले, वानप्रस्थाश्रमी लोग धर्म्मका अनुसरण करके मृग, महिष वराह, शार्द्दूल और जङ्गली हाथियोंसे युक्त निर्ज्जन वनमें तपस्या करते हुए नदी और झरनेमें तथा पुण्य तीर्थोंमें विचरें। वे लोग ग्राम्य, वस्त्र, आहार और उपभोग परित्याग करके सदा वनकी औषधी, फल, मूल और पत्तोंका परिमित रीतिसे अहार किया करें। पृथ्वीही उनका आसन है, भूमि, पत्थर, सिकता, शर्करा, बालुका और भस्मही उनकी शय्या है, काश, कुश, चर्म्म और वल्कलही उनके अङ्गके वस्त्र हैं। वे लोग केश, श्मश्रु, नख और लोम धारण करते, यथा समय स्नान करते, पूजा और होमके समयको अतिक्रम नहीं करते। समित् कुश और फूल चुनने तथा सम्मार्ज्जनके समयमेंही विश्राम लाभ करते हैं; सर्द्दी, गर्म्मी, वर्षा और वायुकी खेलवाड़की तरह सहते रहते इन लोगोंके सब शरीरका चमड़ा विभिन्न होजाता है। विविध नियम पञ्चाग्नि साधन प्रकार सङ्कोच और तीर्थ पर्य्यटनके कारणसे इन लोगोंका मांस, रुधिर, चमड़ा और हड्डी पर्य्यन्त सूख जाती है; ये लोग सतोगुण अवलम्बन करके धैर्य्यशाली होकर शरीर धारण करते हैं। जो लोग इस ब्रह्मर्षि विहित व्रतका सदा आचरण करते हैं, वे अग्निकी तरह दोषोंको जलाकर दुर्ज्जय लोकोंको जय करते हैं। परिव्राजकोंका यही आचार है, कि वे लोग अग्नि, वित्त, कलत्र और शय्या आदि भोग सामग्रियोंके उपभोगसे आत्माको विरत करके स्नेह आशाको त्याग कर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं; वे लोग सुवर्ण लोष्ट तथा पत्थरमें समदृष्टि, होते हैं; धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें असंसक्त बुद्धि; शत्रु, मित्र और उदासीनके विषयमें समदृष्टि, स्थावर, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि भूतोंके विषयमें मन, वचन और कर्म्मसे कभी अनिष्ट आचरण नहीं करते; वे लोग गृहमें निवास नहीं करते; पर्व्वत, पुलिन, वृक्षमूल और देवालयोंमें घूमते हुए वास करनेके लिये गांव अथवा नगरमें उपस्थित होते हैं। वे लोग नगरमें पांच रात्रि और गांवमें केवल एक रात्रि निवास किया करते हैं। नगर वा गांवमें पहुंचके असङ्कीर्ण कर्म्मवाले द्विजातियोंके गृहपर प्राण धारणके निमित्त उपस्थित होते हैं। पात्रमें पड़ी बिना मांगी भिक्षा ग्रहण करते हैं; काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता दम्भ, परिवाद, अभिमान और हिंसा रहित होते हैं। इस विषयमें ये सब

सुनाक है कि जो लोग मौनव्रत अवलम्बन करके सब भूतोंको अभय दान करते हुए भ्रमण करते हैं, सब जीवोंसे कभी उन्हें भय नहीं उत्पन्न होता। निज शरीरमें स्थित प्राण आदि पञ्च वायुको अग्निहोत्र विधान करके जो ब्राह्मण अग्निकी भांति प्रकाशमान जीवको परमात्मामें आहुति प्रदान करते हैं, वे भिक्षासे प्राप्त चिता-ग्निकी हविके जरिये अवश्य परम लोकोंमें गमन करते हैं। जो उत्तम रीतिसे सङ्कल्पित युक्त बुद्धि और पवित्र होकर यथा रीतिसे मोक्षा श्रम अवलम्बन करते हैं, वे द्विजाति अनिन्धन अग्निकी तरह प्रशान्त ब्रह्म लोकमें निवास किया करते हैं।

भरद्वाज बोले, हे भगवन्। ऐसा सुना जाता है, कि इस लोकके अनन्तर परलोक है, परन्तु यह जाना नहीं जाता, कि वह कैसा है; इस लिये मैं उसे जाननकी इच्छा करता हूं आप कृपा करके मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्। उत्तर दिशाकी ओर सब गुणोंसे रमणीय, पवित्र हिमालय पर्व्वतको बगलमें पुण्य और कल्याणकारी जो सब सुन्दर देश हैं, उन्हेंही परलोक कहा जाता है। वहां पर कोई मनुष्य पाप कर्म्म नहीं करते, सदा पवित्र और अत्यन्त निर्म्मल हुआ करते हैं, लोभ मोहको परित्याग करते और उपद्रव हीन होते हैं। वह देश स्वर्गके समान शुभगुणोंसे युक्त है, वहां यथा समय पर मृत्यु होती है, समस्त व्याधि मनुष्योंको स्पर्श नहीं कर सकती। वहांके सब लोग निज स्त्रियोंमें रत रहते, कभी पराई स्त्रीके विषयमें लोभ नहीं करते। द्रव्य सञ्चय लाभके लिये लोभके कारण आपसमें नष्ट नहीं होते। विशेष करके वहां अधर्म्म नहीं है, किसीको किसी विषयमें सन्देह नहीं होता, वहां किये हुए कार्य्योंका फल प्रत्यक्ष प्राप्त होता है; कोई कोई समस्त काम्य वस्तु-ओंसे युक्त होकर विविध पान आसन और भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त सुन्दर अट्टालिका आश्रय करके उसे सुवर्णादिकोंसे विभूषित करते; किसी किसीका केवल प्राणधारण सम्पन्न होता है। इस लोकमें कोई धर्म्म परा-यण और कोई पापनिष्ठ कोई सुखी, कोई दुःखी कोई निर्धन और कोई धनवान हुआ करते हैं। इस लोकमें श्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है जिस अर्थके जरिये पण्डित लोग भी मोहित होते हैं, मनुष्योंको उस ही अर्थके लिये लोभ उत्पन्न होता है। इस विषय पर धर्म्माधर्म्मके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी बातें हुआ करती हैं, जो बुद्धिमान मनुष्य उन सब बातोंको जानते हैं, वे पाप पङ्कमें लिप्त नहीं होते। जो दम्भके सहित अभिमान स्तेय परि-वाद असूयापर पीड़न हिंसा पिशुनता और मिथ्या आचरण करते हैं उनकी तपस्या नष्ट होती है और जो विद्वान् पुरुष इन सबका आच-रण नहीं करते, उनकी तपस्याकी वृद्धि हुआ करती है। इस लोकमें धर्म्माधर्म्म कर्म्मोंका अनेक भांतिसे विचार हुआ करता है। इस लोकमें यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, यहांपर शुभाशुभ कर्म्म करनेसे शुभ कर्म्मोंसे शुभफल और अशुभ कर्म्मोंसे अशुभ फल प्राप्त होता है। पहिले प्रजापतिने देवताओं और ऋषियोंके सहित इस लोकमें यज्ञ और तपस्या करके पवित्र होकर हिमशैलके निकटवर्त्ती ब्रह्मलोकको प्राप्त किया था। पृथ्वीका उत्तर भाग अत्यन्त पुण्ययुक्त और शुभ मय है; इस लोकमें जो सब पुरुष पुण्यकार्य्य करते हैं वे लोग दूसरी बार वहां पर उत्पन्न हुआ करते हैं। दूसरे लोग तिर्य्यग् योनिमें सत्कार लाभकी इच्छा करके परमा-युका क्षय करते हुए इस पृथ्वीपर नष्ट होते हैं, कितने ही लोभ मोहसे युक्त और परस्पर भक्षणमें आसक्त होकर इस लोकमें ही रूपा-न्तरोंमें परिणत होते हैं; वे लोग उत्तर दिशामें स्थित परलोकमें गमन नहीं करते। जो सब

विद्वान् पुरुष सदा ब्रह्मचर्य्यमें रत रहके गुरु-सेवा करते हैं, वे लोग सब लोकोंकी गति मालूम करते हैं। मैंने ब्रह्मनिर्म्मित यह संक्षिप्त धर्म्म विषय कहा, जो लोगोंके धर्म्म और अधर्म्मके विषयको जानते हैं, वेही बुद्धिमान् हैं।

भीष्म बोले, परम धर्म्मशील प्रतापवान् भरद्वाज महर्षिने भृगुसे इतनी कथा सुनके विस्मय युक्त चित्तसे उनकी पूजा की थी। हे महाप्राज्ञ महाराज! यही मैंने तुमसे विस्तारके सहित जगत्की उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है, फिर क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१८१ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित धर्म्मज्ञ पितामह! मैं आपके कहे हुए आचरणकी विधि सुननेकी इच्छा करता हूं; आप सर्व्वज्ञ हैं, यह मुझे अविदित नहीं है।

भीष्म बोले, जो लोग दुराचारी दुष्ट-चेष्टा-युक्त और प्रिय साहसी हैं, वेही दुष्ट कहके विख्यात हैं; परन्तु आचार ही साधुओंका लक्षण है। जो लोग राजमार्ग, गोष्ठ और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते वेही शुद्ध आचारसे युक्त हैं। आवश्यक शौच और देवताओंका तर्पण करके जलस्पर्श करके नदीमें स्नान करे; प्राचीन लोगोंने इसे ही मनुष्योंका धर्म्म कहा है। सदा सूर्य्यकी उपासना करे, सूर्य्यके उदय होनेपर कभी न सोवे; सन्ध्या और सबेरेके समय पूर्व्व और पश्चिम मुख होकर सन्ध्याके उपलक्षमें स्वगृह्योक्त मन्त्रके सहित सावित्रीका पूजन करे। पूर्व्वकी ओर होकर मौनभावसे दोनों पैर, दोनों हाथ और मुख धोकर भोजन करे; अभक्ष्य अन्न आदिकी निन्दा करे, सुस्वादु वस्तुओंका स्वाद लेते हुए भोजन करे, भोजनके अनन्तर हाथ धोके उठे रातमें भींगे पैरसे न सोवे; देवर्षि नारदने इसी प्रकार आचारका लक्षण कहा है। यज्ञ आदि पवित्र स्थान, वृषभ, देवता, गऊ, चौपाये, धर्म्मात्मा ब्राह्मण और चैत्य आदि देवस्थानको देखकर प्रदक्षिणा करे। सब प्रकारसे अतिथि, स्वजन और सेवकोंके सहित समान रीतिसे भोजन करना गृहस्थोंके लिये प्रशंसनीय है। मनुष्योंको दिन और रात्रिमें भोर और सन्ध्याके मध्याह्नकालमें भोजन करनाही देवनिर्द्दिष्ट है; सबेरे और सन्ध्याके समय भोजन करना मना है इसी तरह यथा समयमें जो लोग भोजन नहीं करते उन्हें उपवासका फल नहीं मिलता, होमके समय होमकारी और एक पत्नीक होकर ऋतुकालमें स्त्रीसे सहवास करनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचारी समान होते हैं।

ब्राह्मणोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जननीके हृदय समान हितकर और अमृत रूपसे ऋषियोंने वर्णन किया है; इससे सब लोग सब तरहसे उनकी उपासना करें साधु लोग आहार-शुद्धिसे सत्वशुद्धि लाभ करते हुए सत्य स्वरूप परब्रह्मको पाते हैं। यज्ञकी वेदी बनानेके लिये जो मनुष्य ढेलोंको मर्द्दते और तृण काटते तथा नखसे छेदन करते हुए यज्ञसे बचे हुए मांसको भक्षण करते हैं, जिनके पिता, पितामह आदि किसीने सोमपान नहीं किया, वैसे ब्राह्मण यदि सदा सोमपान करते और जो काम मोहके वशमें होकर अस्थिर होते हैं, वैसे मनुष्य इस लोकमें दीर्घपरमायु नहीं पाते। यजुर्व्वेद जाननेवाले अध्वर्य्यु मांस भक्षणसे निवृत्त होकर यज्ञके संस्कृत मांसको भी परित्याग करें, दूसरे वृथा मांसको त्याग दें और आहसे विशिष्ट मांस भोजन भी निषिद्ध है। गृहस्थ लोग स्वदेश और परदेशमें कभी अतिथिको भूखा न रखें; भिक्षा आदि काम्य कर्म्मोंके फल अन्न आदि मिलनेपर पिता माता आदि गुरुजनोंके समीप उसे उपस्थित करे; बड़े लोगोंको आसन देना और प्रणाम करना उचित है। मनुष्य लोग

गुरुजनोंकी पूजा करके परमायु यश और सम्पत्तिसे युक्त होते हैं। उदय और अस्त सूर्य्यका दर्शन न करे; वस्त्र रहित स्त्रीको और देखना उचित नहीं है। निज स्त्रीसे ऋतुकालमें धर्म्म-मैथुन निर्ज्जन स्थानमें करना योग्य है। सब तीर्थोंके बीच रहस्यही उत्तम तीर्थ है पवित्र पदार्थोंमें अग्नि परम पवित्र है; आर्य्य पुरुषोंके आचरित सब विषयही श्रेष्ठ हैं; गो पूंछको स्पर्श आदि कार्य्य भी पवित्र कहके वर्णित हैं। ब्राह्मणोंको जब देखे तभी उनसे सुखप्रश्न करे, सन्ध्या और सवेरेके समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करना कर्त्तव्य कर्म्म कहा गया है। देवस्थान गौओंके बीच, ब्राह्मणोंके श्रौतस्मार्त्त कर्म्मोंके अनुष्ठान वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् उपवीत युक्त होवे। जैसे श्रेष्ठ पण्यको वस्तु, उत्तम खेती कर्म्म और धान्य आदि शस्योंके निमित्त तत्पर रहनेसे प्रत्यक्ष फल दीखता है, तैसे ही सवेरे और सन्ध्याके समय विधिपूर्व्वक ब्राह्मणोंको पूजा करनेसे दिव्य स्त्री और अन्नपान आदि प्राप्ति स्वरूप अभिलषित फल मिलता है। भोजनको सामग्री दी जाने पर दाता कहे "सम्पन्न है," दान लेनेवाला "सुसम्पन्न है" ऐसा वचन उच्चारण करें। और पीनेको वस्तु दान करनेके समय दाता "तर्प्पण" और दान लेनेवाला "सुतर्प्पण" ऐसा वचन उच्चारण करें। पायस यवान्न और कृषर दानके समय दाता सुशृत, यह वचन कहे। श्मश्रु कर्म्म श्रुत, स्नान और भोजन करने तथा पीड़ित पुरुषोंको देखनेसे आयुकी वृद्धि होवे कहके अभिनन्दन करे; सूर्य्यके सम्मुख देखना उचित नहीं; स्त्रियोंके सङ्ग एकत्र सोना और एकत्र भोजन न करे। जेठे भाई आदिको "तुम" कहके वार्त्ता न करे; समान और छोटे पुरुषको "तुम" कहना दोष युक्त नहीं है। पापियोंका अन्तःकरणही उनके किये हुए पाप कर्म्मोंका प्रकाश कर देता है अर्थात् उनके मुख और नेत्रविकार आदिसे भीतरी मनके भाव प्रकाशित हुआ करते हैं जो लोग महाजनोंके समीप आनके अपने पापकर्म्मोंको छिपाते हैं, वे अवश्यही नष्ट होते हैं। मूर्खलोग किये हुए पापोंको जान कर छिपाया करते हैं। मनुष्योंके न देख सकनेपर भी देवता लोग उसे देखते हैं, पापसे छिपा हुआ पापकर्म्म पापहीका अनुगमन करता है; धर्म्मके जरिये छिपा हुआ धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण किया करता है, धर्म्मात्माओंके आचरित धर्म्म धर्म्मका ही अनुसरण करते हैं। इस लोकमें मूढ़ पुरुष अपने किये हुए पापोंको स्मरण नहीं करते, परन्तु शास्त्रीय इतिकर्त्तव्यताविमूढ़ पुरुषोंके निकट वह पाप उपस्थित होता है। जैसे राहु चन्द्रमाके निकटवर्त्ती होता है, वैसेही पापकर्म्म मूढ़ मनुष्योंका आश्रय करता है। आशाके जरिये सञ्चित वस्तु अत्यन्त दुःखसे उपभुक्त होती है, ज्ञानवान् मनुष्य उसकी प्रशंसा नहीं करते; मृत्यु कभी किसीको प्रतिक्षा नहीं करती। विद्वान पुरुष सब जीवोंके मानसको ही धर्म्म कहा करते हैं; इससे मनसे सब जीवोंके मङ्गलका आचरण करे। अकेला ही धर्म्माचरणकरे, धर्म्म साधन विषयमें किसीके सहायताको उपेक्षा न करे; धर्म्म रहित मानसमें विधिलाभ पूर्व्वक सहायता मिलनेसे क्या होगा। धर्म्म ही मनुष्योंकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण है; धर्म्म ही सुरपुरमें देवताओंका अमृत है, मनुष्य लोग परलोकमें जानेपर अपूर्व्व देह पाके धर्म्मसे ही निरन्तर परम सुख भोगते हैं।

१९३ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! चित्तको अवलम्बन करके जो योगधर्म्म चिन्तनीय हुआ करता है उसे अध्यात्म कहते हैं यह सामान्य-रीतिसे मुझे मालूम है, परन्तु वह अध्यात्म

क्या है और किस प्रकारका है। आप मुझसे उसे ही कहिये। हे ब्रह्मवित्! यह स्थावर जङ्गमात्मक सन्सार किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयकालमें किसमें जाके लीन होता है। इस समय मेरे समीप उसे ही वर्णन करना योग्य है।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! तुम जो मुझसे अध्यात्म विषय पूछते हो, वह तुम्हारे लिये कल्याणकारी और सुखदायक है। इसलिये मैं उस विषयको वर्णन करता हूं, पहिले समयके आचार्य्योंने परमात्माको सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण स्वरूप कहके वर्णन किया है। इस लोकमें मनुष्य जिसे जानकर प्रसन्न और सुखी होते तथा सर्व्व कामका प्राप्तिरूपी फल लाभ किया करते हैं,—उस अध्यात्मज्ञानसे आत्महितकर विषय दूसरा कुछ भी नहीं है। ईश्वर ही सर्व्वमय है; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पांचोको महाभूत कहते हैं; परमात्मा ही इन पांचो भूतोंको उत्पत्ति और प्रलयका कारण है। जैसे लहर समुद्रसे ही उत्पन्न होकर उसहीमें लीन होती हैं, वैसे ही पृथिवी आदि महाभूत आनन्द स्वरूप अधिष्ठान परब्रह्मसे उत्पन्न होकर बार बार उसहीमें लीन होते हैं। जैसे कछुआ अपने अंगोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है वैसे ही सर्व्व भूतमय आत्मा सब भूतोंको उत्पन्न करके फिर उनका संहार करता है। प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरने सब भूतोंके शरीर आदिमें पञ्च महा भूतोंको स्थापित किया है और स्थापित करके उनमें वैसम्यभाव कर दिया है, शरीर आदिकोंमें आत्माभिमानी जीव उसे नहीं देखता, शब्द, श्रोत्र और छिद्र ये तीनों आकाश योनिज हैं, स्पर्श, चेष्टा और त्वचा, ये तीनों वायु योनिज हैं; नेत्र और अन्न आदिके परिपाक स्थान ये तीनों विषय अग्निसे प्रकट हुए हैं; घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये तीनों भूमिके गुणसे उत्पन्न हुए हैं; पांच महाभूत हैं, मनको छठवां गिनते हैं। हे भरतकुल प्रदीप! सब इन्द्रियें और मन विज्ञान कहके वर्णित हुआ करते हैं बुद्धि इनको सातवीं श्रेणीमें है; साक्षी स्वरूप चैतन्य आठवां कहा जाता है। नेत्र आदि इन्द्रियोंसे विषयोंकी आलोचना करके मन सन्देह करता है, निश्चय करनेवाली चित्त वृत्तिका नाम बुद्धि है, चैतन्य साक्षीकी तरह निवास करता है। पैरसे तलुएसे ऊर्द्धस्थित शरीरके ऊपर और नीचे सब स्थलोंमें साक्षी चैतन्य व्यापक भावसे निवास करता है, बाहरी हिस्सेमें जो कुछ दृश्यमान शून्य स्थान हैं, वह साक्षी चैतन्यसे परिव्याप्त हैं। सब इन्द्रियें मन और बुद्धि आदिको सब तरहसे पुरुषोंको परीक्षा करनी उचित है; तम, रज और सतोगुण भी इन्द्रियोंके आश्रित हैं; मनुष्य बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जीवोंकी इसी प्रकार उत्पत्ति और लयके विषयको विचारकर धीरे धीरे परम शान्ति लाभ करते हैं। तम आदि गुणोंके जरिये बुद्धि बार बार विषयोंमें उपस्थित हुआ करती है; इसलिये बुद्धिही षष्ठेन्द्रिय मन स्वरूप है। बुद्धिके अभावमें सत्वादि गुणोंकी मत्ताकी सम्भावना नहीं होती; इसी प्रकार ये स्थावर जङ्गम सब बुद्धिमय हैं, बुद्धि नाश होनेपर सब नष्ट होते हैं, और बुद्धिके प्रभावसे ही सब उत्पन्न हुआ करते हैं; इसही कारण वेदमें समस्त बुद्धिमय कहा गया है। बुद्धि जिस द्वारसे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं, जिससे सुनती, उसे कान कहते हैं, जिससे सूंघती उसका नाम नाक है, जिससे रसका ज्ञान करती, उसे जिह्वा कहते हैं और त्वचासे स्पर्शका ज्ञान होता है। बुद्धि एक ही बार विकृत होती है, जब वह किसी विषयकी कामना करती है, तब उसे मन कहा जाता है, बुद्धिके पांच निवास स्थान हैं, इन पांचोंको पञ्च इन्द्रिय अर्थात् बुद्धिके रहनेसे नेत्र आदि

इन्द्रिय रूप आदिका दर्शन करती हैं। बुद्धिसे अदृश्य चिदात्मा प्रागुक्त इन्द्रियोंमें निवास करता है। पुरुषाधिष्ठित बुद्धि सत, रज, तम इन तीनों भावोंसे वर्त्तमान रहती है; इसहीसे कभी प्रीतिलाभ करती, कभी दुःख पाती है, कभी सुख तथा दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती। मनुष्योंके मनमें इसी प्रकार बुद्धि तीनोंभावोंमें निवास किया करती है। नदियोंको पूर्ण करनेवाली तरङ्गमालायुक्त समुद्रकी बीचमालासे जैसे सब नदियां तिरोहित होती हैं, वैसेही सुख दुःख, मोह आदि सत्त्व भाव स्वरूपी बुद्धि सुख, दुःख, मोह आदिको अतिक्रम किया करती है। बुद्धि सुख दुःख आदिसे अतिक्रान्त होकर सत्तामात्र मनोवृत्तिको अवलम्बन करके निवास करती है, ग्रीष्म उत्थानके समय प्रवर्त्तमान रज बाहका अनुगमन किया करता है; तब वैसी बुद्धि इन्द्रियोंको प्रवर्त्तित करती है, प्रीति स्वरूपी सत्त्वात्मिका बुद्धि विषयोंके यथार्थ ज्ञानको सिद्ध करती है, रजोगुण शोकात्मक और तमोगुण मोह स्वरूप कहके वर्णित हुए हैं। हे भारत! इस लोकमें इन्हीं सत, रज, तम, तीनों भावोंमें शम, दम, काम, क्रोध, भय, विषय आदि जो सब भाव वर्त्तमान हैं, वे सभी बुद्धिके आश्रय हैं, यह मैंने तुम्हारे समीप व्याख्या की है, और बुद्धिमान् पुरुषोंको इन्द्रिय जीतना उचित है, इसे भी विस्तार पूर्व्वक कहा है। सत, रज और तम ये तीनों गुण सदा प्राणियोंमें स्थित होरहे हैं, और सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी, ये तीन प्रकारकी पीड़ा भी सब प्राणियोंमें दीख पड़ती हैं। सतोगुण सुख युक्त और रजोगुण दुःख युक्त है, ये दोनों तमोगुणके सहित मिलकर व्यवहारिक हुआ करते हैं। शरीर और मनको जो प्रीति युक्त हुआ करती है, उसे सात्त्विकभाव कहा जाता है, और जो आत्माको अप्रसन्न करनेवाला तथा दुःखमिश्रित है, वह रजोरूपसे प्रवृत्त है, दुःखकी खोजके कारण भय युक्त होके उस विषयकी चिन्ता न करे। दूसरे जो मोह युक्त अव्यक्त विषय, अप्रतर्क्य और अविज्ञेय है। उसे ही, तमोगुण कहके निश्चय करे। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त चित्तता आदि सात्त्विक गुण कदाचित प्राप्त हुआ करते हैं।

अप्रसन्नता, परिताप, शोक, लोभ और क्षमा, ये सब रजोगुणके लक्षण कभी कारण कभी अकारणसे ही दीख पड़ते हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा, इस प्रकारके विविध तामसगुण कदाचित उपस्थित होते हैं जिनका मन दुर्लभ वस्तुओंमें भी आसक्त, अनेक विषयोंमें युगपत पतित होनेमें समर्थ, "दोष" यह दीनता युक्त वचन संशयात्मक और निरुद्ध वृत्तिक है, वे मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें सुखी होते हैं। सूक्ष्म बुद्धि और साक्षी चैतन्य क्षेत्रज्ञके इस महत् अन्तरको देखो, तप्तायपिण्डवत् इतरेतर अविचार निबन्धन बुद्धि, अहङ्कार आदि सब गुणोंको उत्पन्न करती है, साक्षी चैतन्य स्वयं निर्लिप्त रहके कुछ भी उत्पन्न नहीं करता, बुद्धिके सब कार्य्योंको देखता है। मसक और उदुम्बर जैसे सदा सम्प्रयुक्त हैं, वैसे ही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ सदा परस्पर संप्रयुक्त होते हैं। जैसे जल और मछली सदा संयुक्त हैं, वैसेही बुद्धि और क्षेत्रज्ञ निरन्तर संयुक्त रहनेपर भी स्वभावके जरिये पृथक् भूत हुआ करते हैं। अहङ्कार आदि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु आत्मा सब गुणोंको ही जानता है। क्षेत्रज्ञ पुरुष देह, अहङ्कार आदिका द्रष्टा होकर भी अविद्याके कारण "मैं गोरा, मैं काणा, मैं सुखी, मैं कर्त्ता" इत्यादि अभिमान किया करता है। परमात्मा, घटाच्छन्न दीपककी भांति निश्चेष्ट और ज्ञानहीन पञ्चइन्द्रिय, मन और बुद्धिके जरिये विषयोंको प्रकाशित करता है। बुद्धि अहङ्कार आदिकी सृष्टि करती है; क्षेत्रज्ञ उसे पृथ

रीतिसे देखा करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। आत्मा असङ्गत और निर्गुण है, इसहीसे बुद्धिका आश्रय नहीं है, और स्वयं निज महिमासे निवास करता है; इसलिये बुद्धि और आत्माका आपसमें आश्रयाश्रय भाव सम्बन्ध नहीं है। बुद्धि मनकी सृष्टि करती है, परन्तु मूलभूत तीनों गुण कदापि उससे नहीं उत्पन्न हुए हैं; इससे मनकी सृष्टि आरम्भ करके बुद्धिका कार्य्य प्रवर्त्तित हुआ करता है। घड़ेके बीच जलते हुए दीपककी भांति जब आत्मा मनसे इन्द्रिय वृत्तियोंको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस ही समय वह बुद्धिके निकट प्रकाशित होता है। जो लोग स्वभाविक कर्म्म सन्न्याससे सदा आत्मरत, मननशील और सब भूतोंके आत्मरूप होते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है। जैसे हंस आदि जलचर पक्षी जलमें भ्रमण करके उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही कृतबुद्धि पुरुष सब भूतोंमें स्थिति किया करते हैं। मनुष्योंका यह स्वभाव ही है, कि वे निज बुद्धि बलके सहारे शोकरहित, अप्रहृष्ट, मत्सररहित और सब भूतोंमें समदर्शी होकर विहार करते हैं। जैसे ऊर्णनाभ निमित्त और उपादान होकर सूतों बनाती है, वैसेही स्वभाव-यागयुक्त विद्वान् पुरुष देहेन्द्रियादिकोंसे अभेद ज्ञान जनित परहरूपता परित्याग करके भूतभौतिक गुणोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये सत्वादि गुणोंको धागेके समान जानना चाहिये। गुणोंके प्रध्वस्त होनेपर निवृत्ति नहीं होती; प्रत्यक्षमें निवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये वह परोक्ष विषय अनुमानसे सिद्ध होता है। अनेक जीववादी पुरुष व्यवहारके अनुरोधसे इसही प्रकार निश्चय करते हैं; एक जीववादी बुद्धिमान् पुरुष निवृत्तिको ही अज्ञानकृत प्रपञ्च कहा करते हैं। ऊपर कहे हुए दोनों विषयोंकी आलोचना करके निज बुद्धिके अनुसार ध्यानसे प्रत्यक्ष करे। इसही प्रकार जलसे हुए कीड़ेकी तरह बुद्धि और क्षेत्रज्ञके परस्पर मिलनेके कारण क्षेत्रज्ञमें बुद्धि, धर्म्म, दुःख आदि और बुद्धिमें क्षेत्रज्ञके धर्म्म सत्वचित्त आदि दीख पड़ते हैं। तत्व जिज्ञासु मनुष्य इस बुद्धिभेदमय दृढ़ हृदयग्रन्थि छुड़ाकर सुखसे निवास किया करते हैं, संशयोंके कट जानेपर फिर वे शोक प्रकाश नहीं करते। जैसे विशिष्ट विद्यायुक्त पुरुष पवित्र नदमें स्नान करके सिद्धिलाभ करते हैं, वैसेही मलिन मनुष्य विज्ञान अवलम्बन करके सिद्धि लाभ किया करते हैं; इसलिये इस जगत्में ज्ञानके समान पवित्र पदार्थ दूसरा कुछ भी नहीं है। जो लोग महानदीके पार जानेका उपाय जानते हैं, वे उसके निमित्त शोक नहीं करते; और जो लोग उस विषयमें अनभिज्ञ हैं, वे उस विषयमें शोकित हुआ करते हैं; तत्वज्ञ पुरुष कदापि परितापित नहीं होते, उपाय जाननेसे वे पार होते हैं। इसी प्रकार जो लोग हृदयाकाशमें निर्व्विषय श्रेष्ठज्ञानकी आलोचना करते हैं, वे कृतार्थ होते हैं। मनुष्य जीवोंकी यह उत्पत्ति और लयके विषयोंको जानके बुद्धिसे धीरे धीरे आलोचना करके अनन्त सुख भोग करते हैं। धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग नाशमान् हैं, यह जिन्हें विदित है, किये हुए कार्य्य अर्थात् काम सुख आदि अनित्य हैं, यह जानके जो लोग उन्हें परित्याग करते हैं, वे श्रवण मननके जरिये निश्चय करके ध्याननिष्ठ और तत्वदर्शी होकर आत्मदर्शनसे ही सब कामना लाभ करके निरुत्सुक रहते हैं। अकृतबुद्धि मनुष्योंको अनिवार्य्य और रूप रस आदि निज निज विषयोंमें विभागके अनुसार विशिष्ट इन्द्रियोंके जरिये आत्माका दर्शन नहीं किया जा सकता। मनुष्य इसे जानके बोधयुक्त होते, इससे बढ़के बोधका लक्षण और कौनसा है। मनीषी पुरुष इसे ही जानके अपनेको कृतकृत्य समझते हैं। रस्सीमें सर्पभ्रम आदि जिस अज्ञानसे

मूर्ख पुरुषोंको अवश्य संसार दुःख हुआ करता है, विद्वान मनुष्योंको उससे भयकी सम्भावना नहीं होती। मैंने जो कहा है, कि मुक्ति ही सबकी गति है, उससे बढ़के किसीके विषयमें और उपाय कुछ नहीं है; तब शम, दम आदि गुणोंकी प्रधानतासे मुक्तिकी अतुलता होती है; ऐसा प्राचीन लोग कहा करते है। जो निष्काम होकर कर्म्म करते हैं, उन निष्काम कर्म्म करनेवालोंके कर्म्म पूर्व्वके किये हुए दोषोंको नष्टकरते हैं; पूर्व्वकृत अथवा वर्त्तमानके किये हुए कर्म्म ज्ञानी कर्त्ताको प्रिय वा अप्रिय नहीं होते। परीक्षक मनुष्य काम, क्रोध आदि व्यसनोंसे जर्ज्जरीकृत लोगोंको धिक्कार प्रदान करते हैं; वह धिक्कार इस लोकमें आतुर पुरुषोंको निन्दित कर रखता है और परलोकमें उसे तिर्य्यग् योनिमें उत्पन्न करता है; जनसमाजमें पूर्णरीतिसे अभिनिवेश पूर्व्वक देखो, आतुर लोग मरे हुए स्त्री पुत्रादिकोंके निमित्त अत्यन्त शोक प्रकाश करते हैं, और जो लोग सार असार विवेकमें निपुण हैं, वे उस विषयमें शोकरहित होकर निवास करते हैं; इससे जो लोग क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति इन दोनों विषयोंको जानते हैं, वेही ज्ञानियोंके गमन करने योग्य पद प्राप्त करते है।

१९४ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे पृथापुत्र! मैंने तुमसे आत्मतत्त्व विषय कहे, अब उसके जाननेका उपाय चार प्रकारके ध्यानयोगका विषय कहूंगा; महर्षि लोग इसे जानके इस लोकमें शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करते हैं। ध्यान जिस प्रकारसे भलीभांति अनुष्ठित हो, योगी लोग वैसाही किया करते हैं। हे पार्थ! ज्ञानसे तृप्त निर्व्वाणनिष्ठ चित्तवाले महर्षि लोग संसारके दोषोंसे छूटकर फिर लौटके संसारमें नहीं आते; वे लोग जन्म दोषसे रहित होके आत्मस्वरूपमें निवास करते हैं; वे सर्दी, गर्म्मी आदि द्वन्द्वोंके सहनेवाले सदा स्वप्रकाशमें स्थित लोभ आदिसे रहित, निष्परिग्रह और शौच सन्तोष आदि विषयोंमें निष्ठावान् होते हैं; स्त्रियोंमें आसक्तिहीन, प्रतिपक्ष रहित, मनके शान्तकारी स्थानमें इन्द्रियोंको एकत्रित कर काष्ठकी भांति बैठके और मननशील होकर ध्यानके जरिये संश्लिष्ट मनको एकाग्र रूपसे धारण करते हैं। योगी पुरुष कानसे शब्द ग्रहण, त्वचासे स्पर्श ज्ञान, नेत्रसे रूप और जीभसे रस मालूम नहीं करते और ध्यानके जरिये सब ध्येय विषयोंको परित्याग करते है। योग बलशाली पुरुष श्रोत्र आदि पञ्च इन्द्रियोंको प्रमथन करनेवाले इन शब्द आदि विषयोंकी कामना नहीं करते। शेषमें बुद्धिमान् योगी मनमें श्रोत्र आदि पञ्चवर्गोंको निग्रहीत करके, पांचो इन्द्रियोंके सहित मिलकर भ्रान्त मनको स्थिर करते हैं। धीर योगी पहले विषयोंमें भ्रमणशील देहादि अवलम्बन शून्य पञ्च द्वार और चञ्चल मनको ध्यानपथसे हृदयाकाशमें स्थित करें। इन्द्रियोंके सहित मनको पिण्डी कृत करता है, यह ध्यान पथ मुख्य रीतिसे मेरे जरिये वर्णित हुआ है। जैसे घूमती हुई बिजली बादलोंके निकट स्फूर्त्ति युक्त हुआ करती है वैसेही वह मन, बुद्धि और पञ्च इन्द्रिय यह सप्ताङ्ग स्वरूप आत्माका षष्ठांश मन ध्यानके समयमें भी स्फुरित हुआ करता है। जैसे कमलके पत्तेपर स्थित चपल जलबिन्दु सब तरहसे चञ्चल रहता है, ध्यानमार्गमें वर्त्तमान योगीका चित्त पहले वैसे ही तरल हुआ करता है। मन ध्यानपथमें स्थिर होकर क्षणभर स्थित रहता है, फिर वायुमार्गको प्राप्त अनेक प्रकारके रूप दिखाते हुए वायुकी भांति भ्रमण किया करता है। ध्यानयोगके जाननेवाले योगी निर्व्वेद शून्य, क्लेशरहित आलस्य और मत्स-

रता हीन होकर ध्यानके जरिये फिर चित्तको स्थिरकरते हैं। समाधि करनेमें उद्यत मनन-शील मनुष्योंके मनमें अधिकारी भेदसे ध्यानके पहिले विचार, विवेक और वितर्क उपस्थित होता है ; उसमेंसे पहले अधिकारियोंके अन्तः-करणमें मनसे कल्पित पीताम्बर आदि विग्र-होंमें जो चित्तका प्रणिधान होता उसे विचार कहते हैं, इस विचारसे आलम्बन स्वरूप स्थूल विग्रहके एक एक अंशका परित्याग कर ध्येय वस्तुके एक अवयवभूत चरण आदिको विचारते विचारते विवेक उपस्थित होता है। उस विवे-कके जरिये ईश्वरस्वरूपसे चिन्तितव्य मूर्त्तिका जड़त्वभाव दूर होकर चेतमात्रकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रकार विवेकसे निर्गुण पर-ब्रह्म विषयका ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये मननशील मनुष्य मनके जरिये क्लेशित होकर भी समाधि किया करते हैं, वे कदापि निर्व्वेद प्राप्त नहीं होते, अपने हित कार्य्यमेंही नियुक्त रहते हैं। जैसे पांशु, भस्म और शुष्क गोमयसे सञ्चित चिता सहसा जलसे भीगनेपर पहिले उसका कैसा रूप था, उसकी कल्पना नहीं की जाती, और शुष्कचूर्ण पदार्थ अल्पस्नेहके कारण पहिले अभिभावित रहके फिर बहुत समय तक जलसे क्लिन्न होकर क्रमसे मूर्त्ताकार धारण किया करते हैं, वैसे ही इन्द्रियोंको धीरे धीरे मूर्त्ताकारमें योजित और क्रमशः संहार करे ; जो ऐसा करते हैं वेही सम्यक रूपसे प्रशान्त होसकते हैं, हे भारत ! स्वयं बुद्धि, मन और पञ्च इन्द्रियोंको सदा अभ्यस्तयोगके जरिये पहले ध्यानमार्गमें स्थापित करके दग्ध इन्धन अग्निकी तरह आप भी शान्त होवे, अर्थात् ब्रह्माकार चित्तवृत्ति दूसरी समस्त वृत्तियोंको प्रशान्त करती हुई निर्व्वाणकी भांति स्वयं शान्त हुआ करती है। सर्वाङ्ग युक्त सार्व्व भौम पद आदि ऐहिक सुख और हिरण्यगर्भ आदि पारलौकिक सुख निरुद्ध चित्तवाले योगीके सुखके समान नहीं हैं। योगी लोग उस ही परम सुखसे युक्त होकर ध्यान कार्य्यमें अनुरक्त रहते हैं, वे लोग इसी प्रकार निरामय निर्व्वाण पद लाभ किया करते हैं।

१९५ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमान ! आपके कहे हुए चारों आश्रमोंके हितकर धर्म्म, राजधर्म्म, विभिन्न प्रकार अनेक विषयोंके इतिहासों और धर्म्म युक्त सब कथा मैंने सुनी अब मुझे किसी विषयमें सन्देह है, आप उस विषयमें उपदेश दान करनेके उपयुक्त हैं। हे भारत ! मैं जाप-कोंके फलप्राप्ति विषयको सुननेकी अभिलाषा करता हूं। हे पापरहित ! शास्त्रमें जापक लोगोंके लिये कैसा फल वर्णित है ? जापक लोग कहां निवास करते हैं जापकी भी कैसी विधि है। आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये। "जापक" इस शब्दके जरिये वेदान्त विचार, अथवा चित्तवृत्ति निरोध वा कर्म्म, इन सबका प्रकाश अर्थात् विचार युक्त कर्म्म और आचार वर्णित हुआ करता है, अथवा यह ब्रह्मयज्ञ विधि रूपसे कहा जाता है। यह सब मेरे समीप वर्णन करिये, आपको मैं सर्व्वज्ञ समझता हूं।

भीष्म बोले, पहिले, समयमें यम और किसी ब्राह्मणसे आपसमें जो वार्त्ता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। मोक्षदर्शी महर्षियोंने जिसे सांख्य और योग कहा है, उसके बीच सांख्यमें जप क्रिया त्यागका विषय ही वर्णित हुआ है ; क्योंकि सांख्य मतके अनुयायी सब वेदान्त वचन परब्रह्म पर्य्यवसन्न हैं ; वे सब उपासना आदि विधि पर नहीं हैं तथ सब वेदवाक्य निवृत्ति प्रधान, शान्त और ब्रह्मपरा-यण हैं। प्रमाणान्तरोंसे न मालूम होने योग्य

ब्रह्मामें क्षय प्राप्तरूप कैवल्य पदप्राप्तिके कारण वेदान्तशास्त्र जपकी उपेक्षा नहीं करते। दूसरे शुभदर्शी मुनियोंके जरिये जो सांख्य और योगरूपसे कहे गये हैं, वे दोनों मार्ग ही जप विषयमें संश्रित और असंश्रित हुआ करते हैं। हे महाराज ! ऊपर कहे हुए दोनों मार्ग जिस प्रकार जपके सङ्ग संयुक्त होते हैं, उसका कारण कहता हूं। इन दोनों विषयोंमें मनके निग्रह और इन्द्रिय जयकी आवश्यकता होती है। सत्य कहना अग्नि परिचर्य्या, शुद्ध आहार और निर्जन स्थानमें निवास, ध्येय आकार प्रत्यय प्रवाह लक्षणका ध्यान विषयोंके दोष दर्शन आलोचना रूपी तपस्या, वशमें की हुई इन्द्रियोंकी तत्व प्रतिपत्ति योग्यता रूपी दम, क्षान्ति अनसूयता, परिमित भोजन काम आदि विषयोंको जीतना, परिमित वचन, और निग्रहीत मनके विक्षेपहीनता रूपी शम, ये सब सकाम पुरुषोंके स्वर्गादि जनक जपके अङ्गभूत धर्म्म हुआ करते हैं। अब जापकके कर्म्मनिवृत्ति लक्षण मोक्ष धर्म्म कहता हूं सुनो। जप करनेवाले ब्रह्मचारीका कर्म्म जिस प्रकार निवृत्त होता है, उसे प्रदर्शित करता हूं। मन समाधि आदि जिन सब विषयोंको पहिले विशेष रीतिसे कहा है निष्काम अनुष्ठानसे स्थूल सूक्ष्म निर्विषय शुद्ध चिन्मात्र निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करके उन सबका परिवर्त्तन करे। कदम्बपुष्प समान हृदयपिण्ड स्पर्श करते हुए मूलसे ब्रह्माण्ड आवरण करके स्थित करता है ; उसी प्रकार जापक योगी अग्रस्तात कुश बिछावें, हाथमें कुश धारण करें ; शिखाको कुशोंसे परिपूरित करें और चारों ओर कुशोंसे परिपूरित होकर कुशमें ही निवास करें, बाहरी और भीतरी चिन्ता परित्याग करें ; मनके जरिये जीव ब्रह्मकी ऐक्यता निश्चय करके मनहीसे उसका प्रतिष्ठापन करें। वे सावित्री संहिता जप करते हुए जीव ब्रह्मके ऐक्य ज्ञानसे परब्रह्मका ध्यान किया करते हैं, अथवा चित्तकी स्थिरता होनेपर वे निश्चल भावसे सावधान होकर पूर्व्वोक्त संहिता परित्याग करते हैं। वे शुद्ध चित्त, जितेन्द्रिय, द्वेष रहित और परब्रह्मके पानेके इच्छुक होकर विचारके जरिये संहिताबल अवलम्बन करनेसे ध्येयाकार प्रत्यय प्रवाह रूप ध्यान उत्पन्न करते हैं, राग मोहसे रहित और सुख दुःख आदि द्वन्द्व हीन होकर किसी विषयमें शोक नहीं करते और किसी विषयमें आसक्त भी नहीं होते। ऐसे जापक अपनेको कर्म्मकर्त्ता वा कर्म्म फल भोक्ता नहीं समझते और अहङ्कार योगसे मनको किसी कर्म्मके कर्त्तृत्व वा कर्म्म-फल भोक्तृत्वमें प्रस्थापित नहीं करते, वे अर्थ ग्रहण करनेमे आसक्त अभिमानी और क्रिया रहित नहीं होते, वे ध्याननिष्ठ समाधिविशिष्ट होकर ध्यानसे तत्व निश्चय किया करते हैं। वे लोग ध्यान अवलम्बन करके चित्तकी एकाग्रतामें उत्पन्न करते हुए धीरे धीरे उस अवलम्बनको भी परित्याग करते हैं। वे उस ही अवस्थामें सर्व्वत्यागी निर्बीज समाधिस्थ योगीके प्रत्यगानन्द स्वरूप सुख अनुभव करते हैं। जो लोग अणिमा आदि योग फलोंमें निष्प्रह होकर लोकान्तर गति साधन लिङ्ग शरीर परित्याग करते हैं, वे सुख स्वरूप ब्राह्म शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, अथवा यदि वे ब्रह्मस्वरूप सुखमें स्थिति करनेकी इच्छा न करें, तो देवयान मार्गमें निवास करते हुए फिर संसारमें जन्म नहीं लेते वे योगी इच्छानुसार मोक्षमार्ग वा ब्रह्मलोकमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं ; वे तत्व दर्शनसे रजोगुण हीन अमृत अवलम्बन करके शान्त और जरा मरणसे रहित होकर पवित्र परमात्माको पाते हैं।

१९९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! आपने जापकोंको योगसिद्धि प्राप्तिके जरिये जरा मरण हीनता, इच्छानुसार शरीर त्याग, ब्रह्मलोक गमन और कैवल्य प्राप्ति विषय कहे, परन्तु उन लोगोंकी यह एकही प्रकारकी गति है, अथवा वे लोग दूसरी भांति गति लाभ किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ महाराज ! जापक लोग जिस प्रकार अनेक प्रकारके निरयोंमें गमन किया करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो। जो जापक पहिले पूर्व्वोक्त आचरण नहीं करते, वे अपूर्ण मनोरथ होकर निरयमें गमन किया करते हैं। जो अश्रद्धाके सहित जप करते और उससे प्रसन्न वा हर्षित नहीं होते, वैसे जापक निःसन्देह निरयमें गमन करते हैं। जो लोग अहङ्कार पूर्व्वक जप करते और दूसरेकी अवज्ञा करते हैं, वैसे जापक पुरुष अवश्यही निरयगामी होते हैं। जो पुरुष मोहित होकर फलाभिसन्धि पूर्व्वक जप करते हैं उन्हें जैसे कर्म्ममें प्रीति होती है, वैसे फलको भोगनेके लिये उसे उसहीके अनुरूप शरीर प्राप्त हुआ करता है। अणिमा आदि ऐश्वर्य्य भोग प्रवृत्तिके वशमें होकर जो जापक उसमें अनुरक्त होते हैं, वह अनुराग ही उनके लिये निरय स्वरूप है ; फिर वे उससे कदापि नहीं छूट सकते। ऐश्वर्य्य विषयक रागसे मोहित होकर जो जापक जप करते हैं, उन्हें जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न होता है, उसे भोगनेके निमित्त उन्हें उसहीके अनुरूप शरीर धारण करके जन्म लेना पड़ता है। जो भोगासक्त चित्त सब भोगोंके दुरन्तत्वमें ज्ञान रहित और चञ्चलचित्तसे निवास करते हैं वे जापक चपलगति लाभ करते हैं अथवा निरयमें गमन किया करते हैं यह बुद्धि समयको अतिक्रम करके आरही है, प्रमादके कारण उसका निश्चय नहीं होता है। इस विषयमें मूर्ख बाल स्वभाव वाले जापक मोहको प्राप्त होते और उसही मोहके कारण नरकमें गमन करते हैं, वहां जाके शोक किया करते हैं। जो पुरुष दृढ़ निश्चय करके जप करनेमें प्रवृत्त होता है, और वह अविरक्त होकर बलपूर्व्वक भोगोंको त्यागते हुए जपकी समाप्ति करनेमें समर्थ नहीं होता, वह अन्तमें निरयगामी हुआ करता है।

युधिष्ठिर बोले, जो वस्तु अनागन्तुक कहके स्वभावसे ही अनिवृत्त और मन वचनसे अगोचर होकर प्रणवके बीच स्थित है, जापक उस ही ब्रह्मस्वरूपको पाके किस कारण इस जन्मान्तरमें शरीर धारण करता है।

भीष्म बोले, हे राजन् ! सकाम बुद्धिके कारण बहुतेरे निरय पूर्ण रीतिसे उदाहृत हुए हैं। जापकोंका धर्म्म अत्यन्त श्रेष्ठ है ; परन्तु राग आदि सब दोष-दुष्ट अज्ञान स्वरूप हैं, उस ही लिये विविध गति हुआ करती है।

१९७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! जापक पुरुष किस प्रकारके निरयोंमें गमन करते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। शुभ कर्म्म करनेवाले पुरुष भी अशुभ निरयको पाते हैं, इसे सुनके मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है, इसलिये आपको यह विषय वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे पापरहित ! तुम धर्म्मके अंशसे उत्पन्न हुए हो स्वयं स्वभावसे ही धर्म्मिष्ठ हो ; इसलिये सावधान होकर इस धर्म्मानुगत वचनको सुनो। हे राजन् ! महाबुद्धि देवताओंके इन सब स्थानोंको जिसे कहता हूं, वे परमात्माके स्थानसे भिन्न नहीं है इन सब स्थानोंमें दिव्य देहोंके रूप स्पर्श, गन्ध तथा अनेक तरहके फल दिखाई देते हैं ; दिव्यकामचारी विमान, सभा और विविध क्रीड़ा स्थान दीखते

और सुवर्णके कमल फूलते हैं। हे तात! इन्द्र आदि चारों लोकपाल, देवगुरु, शुक्राचार्य मरुद्गण, विश्वदेव, साध्य दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य और वसुगण तथा दूसरे सुरपुरवासी देवताओंके इन सब आश्रय स्थानोंको निरय कहते हैं, वे स्थान भयसे रहित हैं, क्योंकि वहां अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष आदि क्लेशोंकी सम्भावना नहीं है, आसक्ति-हीनताके कारण वहां आगन्तुक भयकी भी सम्भावना नहीं होती। वह स्थान प्रिय और अप्रिय इन दोनों पदार्थोंसे मुक्त है; प्रिय अप्रियके कारणभूत तीनों गुणोंसे रहित है, भूत, इन्द्रिय, मन, बुद्धि कर्म्म वासना, वायु और अविद्या, इन अष्टपुरोंसे परित्यक्त है; ज्ञेय, ज्ञान इन त्रिपुटियोंसे मुक्त है; क्यों कि वह दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान इन चारों लक्षणोंसे रहित है; अर्थात् वे स्थान रूप आदिसे रहित होनेसे प्रत्यक्षके विषय नहीं हैं। गुण-जाति क्रियाहीन प्रयुक्त शब्द ज्ञानगोचर नहीं हैं। असङ्गके कारण अनुमानके अनुगत नहीं हैं; सर्व्वसाक्षिक निष्पन्दन बुद्धिसे भी नहीं जाने जाते। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे हुए स्थान प्रागुक्त दर्शन आदि चारों कारणोंसे रहित प्रहर्ष और आनन्द हीन, विशोक और क्लम विवर्ज्जितरूपसे प्रसिद्ध हैं। अखण्डभावसे स्थित काल वहांपर भूत, भविष्य, वर्त्तमान आदि व्यवहारोंका कारण होकर उत्पन्न होता है। काल संयम वहां प्रभुता नहीं कर सकता अर्थात् वे वस्तु आदि अन्तसे रहित हैं। हे राजन्! जो कालका प्रभु और स्वर्गका ईश्वर है, जो जापक उस आत्माके सहित ऐक्यलाभ करता है, वह उक्त स्थानमें जाके शोक रहित होता है। ऐसे स्थान परम श्रेष्ठ हैं, पहिले कहे हुए सब निरय-स्थान भी उनके समान हैं। परन्तु यह हमने तुमसे ज्योंके त्यों सब निरयोंके विषय यथार्थ कहे; ऊपर कहे हुए मनोहर परम श्रेष्ठ स्थानोंसे निकृष्ट भावसे निरय नाम सब स्थान प्रसिद्ध हैं।

१९८ अध्याय समाप्त

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! परमायुको नष्ट करनेवाले काल, प्राण वियोजक मृत्यु और पुण्य-पापके फल देनेवाले यमराजके सम्मुख सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु और किसी ब्राह्मणसे विवाद हुआ था, आपने इस उपाख्यानके पहले इसकी चर्चा की थी; इसलिये अब उसे स्पष्ट रीतिसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, सूर्य्यवंशमें उत्पन्न हुए इक्ष्वाकु और ब्राह्मणके सम्बन्धमें जो विवाद हुआ था, प्राचीन लोग उसको पुराने इतिहासका इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं, काल और मृत्युके सम्मुखमें जो घटना हुई थी और जिस स्थानमें जिस प्रकार उन लोगोंकी वार्त्ता हुई थी, वह मुझसे सुनो। धर्म्मचारी, महायशस्वी, मन्त्राध्ययन परायण कोई जापक ब्राह्मण था। वह महाबुद्धिमान् विप्र शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष, वेदके इन छहों अंगोंको जानता था; वह कौशिक गोत्रीय पिप्पादका पुत्र था, षडङ्ग विषयमें उसे अपरोक्ष विज्ञान हुआ था। वह वेदनिष्ठ था और हिमालयके प्रत्यन्त पर्व्वतका आश्रय करके निवास करता था। उसने सावधान होके सावित्री संहिताका जप करते हुए स्वधर्म्मानुष्ठान रूपी अत्यन्त उत्तम तपस्या की थी। इसी प्रकार नियम पूर्व्वक उसका सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ, तब सावित्रीदेवीने "मैं प्रसन्न हुई हूं"—ऐसा वचन कहके उसे दर्शन दिया। ब्राह्मण मौनभावसे मन्त्रका जप करते हुए देवीसे कुछ न बोला। वेदमाता गायत्री उसके विषयमें उस समय कृपा करके अत्यन्त प्रसन्न हुई; और उसके जप मन्त्रकी अधिक प्रशंसा करने लगीं।

धर्म्मात्मा ब्राह्मणने जप समाप्त होने पर उठके देवीके चरणों पर गिरके उन्हें प्रणाम किया और यह वचन कहा कि, हे देवी! भाग्यसेही आपने प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दिया है। हे भगवती! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुई हों, तो आपकी कृपासे मेरा मन सदा जपमें ही रत रहे।

सावित्री बोली, हे जापकश्रेष्ठ विप्रर्षि! तुम क्या प्रार्थना करते हो? मैं तुम्हारा कौनसा अभिलषित विषय सिद्धकरूं, उसे कहो; तुम जो मांगोगे, वह सब सिद्ध होगा। देवीने जब ऐसे वचन कहे, तब वह धर्म्म जाननेवाला ब्राह्मण बोला, हे देवी! मेरी यह अभिलाषा जपमेंही सदा बढ़ती रहे, हे शुभे! मेरे मनकी एकाग्रता भी दिन दिन वृद्धिको प्राप्त होवे।

अनन्तर देवीने मधुर भावसे "वही होगा" ऐसा वचन कहा। फिर देवीने उसकी प्रियकामनासे यह भी कहा, जिस स्थानमें मुख्यामुख्य ब्राह्मण लोग गमन किया करते हैं, तुम्हें उस नियममें न जाना पड़ेगा; तुम आवागमनसे रहित होकर ब्रह्मलोकमें गमन करोगे; अब मैं निज स्थानपर जाती हूं। तुमने मेरे समीप जो प्रार्थना की है वही होगा; तुम सावधान और एकाग्र चित्त होकर जप करो; धर्म्म स्वयं तुम्हारे निकट आवेगा और काल, मृत्यु तथा यम भी तुम्हारे समीप आगमन करेंगे। इसही स्थानमें उन लोगोंके साथ तुम्हारा धर्म्म विवाद होगा।

भीष्म बोले, भगवती सावित्री ऐसा कहके अपने स्थानपर चली गईं। इधर ब्राह्मण भी सदा दान्त, जित-क्रोध, सत्यप्रतिज्ञ और असूया रहित होकर जप करते हुए देव परिमाणसे एकसौ वर्ष बिताने लगा। अनन्तर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणके जापकका नियम समाप्त होने पर उस समय धर्म्मने स्वयं प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया।

धर्म्म बोले, हे द्विजवर! मेरी ओर देखो मैं धर्म्म हूं, तुम्हें देखनेको आया हूं, तुम जो जप करते हो, उसका फल इस समय मुझसे सुनो। हे साधु! जो सब दिव्य वा मनुष्य लोक हैं, तुमने उन सबको जय किया है; तुम देवताओंके सब स्थानोंको अतिक्रम करके गमन करोगे। हे मुनिवर! इस समय तुम प्राण छोड़के निज अभिलषित लोकमें गमन करो; तुम अपना शरीर त्यागनेपर सब परलोक प्राप्त करोगे।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म्म! मुझे परलोक प्राप्तिसे क्या प्रयोजन है, आप सुखसे गमन करिये, हे विभु! मैं बहुतसे सुख दुःख मिश्रित शरीरको परित्याग न करूंगा।

धर्म्म बोले, हे मुनिपुङ्गव! तुम्हें अवश्य शरीर त्यागना योग्य है। हे पापरहित ब्राह्मण! तुम स्वर्गमें गमन करो, अथवा जो अभिलाषा हो वह कहो।

ब्राह्मण बोला, हे धर्म्म! मैं बिना शरीरके स्वर्गमें वास करनेकी इच्छा नहीं करता। हे विभो! मुझे शरीरके बिना स्वर्गमें गमन करनेकी श्रद्धा नहीं है; आप निज स्थान पर जाइये।

धर्म्म बोले, तुम शरीरमें मन न लगाओ, शरीर त्यागके सुखी होजाओ; रजोगुणसे रहित लोकोंमें गमन करो; जहां पर जाके शोक रहित होगे।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग! मैं जप साधनमें अनुरक्त हूं, मुझे सनातन लोकसे क्या प्रयोजन है, हे विभो! मैं शरीरके सहित यदि स्वर्ग लोकमें जा सकूं, तो अच्छाही है; नहीं तो कुछ प्रयोजन नहीं है।

धर्म्म बोले, हे द्विजवर! तुम यदि शरीर न त्यागोगे, तो देखो तुम्हारे समीप ये यम, मृत्यु, और काल उपस्थित हुए।

भीष्म बोले, हे राजन्! अनन्तर सूर्य्य-नन्दन यम, काल और मृत्यु, ये तीनों उस महाभाग

ब्राह्मणके समीप उपस्थित होके क्रमसे अपना अभिप्राय कहने लगे।

यम बोले, हे ब्राह्मण! मैं यम हूं, स्वयं तुम्हारे समीप आके कहता हूं, कि तुम्हारे इस बहुत समयसे अनुष्ठित तपस्या और सुचरितके हुआ उत्तम फल प्राप्तिका समय है।

काल बोला, मैं काल हूं, तुम्हारे समीप आया हूं, तुमने इस जपका उत्तम फल विधि पूर्व्वक प्राप्त किया है; इस समय तुम्हारा स्वर्गमें जानेका समय हुआ है।

मृत्यु बोली, हे धर्म्मज्ञ! मैं मृत्यु मूर्त्तिमान होकर स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं। तुम मुझे मालूम करो। हे विप्र! आज तुम्हें इस स्थानसे लेजानेके वास्ते मैं कालसे प्रेरित हुई हूं।

ब्राह्मण बोला, हे सूर्य्य पुत्र यम! महात्मन् काल,—हे मृत्यु!—हे धर्म्म! आप लोगोंने सुखसे आगमन किया है न? इस समय मैं आप लोगोंके किस कार्य्यका अनुष्ठान करूं।

भीष्म बोले, अनन्तर वह ब्राह्मण आये हुए यम आदिको पाद्य अर्घ देकर उन लोगोंके वहां पर समागमसे प्रसन्न होकर बोला, मैं निज शक्तिके अनुसार आप लोगोंका कौन प्रिय-कार्य्य सिद्ध करूं।

हे राजन्! ब्राह्मण ऐसाही वचन कह रहा था, उस ही समय जिस स्थानमें वे सब एकत्रित हुए थे, वहां तीर्थयात्रा प्रसङ्गसे घूमते हुए सूर्य्यवंशीय राजा इक्ष्वाकु आके उपस्थित हुए। अनन्तर नृपरुत्तम इक्ष्वाकुने उन लोगोंको पूजा की और सबसेही कुशल प्रश्न किया। ब्राह्मण उस अभ्यागत राजाको पाद्य, अर्घ और आसन देकर कुशल पूंछके बोला, हे महाराज! आप सुखसे आये हैं न? इस स्थानमें जो इच्छा हो, उसे कहिये मैं निज शक्तिके अनुसार क्या करूं; आप उसको आज्ञा करिये।

राजा बोला, मैं क्षत्रिय हूं, आप षट कर्म्म-शाली ब्राह्मण हैं, इसलिये आपको कुछ धन दान करूं, कहिये इस विषयमें आपका क्या अभिप्राय है?

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! प्रवृत्त और निवृत्त भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं, धर्म्म भी दो प्रकारके हैं, इसमेंसे मैं प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं। हे नरनाथ! जो प्रतिग्रहणमें प्रवृत्त हो, आप उन्हेंही धन दान करिये; मैं कुछ भी दान न लूंगा। हे राजन्! आप क्या इच्छा करते हैं, उसे कहिये। मैं तपस्यासे आपका कौन कार्य्य सिद्ध करूं?

राजा बोला, हे द्विजवर! मैं क्षत्रिय हूं, 'देहि' यह वचन कभी नहीं कहता, 'युद्ध दान करो'—ऐसाही वचन कहा करता हूं।

ब्राह्मण बोला, हे नृपवर! हम लोग जैसे स्वधर्म्मसे सन्तुष्ट रहते हैं, आपभी उसी प्रकार निज धर्म्मसे परितुष्ट होंगे; इसलिये हम लोगोंमें परस्पर भेद नहीं है; इस समय आप इच्छानुसार आचरण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! पहले आपने "निज शक्तिके अनुसार दान करूंगा" ऐसा वचन कहा है; इसलिये मैं आपके समीप प्रार्थना करता हूं, कि आप मुझे इस जपका फल दान करिये।

ब्राह्मण बोला, आपने इस प्रकार अपनी बड़ाई की थी, कि "मेरा मन सदा युद्धकी प्रार्थना किया करता है;" परन्तु तुम्हारे साथ मुझसे युद्धकी सम्भावना नहीं है, तब किस लिये प्रार्थना करते हो?

राजा बोला, ब्राह्मणोंका वचन ही वज्र स्वरूप है और क्षत्रिय बाहुजीवी कहके वर्णित हुए हैं। हे विप्र! इसलिये आपके साथ मेरा यह कठोर वचन युद्ध होरहा है।

ब्राह्मण बोला, "मैं निज शक्तिके अनुसार क्या प्रदान करूं",—पहिले जो ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इस समय भी वह प्रतिज्ञा है। हे राजेन्द्र! इससे मेरा जो कुछ विभव है, उसको

अनुसार मैं क्या दान करूं ? उसीको कहिये, विलम्ब न करिये।

राजा बोला, आपने एक सौ वर्षतक जप करके जो फल पाया है, यदि मुझे दान करनेकी इच्छा करते हैं, तो उसीको दान करिये।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! यह उत्तम वचन है मैंने जपसे जो फल पाया है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये; आप उसका आधा फल पावेंगे, अथवा यदि आप पूरे फलकी इच्छा करें, तो मेरे जपका सब फल पावेंगे।

राजा बोला, मैंने जो आपके जपका सब फल मांगा है, उससे मुझे प्रयोजन नहीं है। आप कुशलसे रहिये, मैं जाता हूं; परन्तु आपके जपका फल क्या है; वही मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने जो जप किया है और आपको दान किया है, उससे क्या फल प्राप्त हुआ है, वह मैं कुछ भी नहीं जानता। ये धर्म्म, काल, यम और मृत्यु, इस विषयके साक्षी हैं।

राजा बोला, इस धर्म्मका फल अज्ञात रहनेसे मुझे क्या फल होगा। इस जपके फलको यदि आप मुझसे न कहें, तो इस फलको आपही पावें मैं संशयके सहित फल लाभ करनेकी इच्छा नहीं करता।

ब्राह्मण बोला, हे राजर्षि! दूसरेसे जो कहना होता है और मैंने जोफल दान किया है; उसे अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा; इस समय तुम्हारा और मेरा वचनही इस विषयमें प्रमाण है। मैंने पहले जप विषयमें कभी कुछ अभिसन्धि नहीं की है, हे नृपश्रेष्ठ! इसलिये मैं जपका फल किस प्रकार जानूं? आपने 'दान करो' ऐसा वचन कहा, मैंने भी 'दान किया' यह वचन कहा है। और इस समय अपना वचन दूषित नहीं कर सकूंगा; आप स्थिर होके सत्यकी रक्षा करिये। हे राजन्! मैं इसी प्रकार कहता हूं, इससे यदि मेरा वचन न मानोगे, तो तुम्हें मिथ्या वचनके कारण महान् अधर्म्म होगा। हे प्रजानाथ! जैसे आपको मिथ्या कहना उचित नहीं है, वैसेही मैंने भी जो कुछ कहा है, उसे भी मिथ्या करना योग्य नहीं है। मैंने पहिले अविचारित चित्तसे "दान किया" कहके अङ्गीकार किया है, इसलिये यदि आप सत्यपथमें स्थित हों, तो विचार न करके मेरे दिये हुए फलको ग्रहण करिये। हे राजन्! आपने इस स्थानमें आके मुझसे जपका फल मांगा, मैंने आपको उसे दान किया है, इससे आप ग्रहण करिये और सत्यपथमें स्थित होइये; मिथ्या वचन कहनेवाले मनुष्योंको इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं मिलता; जब कि वह पूर्व्व पुरुषोंका ही उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है, तब किस प्रकार उत्पन्न हुए सन्तान परम्पराका कल्याण साधन करेगा। हे पुरुष श्रेष्ठ! जैसा इस लोक और परलोकमें सत्य लोगोंके निस्तारका कारण है; यज्ञफल, दान और सब नियम वैसे नहीं हैं। मनुष्यने सौ हजार वर्ष तक जो तपस्या की है और करेगा उसका फल सत्यफलकी तरह उसे उत्तम फलभागी नहीं कर सकता। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म, सत्य ही अक्षय तपस्या है; सत्य ही केवल सदा फल देनेवाला यज्ञ है, सत्य ही नित्यवेद स्वरूप है, तीनों वेदोंमें सत्य ही प्रकाशमान होरहा है। सत्यका फल सबसे श्रेष्ठ है, ऋषियोंने ऐसा ही कहा है, सत्यसे ही धर्म्म और इन्द्रिय जय रूपी दमगुण प्राप्त होता है। सत्यसे ही सब प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही वेद और वेदाङ्ग स्वरूप है। सत्य ही विद्या और विधि स्वरूप है, सत्य ही ब्रह्मचर्य्य और सत्य ही ओंकार स्वरूप है; प्राणियोंकी उत्पत्ति और विस्तृति सत्य स्वरूप है। सत्यके कारण वायु बहता है, सूर्य्य तपता है, अग्नि जलाती है, सत्यसे ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। सत्य ही यज्ञ, तपस्या वेद,

सामोच्चारण वर्षा, मन्त्र और सरस्वती स्वरूप हे। सुना गया है, तुल्यता जाननेके वास्ते सत्य और धर्म्म तुलादण्डपर रखे गये थे, समान भावसे परिमाण करनेके समय जिधर सत्य था, उधर ही अधिक हुआ; जहांपर धर्म्म वहां ही सत्य है, हे महाराज! इससे आप किस निमित्त अपने वचनको मिथ्या करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! अपना अन्त:करण सत्यमें स्थिर कीजिये, मिथ्या आचरणमें अनुरक्त न होइये। आपने "देहि" कहके उसे अशुभ और मिथ्या क्यों कहा? हे महाराज! यदि आप मेरे दिये हुए जपके फलको ग्रहण करनेकी इच्छा न करेंगे, तो सब धर्म्मसे भ्रष्ट होकर निकृष्ट लोकोंमें विचरेंगे। जो अङ्गीकार करके देनेकी इच्छा नहीं करते और जो मांगके दान लेनेसे विमुख होते हैं; वे दोनो ही मिथ्याचारी होते हैं; इसलिये आप अपने वचनको मिथ्या नहीं कर सकते।

राजा बोला, हे द्विजवर! युद्ध और प्रजापालन करना क्षत्रियोंका धर्म्म है, तथा क्षत्रिय लोग ही दाता कहके वर्णित हुए हैं; इसलिये मैं आपके समीप कैसे दान ले सकूंगा।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! मैं तुम्हारे घर पर नहीं गया और 'ग्रहण करो' कहके बार बार आग्रहके सहित प्रार्थना भी नहीं की; आप ही मेरे समीप आके मांगकर अब क्यों ग्रहण करनेमें पराङ्मुख होरहे हैं?

धर्म्म बोले, तुम दोनोंके विवादका निवटारा होवे, तुम दोनोंको विदित हो कि मैं धर्म्म इस स्थानमें आया हूं। ब्राह्मण दान फलसे और राजा सत्य फलसे संयुक्त होवें।

स्वर्ग बोला, हे राजेन्द्र! तुम्हें विदित हो कि मैं स्वर्ग स्वयं मूर्त्तिमान होके आया हूं, तुम दोनोंका विवाद मिट जावे, तुम दोनों ही समान फल भागी हुए हो।

राजा बोला, स्वर्गके साथ मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है। हे स्वर्ग! जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाओ ब्राह्मण यदि स्वर्गमें जानेकी इच्छा करे, तो मेरे आचरित पुण्यफलको ग्रहण करे।

ब्राह्मण बोला, बालक अवस्थामें यदि अज्ञानके वशमें होकर मैंने ग्रहण करनेके वास्ते हाथ पसारा हो, तो नहीं कह सकता; परन्तु ज्ञान होनेपर आजतक मैं साविवी संहिता जप करते हुए निवृत्ति लक्षण धर्म्मकी उपासना करता हूं। हे राजन्! मैं बहुत समयसे प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं, इसलिये मुझे आप क्यों लोभ दिखाते हैं। हे नृपवर! मैं तपस्या और स्वाध्यायमें रत और प्रतिग्रहसे निवृत्त हूं; इसलिये स्वयं ही अपना कार्य्य करूंगा; आपके निकट कुछ फल ग्रहण करनेका अभिलाषी नहीं हूं।

राजा बोला, हे विप्रवर! आपके परमश्रेष्ठ जपका फल यदि विस्वष्ट हुआ हो, तब हम दोनोंका जो कुछ फल है, वह इस स्थानमें एकत्रित होवे। ब्राह्मण दान लेनेवाले और राजवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय दाता कहके विख्यात हैं। हे विप्र! वेदोक्त धर्म्म सत्य हो, तो हम दोनोंका फल एकत्रित होवे यद्यपि हम लोगोंका एकत्र भोजन न हो, तोभी आप मेरे फलको पावें। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हुई हो, तो आप मेरे किये हुए धर्म्मका फल ग्रहण करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर मैले वस्त्र और बुरे रूपवाले दो पुरुष वहां पर उपस्थित हुए। उनमेंसे एकका नाम विरूप दूसरेका नाम विकृत था; वे दोनों एक दूसरेको घेरके पकड़कर यह वचन कहने लगे।

एक पुरुष बोला, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," दूसरा बोला, "मैं अवश्यही तुम्हारे निकट ऋणी हूं," इस समय हम दोनोंमें यह विवाद होरहा है; इसलिये यह राजा इसका विचार करे। मैं सत्यही कहता हूं, "तुमने मुझसे ऋण नहीं लिया है," परन्तु तुम यह

मिथ्या कहते हो, कि "मैं ऋणी हूं," वे दोनो ऐसेही वचनसे अत्यन्त दुःखित होके राजाके निकट जाके बोले कि, हे महाराज! हम लोग इस विषयमें जिस भांतिसे निन्दित न होवें, आप उसही प्रकार परीक्षा करिये।

विरूप बोला, हे नरश्रेष्ठ महाराज! मैंने इस समय इस विकृतके गऊ दानका फल ऋण किया है; परन्तु मैं ऋण चुकानेमें प्रवृत्त हूं, तो भी विकृत उसे नहीं लेता है।

विकृत बोला, हे नरनाथ! इस विरूपने मुझसे कुछ भी ऋण नहीं लिया है, यह आपसे सत्यके समान भावसे मिथ्या कह रहा है।

राजा बोला, हे विरूप! तुमने इसके निकट क्या ऋण लिया है, वह मुझसे कहो, मैं सुनके उसका विचार करूंगा; यही मेरे अन्तःकरणमें जंच रहा है।

विरूप बोला, हे महाराज! मैं जिस प्रकार इस विकृतके निकट ऋणी हुआ हूं, वह सब वृत्तान्त आप सावधान होकर सुनिये। हे पापरहित राजऋषि! इन्होंने पहिले धर्म्म प्राप्तिके लिये तप और स्वाध्यायशील किसी ब्राह्मणको एक शुभलक्षणवाली गऊ दान की थी। हे राजन्! मैंने इनके समीप आके उस गऊ दानका फल मांगा, इन्होंने भी शुद्ध चित्तसे मुझे वह फल दान किया था। हे राजन्! अनन्तर मैंने आत्मशुद्धिके निमित्त सुकृत कर्म्म किया और बहुतसा दूध देनेवाली बछड़ायुक्त दो कपिला गऊ खरीदके यथाविधि श्रद्धापूर्व्वक इस उञ्छवृत्तिको दोनों गऊ प्रदान की। हे पुरुष प्रवर! इस लोकमें लेकर जो उसही समय दूना फल देता है, वैसा दाता और प्रतिदाता इन दोनोंमेंसे इस समय कौन निर्दोषी और कौन दोषी होगा? हे महाराज! इसी प्रकार विवाद करते हुए हम दोनों आपके निकट आये हैं आप धर्म्म वा अधर्म्मसे विचार करके हम लोगोंको शिक्षा दीजिये। इन्होंने मुझे जिस प्रकार दान किया है, वैसेही यदि मेरे दानको यह स्वीकार न करें, तो आप सावधान चित्तसे विचार करके हम लोगोंको सत्पथमें स्थापित करनेमें समर्थ होइये।

राजा बोला, हे विकृत! तुम पहिले दिये हुए ऋणके लेनेमें क्यों विमुख होरहे हो? तुम्हारा जैसा ज्ञान हो, उसके अनुसार ग्रहण करनेमें देरी मत करो।

विकृत बोला, यह कहते हैं, "मैं ऋणी हूं" परन्तु मैं कहता हूं, दान किया है। इससे यह पुरुष इस समय मेरे समीप ऋणी नहीं है, इसकी जहां इच्छा हो, वहां जावे।

राजा बोला, यह पुरुष दे रहा है, तौभी तुम नहीं लेते हो, यह मुझे विषम बोध होता है; मेरे मतमें निःसन्देह तुम्हीं दण्डनीय हो।

विकृत बोला, हे राजऋषि! मैंने इसे जो दान किया है, उसे फिर किस प्रकार ले सकता हूं। इसमें मेरा अपराध हो, तो अवश्यही आप दण्ड की आज्ञा करिये।

विरूप बोला, हे विकृत! मेरे दिये हुए धनको ग्रहण करना यदि तुम अङ्गीकार न करोगे, तो धर्म्मके नियमित अनुसार यह शासनकर्त्ता राजा तुम्हें शासन करेगा।

विकृत बोला, मैंने मांगने पर तुम्हें जो धन दान किया है, इस समय उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकता हूं। जो हो, मैं तुम्हें आज्ञा करता हूं, तुम निज स्थान पर जाओ।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! इन दोनोंने जो कहा, उसे तुमने सुना; इस समय मैंने आपको जो प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की है, आप विचार न करके उसे ग्रहण करिये।

राजा बोला, इन लोगोंका कार्य्य जैसा गूढ़ है, यह महत् कार्य्य भी उसी भांति प्रस्तुत हुआ है। इस जापकके वचनकी दृढ़ता किस प्रकार सिद्ध होगी; यदि ब्राह्मणको दी हुई वस्तु

ग्रहण न करूं तो अवश्य ही आज महापापमें लिप्त हूंगा। अनन्तर वह राजर्षि विरूप और विकृतसे बोले, तुम लोग कृतकार्य्य होके गमन करो; इस समय राजधर्म्म मेरे समीप रहके मिथ्या न होगा। यह निश्चय है,कि राजाओंको सब तरहसे अवश्य स्वधर्म्म पालन करना चाहिये, मैं अत्यन्त अनात्मज्ञ हूं, इस समय विप्रधर्म्म मुझमें उपस्थित हुआ है।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आपने जो मांगा है उसे ग्रहण कीजिये और मैंने भी जो अङ्गीकार किया है उसे धारण करूं। आप यदि जांचके ग्रहण न करेंगे, तो मैं निःसन्देह शाप दूंगा।

राजा बोला, जिसके कार्य्यका ऐसा निश्चय हैं, उस राजधर्म्मको धिक्कार है। इस समय विप्रधर्म्म और राजधर्म्म दोनों किस प्रकार समान होंगे, इसेही जाननेके लिये मुझे ग्रहण करना उचित होता है। मेरा जो हाथ पहिले ग्रहण करनेके वास्ते नहीं पसारा गया, इस समय वही हाथ दान लेनेके लिये पसारा जा रहा है। इससे, हे विप्र! आप मेरे निकट जो ऋणी है, इस समय उसे प्रदान करिये।

ब्राह्मण बोला, मैंने सावित्री संहिता जप करते हुए जो कुछ फल उपार्जन किया है, वह सब आप ग्रहण करिये।

राजा बोला, हे द्विजवर! मेरे करतलमें यह जल पड़ा हुआ है, यह दोनोंके सम्बन्धमें समान हो और एकत्र मिलित हो, आप प्रतिग्रह करिये।

विरूप बोला, हम काम और क्रोध दोनों इस स्थानमें आये हैं, हमने ही आपके निकट विचारकी प्रार्थना की थी। आपने जो कहा है कि "समान होवे," उससे आपके और इसके सब पुण्यलोक तुल्य होंगे, आपके ही लिये यह कुछ ऋणी नहीं हैं, मैंने यह विषय पूछा था। काल, धर्म्म, मृत्यु; काम, क्रोध और आप दोनों पुरुष, सब तुम्हारे सम्मुखमें ही परीक्षित हुए। इस समय निज कर्म्मोंके जरिये विजित लोकोंके बीच जिस स्थानमें जानेकी इच्छा हो, वहां जाइये।

भीष्म बोले, जापकोंको फलप्राप्ति और गम्य स्थान तुम्हारे समीप प्रदर्शित किया और जापकोंके जरिये जिस प्रकार सब लोक विजित होते हैं, वह भी कहा है जो जापक सावित्री संहिता अध्ययन करते हैं, वह परमपद पाके ब्रह्माके लोक अथवा अग्निलोकमें गमन किया करते हैं, वा सूर्य्य लोकमें प्रवेश करते हैं। यदि वे उन सूर्य्यादि लोकोंमें प्रकाशमय रूपमें अनुरक्त रहें, तो रागमोहित होकर सूर्य्य आदिकी तरह प्रकाश आदि गुण अवलम्बन करते हैं और चन्द्रलोक, वायुलोक, भूलोक और आकाशमें उसके अनुरूप शरीर धारण करके उन लोकोंमें जो जो गुण हैं, उसहीका आचरण करते हुए रागयुक्त होकर वहां निवास करते हैं। यदि वहांपर वे रागरहित होकर संशययुक्त हों, तो ब्रह्मलोकसे श्रेष्ठ अक्षय लोकको इच्छा करते हुए उसमेंही प्रविष्ट होते हैं। निष्काम, अहङ्कार रहित जापक लोग अमृतसे भी अमृत हैं, अर्थात् कैवल्य नाम सुख मोक्षस्थान प्राप्त करके सुख दुःख आदि द्वन्द्व हीन नित्य सुखी शान्त निरामय ब्रह्मस्वरूप होकर पुनरावृत्तिसे रहित अद्वितीय अक्षरसंज्ञक दुःख और जराहीन शुद्ध शान्तिमय ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। अनन्तर वे वहांपर प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणोंसे हीन भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु-लक्षणसे रहित प्राण आदि पञ्चवायु, दशो इन्द्रिय और मन, इन षोड़श विकारोंसे मुक्त, उस कारण स्वरूप ब्रह्मको अतिक्रम करके उपाधि रहित चैतन्यमात्र परब्रह्मको पाते हैं, अथवा यदि वे सकाम होकर सर्व्वमय कारण स्वरूप लाभकी इच्छा न करें, अर्थात् तदभिमानी हों तब वे मनही मन जो इच्छा करें, उसेही पावें।

इसके अतिरिक्त वे निरयनाम सब लोकोंको देखते और सर्व्व मुक्तासे विमुक्त होकर वहां परम सुखके साथ विराजते हैं। हे महाराज! यह तुमसे जापकोंकी गति विस्तारपूर्व्वक कहा फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

१९९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! उस समय उस विरूपके वचन सुनके जापक ब्राह्मण अथवा राजाने क्या उत्तर दिया? आप मुझसे वही कहिये, अथवा सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति और लोकान्तर प्राप्ति इन तीनों विषयोंको जो आपने कहा है, उसके बीच वे लोग कहां गये; उन लोगोंकी वहां जानेपर क्या वार्त्ता हुई और उन्होंने वहां जाके क्या किया? उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर वह ब्राह्मण ऐसाही होवे, यह वचन कहके पहले धर्म्म, यम, काल, मृत्यु और स्वर्गका पूर्व्वरीतिसे सत्कार किया, फिर वहांपर जो सब मुख्य ब्राह्मण उपस्थित हुए थे, सिर झुकाकर उनकी पूजा करके राजासे बोला, हे राजर्षि! आप इस फलसे संयुक्त होकर प्रधानता लाभ करिये, मैं भी आपकी सम्मतिके अनुसार फिर जप करनेमें नियुक्त होऊं। हे महाबली नरनाथ! पहिले सावित्री देवीने मुझे यह वर दिया है, कि "जप विषयमें तुम्हारी सदा श्रद्धा रहे"।

राजा बोला, हे विप्र! मुझे जपका फल दान करनेसे यदि आपकी सिद्धि निष्फल हुई हो और जप करनेमेंही यदि आपकी श्रद्धा हो; तो मेरे सङ्ग चलिये, जप, फल, दान करनेके पुण्यसेही आप जपका फल पावेंगे।

ब्राह्मण बोला, इस स्थानमें सबके समीप मैंने आपको जपका फल देनेके लिये अत्यन्त प्रयत्न किया; इस समय हम दोनों समान रीतिसे तुल्य फलभागी होकर, जहां हमारी गति होगी गमन करेंगे। अनन्तर त्रिदशेश्वर उनका ऐसा निश्चय जानके लोकपाल और देवताओंके सहित वहां उपस्थित हुए। साध्यगण मरुद्गण, विश्वगण, सुमहत्, समस्त वाद्य, नदी, पर्व्वत, समुद्र और विविध तीर्थ, तपस्या, योगविधि, जीव ब्रह्मकी ऐक्यता प्रतिपादक सब वेद सामगान पूरणार्थ (हायि हावु आदि) सब अक्षर, नारद, पर्व्वत विश्वावसु, हाहा, हूहू और परिवारके सहित चित्रसेन गन्धर्व्व, नाग, सिद्ध, मुनि, देवदेव, प्रजापति और अचिन्त्य सहस्रशीर्ष विष्णु वहां उपस्थित हुए। आकाशमें भेरी और तूर्य्यवाद्य होने लगा। वहांपर उन महानुभावोंके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, चारों ओर अप्सरा नृत्य करने लगीं। अनन्तर मूर्त्तिमान स्वर्ग ब्राह्मणसे बोला, हे महाराज! आपने सब तरहसे सिद्धि लाभ की है,—महाराज! तुम भी सिद्ध हुए हो।

हे राजन्! वे दोनों ही परस्परके उपकारके जरिये एक समयमें ही रूप आदि विषयोंसे नेत्र आदि इन्द्रियोंको प्रतिसंहार करनेमें प्रवृत्त हुए। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, इन पञ्चवायुको हृदयमें स्थापित करके एकीभूत प्राण और अपान वायुमें मनको धारण किया। अनन्तर उन्होंने प्राण और अपानको, उनके निवासस्थल उदरमें स्थापित करके पद्मासन होकर भृकुटीके नीचे नासिकाका अग्रभाग देखते हुए भृकुटीके बीच मनके सहित प्राण और अपान वायुको क्रमसे धारण किया, इसी प्रकार उन्होंने चित्त जय करके चेष्टा रहित दोनों शरीरोंके जरिये स्थिरदृष्टि और समाहित होकर प्राणके सहित चित्तको मस्तकमें स्थापित करके धारण किया। अनन्तर उस महात्मा ब्राह्मणका ब्रह्मरन्ध्र विदीर्ण होके एक बहुत बड़ी ज्योतिशिखा निकलके स्वर्ग लोकमें गई। उस समय सब दिशाओंमें सब जीवोंके बीच महान् हाहाकार होने लगा। वह प्रशंस-

नीय ज्योति उस समय ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हुई। हे महाराज! पितामह ब्रह्मा उस ज्योतिके प्रवेशके समय उठे और स्वागत प्रश्न करके मधुर वचनसे बोले, कि योगियोंका फल निःसन्देह जापक लोगोंके समान है । जापकोंसे योगियोंका फलदर्शन प्रत्यक्ष है; परन्तु जापकोंके पक्षमें यही विशेष है, कि उन्हें देखतेही उठनी विहित हुआ है। अनन्तर ब्रह्मा उस ब्राह्मणसे बोले, "तुम मुझमें सदा वास करो" ऐसा कहके फिर उसे सचेतन किया। अनन्तर उस ब्राह्मणने आनन्दित होके ब्रह्माके मुखमें प्रवेश किया। जिस प्रकार ब्राह्मण ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुआ, राजाने भी उसही विधिसे भगवान् पितामहके शरीरमें उसी समय प्रवेश किया। अनन्तर देवता लोग ब्रह्माको प्रणाम करके बोले, जापकोंको देखतेही उठके खड़ा होना विशेष रूपसे विहित है; जापकके लिये ही सबका इस प्रकार प्रयत्न हुआ है और हम भी इसही कारण इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं; यह ब्राह्मण और राजा समान फलभागी हैं, इसलिये आपने इन दोनों तुल्य पुरुषोंका समान सत्कार किया है। योगी और जापकका महत् फल आज देखा गया। इस समय ये लोग सब स्थानोंको अतिक्रम करके जहां इच्छा हो, वहां गमन करें।

राजा बोला, जो शिक्षा आदि वेदाङ्गस्वरूप महास्मृति शास्त्र अध्ययन करते और जो मनु आदि प्रणीत शुभफल देनेवाली मनुस्मृति आदि पाठ किया करते हैं, वे भी इसी विधिके अनुसार हमारे समान लोकोंमें गमन कर सकते हैं। जो योग विषयमें अनुरक्त रहते हैं, वे भी शरीर त्यागने पर इस ही रीतिसे हमारे समान लोकोंको पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस समय मैं जाता हूं। तुम लोग भी सिद्धिके अनुसार यथा स्थानमें गमन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! प्रजापति उस समय ऐसाही कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। अनन्तर देवता लोग भी परस्पर आमन्त्रण करके निज निज स्थान पर गये। यम आदि महानुभावोंने अत्यन्त प्रसन्न होके धर्म्मका सत्कार करके उनके पीछे पीछे गमन किया। हे महाराज! जापकोंके फल और गतिका विषय जैसा सुना है, वैसा ही तुम्हारे समीप वर्णन किया; फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो?

२०० अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ज्ञानयुक्त योग, सब वेदों और अग्निहोत्र आदि नियमोंका क्या फल है? और जीवको किस प्रकार जाने? आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रजापति मनु और महर्षि बृहस्पतिके सम्वाद युक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं देवर्षिओंमें मुख्य बृहस्पतिने शिष्यभाव स्वीकार करके प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ मनुको गुरु समझके उन्हें प्रणाम करके यह प्राचीन प्रश्न पूछा कि, हे भगवन्! जो इस जगत्का कारण है, जिसके निमित्त कर्म्मकाण्डकी विधि प्रचलित हुई है, जिसे जाननेसे परमफलकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्राह्मण लोग कहा करते हैं; वेदोक्त मन्त्र जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, आप विधि पूर्व्वक उसका वर्णन करिये। धर्म्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग शास्त्र और वेद मन्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके महत् यज्ञ और गजदानके जरिये जिसकी उपासना किया करते हैं, वह वस्तु कैसी है? किस प्रकार उसकी प्राप्ति होती है। और वह कहां है; हे भगवन्! महीमण्डल, स्थावर और जङ्गम, वायु, आकाश, जल, जलचर जीव, स्वर्ग और स्वर्गवासी लोग जिससे उत्पन्न हुए हैं, आप मेरे समीप उसही

पुरुष पुराणका विषय वर्णन करिये। मनुष्य जिस विषयमें ज्ञानकी इच्छा करते हैं, ज्ञानसे उसी उसके निमित्त प्रवृत्ति हुआ करती है, मैं उस पुरातन पुरुषको नहीं जानता, तब उसे जाननेके लिये किस प्रकार मिथ्या प्रवृत्ति करनेमें प्रवृत्त होऊं। मैं ऋक्, साम और सम्पूर्ण यजुर्व्वेद, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कल्प और व्याकरण, यह सब विद्या पढ़के भी आकाश आदिके उपादान कारण आत्माको जाननेमें समर्थ न हुआ। आप सामान्य और विशेष शब्दोंसे उस विषयका उपदेश करिये। आत्माको जाननेसे क्या फल होता है। कर्म्म करनेसेही कौनसा फल मिलता है; आत्मा शरीरसे जिस प्रकार पृथक् होता है, और फिर जिस प्रकार शरीरमें स्थित होता है, आप वह सब वर्णन करिये।

मनु बोले, प्राचीन लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जिसे प्रिय है उसे उसहीसे सुख है, जिसे जो अप्रिय है, वही उसका दुःख है। "मेरी भलाई हो और कुछ बुराई न हो," इसही लिये मनुष्य कर्म्म करनेमें प्रवृत्त हुआ करते हैं; "मेरी भलाई बुराई कुछ न हो," इसही निमित्त लोग ज्ञानके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं। वेदमें कहे हुए सब कर्म्म काम प्रधान कहके निर्द्दिष्ट हुए हैं, जो लोग उन सब कर्म्मोंसे मुक्त होते हैं, वे परम सुख भोग करते हैं। सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य अनेक प्रकारके कर्म्मपथमें प्रवृत्त होके स्वर्ग अथवा नरकमें गमन किया करते हैं।

बृहस्पति बोले, अभिलषित सुखही ग्राह्य है, अनभिलषित दुःखही त्याज हैं,—ऐसीही इच्छा अभिलषा करनेवालोंको सब कर्म्मोंसे प्रलोभित किया करती है।

मनु बोले, स्वर्ग आदि प्राप्ति रूप सुखके निमित्त अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान हुआ करता है। जो लोग उन कर्म्मफलोंसे मुक्त हुए हैं, उन्होंनेही परम पुरुषमें प्रवेश किया है। सब कर्म्मकाण्ड सकाम मनुष्योंकोही प्रलोभन प्रदर्शित करते हैं, जो निष्काम होते हैं, वे परमार्थ ग्रहण करते हैं। इसलिये मनुष्य ब्रह्मज्ञानके ही वास्ते सब कर्म्मोंका अनुष्ठान करें, क्षुद्र फलोंके लिये कर्म्मानुष्ठान उत्तम नहीं है। धर्म्ममें प्रवृत्त मोक्षसुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्य चित्तशुद्धि आदि कर्म्मोंसे राग आदि दोषोंसे रहित होनेके कारण आइनेकी तरह प्रकाशमान होकर कर्म्म पथसे अत्यन्त अगोचर निष्काम परब्रह्मको पाते हैं। जीव मन और कर्म्मसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये मन और कर्म्म संसारप्रद होनेपर भी सर्व्वलोक सेवित सत्पथ स्वरूप अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिके उपाय हुए हैं। वेदविहित कर्म्म मोक्षके कारण होनेपर भी उनका फल बहुत कम है; मनसे क्रियमाण कर्म्म फलका त्यागही मोक्षके विषयमें कारण है, दूसरा कुछ भी नहीं है। जैसे नेत्र रूपी नायक रात्रिके बीतने पर अन्धकारसे रहित होकर त्यागने योग्य कांटे आदिको स्वयं देखता है, वैसेही ज्ञान विवेक गुणसे संयुक्त होकर त्यागने योग्य अशुभ कर्म्मोंको देखता रहता है। जैसे कोई कोई मनुष्य सांप कुशाग्र और कूएंको जानके उन्हें परित्याग करते हैं, वैसेही कोई कोई अज्ञानके कारण उनके ऊपर गिरते हैं, इसलिये ज्ञानमें जो विशेष फल है, वह इस उदाहरणसे ही देखो। विधिपूर्व्वक प्रयोग किये गये मन्त्र, यथोक्त यज्ञ, दक्षिणादान, अन्न प्रदान और देवताके ध्यानमें मनकी एकाग्रता, ज्ञानपूर्व्वक किये गये इन पांचों विषयोंको प्राचीन लोग फलवत् कर्म्म कहा करते हैं। वेद सब धर्म्मोंको सात्विक, राजसिक और तामसिक कहा करता है, इससे मन्त्र भी त्रिगुणात्मक हैं; क्योंकि मन्त्रपूर्व्वक कर्म्मही सिद्ध होते हैं। सात्विक आदि भेदोंसे विधि भी तीन प्रकार की है;

मनके जरिये फलको उत्पत्ति हुआ करती है और फलभोक्ता देहधारी भी तीनों गुणोंके भेदसे सुखी, दुःखी और मूढ़ भेदसे तीन प्रकारका हुआ करता है। शब्द, स्पर्श, रूप पवित्र रस और शुभगन्ध आदि कर्म्म फलोंसे प्राप्त होने योग्य स्वर्ग आदि लोक सिद्ध होते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेसे ही ज्ञान फलका अधिकारी नहीं होता; ज्ञानका फल, कर्म्मसे प्राप्य स्वर्ग आदि लोक ही सिद्ध हुआ करता है। शरीरसे जो कर्म्म करता है, शरीर युक्त होकर जीव उसही कर्म्मका फल भोग किया करता है; क्यों कि अकेला शरीर ही केवल सुखका स्थान और शरीरही केवल दुःखका आश्रय है। वचनसे जो कुछ कर्म्म करता है, जीव वाक्यके सहित उन सब फलोंको भोग किया करता है; मनसे जो कुछ कर्म्म करता है। जीव मनके सहितही उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जीव कर्म्म फलमें रत और फलकी इच्छा करके जिस प्रकार जो जो गुणयुक्त कर्म्म करता है, उन्हीं गुणोंसे संयुक्त होकर उसही शुभाशुभ कर्म्मफलोंको भोग करता है। जलके सोतेमें पड़ी हुई मछलीकी तरह जीव पूर्व्वकृत कर्म्मोंको प्राप्त हुआ करता है; उसके बीच शुभकर्म्मोंमें सन्तुष्ट और अशुभ कर्म्मोंसे असन्तुष्ट होता है। जिससे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसे जानके चित्तको जीतनेवाले योगी लोग जगत्‌को अतिक्रम करके गमन करते हैं, मन्त्र पद जिसे प्रकाश नहीं कर सकते, उस परम पदार्थका विषय कहता हूं, सुनो। जो स्वयं रसहीन और विविध गन्धसे रहित है; जो शब्द नहीं, स्पर्श नहीं और रूपवान नहीं है; जो इन्द्रियोंसे अगोचर अव्यक्त, वर्णहीन और एक मात्र है; जिसने प्रजा समूहके प्रयोजनके निमित्त पांच प्रकार रस आदिकी सृष्टि की है, वह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसकही है, वह न सत् है, न असत् है और सदसत् भी नहीं है; ब्रह्मवित् मनुष्य जिसे ज्ञान-नेत्रसे देखते हैं, उसे ही क्षय रहित अक्षय पुरुष जानो।

२०१ अध्याय समाप्त।

---

मनु बोले, माया-सहाय अक्षर पुरुषसे आकाश उत्पन्न होता है, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है और पृथ्वीसे स्थावर जङ्गमयुक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ करता है। अन्तमें सब शरीरधारी स्थावर जङ्गमात्मक इन सम्पूर्ण पार्थिव शरीरोंके जरिये लवणोदिककी भांति पहिले जलमें लीन होते, जलसे अग्नि, अग्निसे वायु और वायुसे आकाशमें जाके निवृत्ति लाभ करते हैं, जो लोग मुमुक्षु होते हैं, वे परम मोक्ष प्राप्त करते हैं, दूसरे लोग फिर आकाशसे लौट आते हैं। मोक्षका आश्रय परमात्मा न ठण्ढा है, न गर्म्म है, न कोमल है, न कठोर है, न खट्टा है, न कषैला है; न मीठा है, न तीता है; न वह शब्द युक्त है, न गन्ध विशिष्ट है और न वह परम स्वभाव परमात्मा रूपवान है। अनात्मज्ञ मनुष्य सर्व्वशरीर-व्यापित्वकसे स्पर्शज्ञान, जीभसे रस, नाकसे गन्ध, कानसे शब्दका ज्ञान करते और नेत्रसे रूप दर्शन किया करते हैं; परन्तु उस परम पुरुषको नहीं जान सकते।

मनुष्य रसोंसे जिह्वा, गन्धसे नासिका, शब्दसे कान, स्पर्शसे त्वचा और रूपसे नेत्रको निवृत्त करनेपर स्व-स्वभाव आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो कर्त्ता जो ज्ञान वा कर्म्मसे जो प्राप्त होता है, उसहीके लिये जिस देश वा समयमें निमित्तभूत सुख वा दुःखमें उसके अनुकूल यत्न आरम्भ करते और आरम्भ करके अदृष्ट अथवा ईश्वरेच्छा अवलम्बन करके उस आरम्भ कार्य्यके दर्शन-गमन

आदि कार्य्योंको सिद्ध किया करते हैं, मुनि लोग उन सबकोही कारण कहते हैं; इस लिये कर्त्ता, कर्म्म, करण, देश, काल, सुख, दुःख, प्रवृत्ति, यत्न, गमन आदि क्रिया, अनुराग और अदृष्ट आदि सबका जो कारण है, उस चिन्मात्रको स्वभाव कहा जाता है।

जो ईश्वरस्वरूपसे सर्व्वव्यापी और जो जीवरूपसे व्याप्त तथा कार्य्य साधक है, जो नित्य परमात्मा अकेला सब भूतोंमें निवास करता है। जलमें चन्द्रमाकी परछांईके समान जो एक होकर भी अनेक दीखता है; इस मन्त्रार्थके समान जो सदा जगत्में निवास करता है, जो सबका कारण है; जो अद्वितीय होके भी आपही सब कार्य्य कर रहा है वही कारण पद वाच्य है; उसके अतिरिक्त सब पदार्थही कार्य्य हैं। जैसे मनुष्य पूर्ण रीतिसे किये हुए पुण्य पापके जरिये शुभाशुभ पदार्थका फल पाता है, वैसे ही यह स्वभाव नामक परम कारण ज्ञान निज पुण्य पापकर्म्मोंके कारण शरीरमें फंसा करता है। जैसे दीपक अग्रभागकी सब वस्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही पञ्च इन्द्रिय स्वरूप दीपक ज्ञानसे जलकर बाहरी सब वस्तुओंको प्रकाशित किया करते हैं। जैसे राजाके पृथक् पृथक् बहुतसे अमात्य एकत्रित होकर कार्य्य निर्णयके लिये प्रमाण निर्द्देश किया करते हैं, वैसे ही शरीरके बीच पांचो इन्द्रिय अलग अलग होने पर भी ज्ञानके अनुगत होती हैं; इसलिये ज्ञान स्वरूप स्वभाव इन्द्रियोंसे भी श्रेष्ठ है। जैसे अग्निकी अर्च्चि, पवनका वेग सूर्य्यकी किरण और नदियोंके जल आते जाते तथा चलते हैं, शरीर धारियोंका शरीर भी उसही प्रकार है। जैसे कोई मनुष्य कुल्हाड़ा लेकर काठको काटनेसे उसमें धूंआ वा अग्नि कुछ भी नहीं देखता, वैसे ही शरीरसे उदर और हाथ पांव आदि काटनेसे उसके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु दिखलाई नहीं देती। उन सब काठोंके मथनेसे जैसे धूंआं और अग्नि दृष्टिगोचर होती है, वैसे ही उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुष योगसे इन्द्रिय और बुद्धिमें ऐक्यज्ञान करते हुए उस कारण-स्वरूप स्वभावका दर्शन करते हैं। जैसे मनुष्य सपनेमें पृथ्वीपर पड़े हुए निज अङ्गको अपनेसे पृथक् देखता है। वैसे ही कान आदि दशों इन्द्रिय, इस पञ्चप्राण युक्त अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य स्थूल शरीरसे देहान्तर रूपी लिङ्गशरीरमें गमन किया करता है। आत्माकी उत्पत्ति, वृद्धि, ह्रास और मृत्यु नहीं है; सुख दुःखप्रद कर्म्म सम्बन्धके कारण यह आत्मा अलक्षित होकर स्थूल शरीरसे लिङ्गशरीरमें गमन करता है। मनुष्य नेत्रसे आत्माका रूप नहीं देख सकते, किसी प्रकार उसे स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होते, नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं कर सकते, इन्द्रियें भी उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं; परन्तु वह उनको देखता है। जैसे निकटवर्त्ती अयःपिण्ड जलती हुई अग्निके सन्ताप जनित रूपको प्राप्त होता है, यथार्थमें जलाना और पिंगलल आदि दूसरे गुण तथा रूपको धारण नहीं करता, वैसेही शरीरमें आत्माका रूप चैतन्य मात्र दृष्टिगोचर होता है; यथार्थमें देह चेतन नहीं है। तथापि जैसे लोहगत चतुष्कोन आदि अग्निमें मालूम होते हैं, वैसेही देहसे दुःख आदि आत्मामें मालूम हुआ करते हैं। जैसे मनुष्य शरीर छोड़के दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है, वैसे ही आत्मा पञ्च महाभूतोंको परित्याग करके देहान्तरके आश्रय अमूर्त्त रूप धारण किया करती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें सब तरहसे आत्मा स्थित है, कान आदि पञ्च इन्द्रिय अनेक गुणोंको अवलम्बन कर कर्म्मोंमें वर्त्तमान रहके शब्द आदि गुणोंका आश्रय किया करती हैं। श्रवणेन्द्रिय आकाशके शब्द गुणका आश्रय करती है, घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गन्ध गुणको अव-

लम्बन करती हैं, दर्शनेन्द्रिय रूप ग्रहण करनेमें समर्थ होती है। जीभ जलाश्रय रसको अवलम्बन करती है स्पर्श इन्द्रिय वायुमय स्पर्श गुणका आश्रय किया करतो है, अर्थात् कान आदि पांचो इन्द्रिय शब्द आदि बासनाके सहित कार्य्यमें रत होती है। पांचो इन्द्रियोंके अविध्येय शब्द आदि, पञ्च महाभूतों और पांचो इन्द्रियोंमें निवास किया करते हैं। आकाश आदि महाभूत और इन्द्रियां मनके अनुगत होती हैं, मन बुद्धिका अनुगामो हुआ करता है और बुद्धिस्वभावका अनुसरण करती है; इसलिये यह सिद्ध होता है, कि विषयोंका कारण इन्द्रिय, इन्द्रियोंका कारण मन, मनका कारण बुद्धि और बुद्धिका कारण चिदात्मा है। निज कर्म्मोंसे प्राप्त हुए नवीन शरीरमें ऐहिक और पूर्व्वजन्मके जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म रहते हैं, इन्द्रियां उन्हें भी फिर ग्रहण करती हैं। जैसे नौका अनुकूल स्रोतके अनुगत होतो है, वैसे ही पूर्व्व संस्कारके कारण उत्तरोत्तर शरीरोंके क्रियमाण कर्म्म मनका अनुवर्त्तन किया करते हैं। जैसे भ्रान्तिज्ञानसे अस्थिर बस्तुतत्व मालूम होता है, सूक्ष्म पदार्थ मन भी वैसे ही महत्‌रूपको तरह प्रकाशित हुआ करता है। जैसे दर्पण मुखके प्रतिबिम्बको मुखस्वरूपसे दर्शन कराता है, वैसे ही अज्ञान कल्पित बुद्धिरूपी आइना एकमात्र प्रत्यक पदार्थको आलोचना कराया करता है; इसलिये भ्रान्तिके अनादि होनेपर भी तत्वज्ञानके जरिये उसमें बाधा होती है; बाधा होनेसे फिर दूसरो बार उसके उठनेकी सम्भावना नहीं रहती; इससे भ्रान्तिज्ञान दूर करनेके निमित्त तत्वज्ञानके प्राप्त करनेमें अत्यन्त यत्न करना उचित है।

२०२ अध्याय समाप्त।

---

मनु बोले, मनके सहित इन्द्रियोंके जरिये उपहित जीव चैतन्य है, वह पहिले अनेक अनुभूत विषयोंको स्मरण करता है, अर्थात् बाल्यकालमें मैंने यह अनुभव किया था, इस प्रकारके मनोरथके समय विषयेन्द्रिय सन्निकर्ष आदिके अभाव निबन्धनसे ज्ञेय ज्ञान ज्ञातृ बासनायुक्त बुद्धि ही सर्व्वात्मताको प्राप्त होकर साक्षी चैतन्यके जरिये प्रकाशित होती है। अन्तमें इन्द्रियां विलीन होनेपर ज्ञानस्वरूप परमात्माके रूपमें निवास करती हैं; इसलिये इसे अङ्गीकार करना पड़ेगा, कि बुद्धिसे स्वतन्त्र चैतन्य स्वरूप आत्मा अवश्य है। जो साक्षी चैतन्य जब एक समय, असमय और अनेक समयमें निकटवर्त्ती शब्द आदि इन्द्रिय विषयोंको उपेक्षा न करके प्रकाश किया करता है, तब वह साक्षी परस्पर व्यभिचारी तीनों अवस्थाओंमें भ्रमण करता है इससे एक मात्र चैतन्य जीव ही परम श्रेष्ठ है। काठमें स्थित अग्नि काठको जलाती है जैसे वायु उस काठका जलानेवाला न होकर भी केवल अग्निको उद्दीपन किया करता है, वैसेही इन्द्रियनिष्ठ बुद्धि ही इन्द्रिय जनित सुख दुःख आदि भोग करती है; चैतन्य उस बुद्धिको सचेतन कर रखता है; परन्तु इन्द्रियजनित सुख दुःखोंको नहीं भोगता। इस ही दृष्टान्तके अनुसार सत, रज, तम गुणात्मक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों बुद्धिस्थानोंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी साक्षी चैतन्य उनमें जिस प्रकार निवास करता है, वैसे ही इन्द्रिय आदि भी स्थित हुआ करती हैं। नेत्रसे आत्माको देखा नहीं जाता और इन्द्रियोंके बीच जिसमें स्पर्श शक्ति है, उससे भी आत्माको स्पर्श नहीं किया जा सकता; आत्मा शब्द रहित है, इसलिये शब्दके जरियेभी वह नहीं जाना जाता; इससे जिस इन्द्रिय वा मनके जरिये आत्माको जाना जाता है, वह भी परिणाममें विनष्ट होती है। कान आदि इन्द्रियें जब आपही अपनेको नहीं देख सकतीं तब सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी आत्माको

किस प्रकार देखेंगे। दृश्य और द्रष्टा, इस अभेद रूपसे जो सर्व्वज्ञ होकर सभी देख रहा है, और सब विषयोंको जानता है, वह आत्मा ही इन्द्रियोंको देखता है। आत्माके इन्द्रियोंसे अगोचर होनेसे उसके अस्तित्व विषयमें संशय नहीं किया जासकता; क्यों कि हिमालय पर्व्वत और चन्द्रलोकके पृष्ठभाग कभी मनुष्योंको नहीं दीखते, तो यह नहीं कहा जासकता, कि वे नहीं हैं; इसलिये सब भूतोंमें चैतन्य रूपसे स्थित सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप आत्मा पहिले कभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तोभी ऐसा नहीं कह सकते, कि वह नहीं है। दर्पण समान चन्द्रमण्डलमें जगत्की परछाईंको कलङ्क रूपसे देखकर जैसे मनुष्य यह अनुभव नहीं कर सकते, कि यह जगत्ही चन्द्र मण्डलमें दीख पड़ता है, वैसे ही आत्मज्ञान है, वह अस्मत् प्रत्ययके विषय और प्रत्यगात्म रूपसे प्रसिद्ध होनेसे अपरोक्ष है; इसलिये न वह अत्यन्त अविषय है, और न उत्पन्न ज्ञान है; इससे वह आत्म ज्ञानही परम निवृत्तिका स्थान है, इसे जानके भी मनुष्य बुद्धि दोषसे उसे देखकर भी नहीं देखता। पण्डित लोग स्थूलदृष्टिसे रूपवान् वृक्षोंको आदि अन्तमें अर्थात् उत्पत्तिके पहिले और विनाशके बाद रूपहीनता निबन्धन बुद्धिबलसे रूपहीन रीतिसे देखते हैं; क्यों कि आदि और अन्तमें जो वस्तु नहीं रहती, वर्त्तमानमें भी वह वैसीही है; इससे जो लोग इस प्रकार देखते हैं, वे लोग दूरत्व दोष निबन्धन प्रत्यक्षके जरिये अगृह्यमाण सूर्य्यकी गतिको देशान्तर प्राप्ति रूपी कारणसे अनुमानके सहारे अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार दृश्यमान पदार्थोंका असत्व और अदृश्यमान वस्तुओंको अस्तित्व सिद्ध हुआ करती है। जैसे दूरदेशवर्त्ती सूर्य्यकी गतिका अनुमान किया जाता है, वैसेही अत्यन्त धीर लोग दूरस्थित ज्ञानसे मालूम होने योग्य ज्ञेय आत्माको बुद्धि, रूपी दीपकके सहारे देखते हैं, और उसे निकटवर्त्ती करनेमें प्रवृत्तिके वशमें हुआ करते हैं। बिना उपाय किये कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता, जैसे जलजन्तुजीवी मछुवाहे शनके सूतसे बने हुए जालके जरिये मछलियोंको बांधते हैं, स्वजातीय हरिनके सहारे हरिनोंको, पक्षीसे पक्षियों और हाथीसे हाथी पकड़े जाते हैं, वैसे ही ज्ञानसे ज्ञेय आत्माको जाना जासकता है। मैंने सुना है, कि सांपही सांपका पांव देखता है, वैसेही स्थूल देहके बीच लिङ्ग शरीरमें रहनेवाले ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारेही देखा जाता है। जैसे इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रियोंको जाननेके लिये कोई भी उत्साह नहीं करता, वैसे ही चरम बुद्धिवृत्ति शुद्ध बोध आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होती। जैसे अमावस्यामें सूर्य्यके सहवासके कारण उपाधिरहित चन्द्रमण्डल नहीं दीखता, परन्तु दृष्टगोचर न होनेसे जैसे चन्द्रमाके नाशकी सम्भावना नहीं है, शरीरधारी जीवको भी वैसाही जानो। जैसे अमावस्यामें क्षीण आवरण चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होता वैसेही मुक्ति विमुक्तिजीवोंकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे पूर्णमासीको फिर चन्द्रमाका प्रकाश होता है, वैसेही जीव शरीरान्तरमें जाके फिर प्रकाशमान हुआ करता है। चन्द्रमण्डलकी तरह जन्म वृद्धि और क्षय, जो कि प्रत्यक्ष प्राप्त होती है, वह शरीरकाही धर्म्म है, जीवका नहीं। उत्पत्ति, वृद्धि और अवस्थाके परिमाणके अनुसार शरीरका भेद होनेपर भी "वह पुरुष यही है," इसी प्रकार जैसे शरीरके ऐक्य विषयमें प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती है, वैसे ही अमावस्यामें अदृश्य चन्द्रमाही फिर मूर्त्तिमान् हुआ, "वही चन्द्रमा प्रकाशित होरहा है"— ऐसा ही ज्ञान हुआ करता है; इसलिये बाल्य आदि अवस्थान्तर प्राप्ति निबन्धनसे देहान्तर प्राप्त होनेपर भी शरीर चन्द्रमाकी भांति एक

ही है। जैसे देखा जाता है, कि अन्धकार चन्द्रमण्डलको स्पर्श करने वा परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, जीव भी वैसाही है; शरीर और जीवका परस्पर सम्बन्ध न मालूम होनेपर तीनों कालोंमें भी उसका सम्भव नहीं है। शरीरके साथ आत्मा का सम्बन्ध रहनेसे ही वह प्रकाशित है। चन्द्रमा और सूर्य्यके सहित जैसे संयोगके कारण राहुको जाना जाता है, वैसे ही जड़ शरीरके साथ संयुक्त होनेसे चैतन्य स्वरूप आत्माको शरीर कहके मालूम किया जाता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यके सम्पर्कसे रहित होनेसे राहु मालूम नहीं होता, वैसेही शरीरसे रहित होनेपर जीवकी उपलब्धि नहीं की जासकती। जैसे चन्द्रमा अमावस्या तिथिमें गमन करनेसे नक्षत्रोंके सहित संयुक्त होता है, वैसेही शरीरसे छुटा हुआ जीव कर्म्मफल-भूत शरीरान्तरमें संयुक्त हुआ करता है; देहके अभावसे आत्माका अभाव नहीं होता, वह शरीरान्तर अवलम्बन किया करता है।

२०३ अध्याय समाप्त।

---

मनु बोले, शरीरके सहित आत्माका सम्बन्ध अपरिहार्य्य है, इसे सुनकर मुमुक्षु पुरुषोंके अन्तःकरणमें उद्वेगका सञ्चार हो सकता है; इसलिये उसके निवृत्तिसाधन योगका विषय कहता हूं सुनो। स्वप्नावस्थामें जैसे इन्द्रियोंके सहित इस स्थूल शरीरके निद्रित होनेपर चेतन मात्र विचरण किया करता है, उस ही प्रकार सुषुप्तिकालमें इन्द्रिय संयुक्त करके ज्ञान मात्र निवास करता है, यही संसार और मोक्षका निदर्शन अर्थात् जैसे सुषुप्तिकालमें इन्द्रियोंके सहित लिङ्ग शरीरके निद्रित होनेपर भी केवल ज्ञान स्थिति करता है, मोक्ष अवस्थामें भी वैसे ही ज्ञान मात्र स्थिति किया करता है। जैसे निर्म्मल जलमें नेत्रके सहारे रूप दीखता है, वैसेही इन्द्रियोंके प्रसन्न होने पर ज्ञेय आत्माको ज्ञानके सहारे देखा जाता है, अर्थात् इन्द्रियोंको जय करनेसे आत्मज्ञान उत्पन्न होनेपर मनुष्य उसहीके जरिये विमुक्त होसकता है। जलके चञ्चल होनेसे जैसे उसमें रूप दर्शन सम्भव नहीं होता, वैसेही इन्द्रियोंको विनाशमें किये बुद्धिसे ज्ञेय आत्मा नहीं जानी जाती अज्ञानसे अविद्या उत्पन्न होती है, अविद्यासे मन, राग आदि विषयोंमें आक्रान्त होता है, मनके दूषित होनेपर मन प्रधान कान आदि पांचो इन्द्रियें भी दूषित हुआ करती हैं; विषयोंमें अत्यन्त मग्न मोहपूरित मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता, जीव धर्म्म अधर्म्मके सहित शब्द आदि विषयभोगके निमित्त मरके फिर जन्म लेता इस लोकमें पापके हैं। कारण पुरुषोंकी तृष्णा नष्ट नहीं होती, जब पाप नष्ट होता है, तभी तृष्णा निवृत्त हुआ करती है। विषयोंके संसर्गसे नित्यत्वके संशय निबन्धन मनके सहारे सुख दुःख साधन दोनों उपायोंकी विपरीतताके कारण मनुष्य परम पदार्थ नहीं प्राप्त कर सकता। पाप कर्म्मोंके नष्ट होनेसे मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है, तब मनुष्य निर्म्मल दर्पण जलकी भांति आत्मासे ही आत्माका दर्शन करता है; इन्द्रियोंके विषयोंमें अनुगत होनेसे मनुष्य उसहीके जरिये दुःखभागी होता है और निग्रहीत इन्द्रियोंसे सुखी हुआ करता हैं; इसलिये इन्द्रियोंके विषयोंसे आप ही अपनेको नियमित करे अर्थात् इन्द्रियोंको संयम करके आत्माको निग्रहीत करना उचित है।

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे जीव और जीवसे परमात्मा परमश्रेष्ठ है। शुद्ध चिन्मात्र अव्यक्तसे ज्ञान प्रकट होता है, ज्ञानसे बुद्धि और बुद्धिसे मन उत्पन्न हुआ करता है। वह मन श्रोत्रादि इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर शब्द आदि विषयोंको भली भांति अनु-

भव करता है। जो लोग उन शब्दादि विषयों और हृदयाकाशमें भासमान शब्द आदिके आश्रयभूत आकाशादिको परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं, और प्रकृतिसे समुत्थित ग्रामकी भांति अन्तःकरण पथिकके आश्रय स्थान स्थल, सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करते हैं, वेही केवल सुखभोग कर सकते हैं।

जैसे सूर्य उदय होनेके समय किरणमाला उत्पन्न करता है और अस्त होनेके समय उन सब किरणोंको अपनेमें ही संहार करता है। वैसे ही अन्तरात्मा शरीरमें प्रकट होके इन्द्रिय रूपी किरणोंके जरिये पञ्च इन्द्रियोंके भोग्य विषय रूप आदिको भोग करते हुए अस्तरूपी स्वरूपमें निवास किया करता है। जीव अपने किये हुए कर्म्मोंसे नीयमान होकर बार बार शरीर धारण किया करता है; प्रारब्ध कर्म्मोंके फलको भोगनेके लिये प्रवृत्ति प्रधान पुण्य और पापकर्म्मोंका फल प्राप्त होता है। विषय भोगसे रहित जीवका विषयाभिलाष विशेष रूपसे निवृत्त होता है, परन्तु उसकी वासनाका रस निवृत्त नहीं होता, जिन्होंने परमात्माका दर्शन करके समस्त कामनाका फल पाया है। उनकी ही वासना चय हुआ करती है।

जब बुद्धि विषयासक्तिसे रहित होकर मन प्रधान "त्वं" पदार्थमें अर्थात् "अस्मिता" मात्रमें निवास करती है, तब मन भी ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मत्व लाभ किया करता है। जो स्पर्श इन्द्रियसे रहित होनेसे स्पर्शन क्रियाका आश्रय नहीं है, श्रवणेन्द्रियसे हीन होनेसे श्रवण आदि क्रियासे रहित है; नेत्रेन्द्रियसे रहित होनेसे दर्शन क्रियाका अनाश्रय है, घ्राणेन्द्रियसे रहित होनेसे आघ्राणका आश्रय नहीं है और जो अनुमानसे अगम्य है, उसही परमात्मामें बुद्धि प्रवेश किया करती है। मनके सङ्कल्पजनित घटपट आदि सब वाह्यवस्तु मनमें निमग्न होती हैं, मन बुद्धिमें लीन हुआ करता है, बुद्धि चैतन्यस्वरूप जीवमें लयको प्राप्त करती है और जीव परब्रह्ममें मिलित होजाता है। इन्द्रियोंके जरिये मनकी सिद्धिलाभ नहीं होती मन बुद्धिको नहीं जान सकता, बुद्धि व्यक्त जीवको जाननेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु सूक्ष्मस्वरूप चिदात्मा इन सबकोही देखता है।

२०४ अध्याय समाप्त।

---

मनु बोले, शरीरिक वा मानसिक जिन दुःखरूपी विघ्नोंके उपस्थित होनेपर योगसाधनमें यत्न नहीं किया जा सकता, वैसे दुःखविषयक चिन्ता न करे अर्थात् चिन्ता न करके ही वैसे दुःखोंको त्यागना उचित है; ऐसे दुःखोंकी चिन्ता न करनी ही उसके विनाशका महौषध है; दुःखकी चिन्ता करते रहनेसेही वह आधि उपस्थित होता है और उपस्थित होनेपर बार बार बढ़ता रहता है। बुद्धिसे मानसिक और औषधोंसे शरीरिक दुःखोंका नाश करे; विज्ञानकी सामर्थ यही है—कि दुःख शान्ति किया करता है; इसलिये इसे जानके कोई बालकके समान व्यवहार न करे। रूप, यौवन, जीवन, द्रव्य सञ्चय आरोग्यता और प्रिय सहवास, ये सब ही अनित्य हैं; इससे पण्डित पुरुष उन विषयोंकी आकांक्षा न करें। सब जनपदवासी साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, उसके लिये इकबारगी शोक करना उचित नहीं है; यदि प्रतिकारका उपाय दिखा जाय, तो दुःखके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारमें प्रवृत्त होना उचित है। जीवित अवस्थामें सुखसे अधिक निःसन्देह दुःखही उपस्थित होता है। इन्द्रियोंके निमित्त सुख भोगमें अनुरक्त मनुष्योंको छोड़के कारण मरना अप्रिय बोध होता है। जो मनुष्य सुख दुःख दोनोंको त्यागता है, वह परब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्त्ती होता है। जिन सब पण्डितोंने परब्रह्मकी समीपता लाभ

की है, वे कभी शोक नहीं करते। सब अर्थ दुःख यौग कर देते हैं, अर्थ पालनसे भी सुख-सम्पत्ति नहीं होती बहुत दुःखसे अर्थ प्राप्त हुआ करता है, तौभी मनुष्य अर्थनाशकी चिन्ता नहीं करता। ज्ञानस्वरूप परब्रह्म अहङ्कार आदि घटपट पर्य्यन्त बाह्य वस्तुके सहित अभेद-रूपसे अविद्याके सहारे अभिहित होता है; इस लिये कनकका धर्म्म कटकको भांति है, मनको ज्ञानका धर्म्म जानना चाहिये वह मन जब ज्ञानेन्द्रियके सहित संयुक्त होता है, तब विषया-कार बुद्धि वृत्तिरूपसे प्रकाशित हुआ करती है जबतक बुद्धि कर्म्मकेनिमित्त सन्स्कारके सहित सम्मिलित होकर जननात्मक चित्त वृत्तिमें निवास करती है, तबतक ध्येयाकार प्रत्यय सन्तति युक्त समाधिके सहारे परब्रह्मको जान-नेमें समर्थ होती है।

पहाड़के शिखरसे जल निकलनेकी तरह ये इन्द्रियादि युक्त बुद्धि अज्ञानसे प्रकट होके रूप आदि विषयोंमें वर्त्तमान रहती हैं; और अज्ञान नाश होनेके समय अज्ञानके कारण ध्यानसे निर्गुण परमात्माके निकटवर्त्ती होती है, उस समय कसौटी स्थित सुवर्णकी रेखाके समान बुद्धि ब्रह्मको विशेषरूपसे जान सकती है। मन इन्द्रियोंके विषय रूप आदिका प्रद-र्शक होकर पहले अखण्ड प्रकाशके जरिये तिरोभूत होता है, अन्तमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा न करके रूप आदिसे रहित निर्गुण ईश्वरका प्रदर्शक हुआ करता है। जीव सब इन्द्रिय द्वारोंको विधानपूर्व्वक सङ्कल्प मात्र मनमें निवास करता है, फिर सङ्कल्पकोभी बुद्धिमें लीन करके एकाग्रताके सहारे परब्रह्मको पाता है। जैसे अपञ्चीकृत भूत संज्ञक शब्दतन्मात्र आदिके सुषुप्ति कालमें क्षय होनेपर पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत विनष्ट होते हैं वैसे ही अहङ्कारमें फंसी हुई बुद्धि निज कार्य्य इन्द्रियोंको ग्रहण करके मनमें लय होती है, वह अहङ्कार चारिणी बुद्धि निश्चयात्मिका होकर जब मनमें निवास करती है, तब वह लवणोदक या मधुर जलकी भांति अथवा रूपान्तर प्राप्त कुण्डलके स्वर्णाल सदृश मनही हुआ करता है।

ध्यानके जरिये सर्व्व उत्कर्षशाली अहङ्कारा-त्मक मन जब रूप आदि विशिष्ट विषयोंके सहित सत्वादिगुण युक्त होता है, तब सर्व्व-गुणा-त्मक अव्यक्तको अवलम्बन करके निर्गुण पर-ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु न सत् है, न असत् है; इसलिये उसके विज्ञान विषयमें प्रकृत प्रमाण नहीं है। जिसे वचनसे भी नहीं कहा जा सकता। कौन पुरुष वैसे विषयको प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। इससे आलोचनासे ध्यान जनित साक्षात्कार, मनन नामक बुद्धिका अनु-सन्धान, शम, दम आदि गुणागुण, जातिके अनु-सार स्वधर्म्म प्रतिपालन और वेदान्त वाक्य सुननेसे शुद्ध अन्तःकरणके जरिये परब्रह्मको जाननेकी इच्छा करे। परमात्मा गुण रहित है, इसलिये उसके प्राप्तिके उपायको भी बाह्यमें गुणहीन भावसे अनुसरण करे; वह स्वाभाविक निर्गुण है, इससे वह तर्कके जरिये नहीं जाना जाता। काष्ठमें स्थित अग्निकी भांति विषयोंमें गमन करनेवाली बुद्धिके विषयहीन होनेपर परब्रह्मकी प्राप्ति होती है, विषययुक्त होनेसे ब्रह्मके सन्निधानसे निवृत्ति लाभ किया करती है। जैसे सुषुप्ति कालमें इन्द्रियां निज निज कर्म्मोंसे रहित हुआ करती हैं, वैसेही परमा-त्माप्रकृतिसे अत्यन्त विमुक्त होरहा है।

इसी प्रकार प्रकृतिसे चिदाभास संज्ञक सब जीव कर्म्म फलके अनुसार उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, कालक्रमसे अज्ञानकी निवृत्ति होने-पर वे स्वर्गमें गमन करते हैं। जीव, प्रकृति, बुद्धि, सब विषय, इन्द्रियां, अहङ्कार और अभि-मान, इन सबका अवश्य विनाश होता है, इसीसे इनकी भूत संज्ञा हुई है। अप्राकृत अव्यक्तसे पहिले इन भूतोंकी सृष्टि हुआ करती है,

अनन्तर बीजांकुर-न्यायके अनुसार पञ्चमहाभूत रूप विशेष पदार्थ पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और अहङ्कार प्रकृतिके जरिये अभिव्यक्त होते हैं। धर्मसे उत्तम कल्याण और अधर्मसे अकल्याण हुआ करता है; रागवान् पुरुष लयके समय प्रकृतिको प्राप्त होते और विरक्त मनुष्य ज्ञानवान् होके विमुक्त होते हैं।

२०५ अध्याय समाप्त।

---

मनु बोले, जिस समय पञ्च इन्द्रिय शब्द आदि विषयों और मनके सहित संयुक्त होकर निग्रहीत होती हैं, तब धागेमें पड़ी हुई मनियोंकी तरह ब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ करती हैं। जैसे सूत सुवर्ण मालाके बीच वर्त्तमान रहता है, वैसे ही मुक्ता, प्रवाल, मृण्मय और रजतमय मालामें भी उपस्थित है; इसी दृष्टान्तके अनुसार जीव निज कर्म्म फल द्वारा गऊ, घोड़े, मनुष्य, हाथी, मृग, कीट और पतङ्ग आदिमें आसक्त हुआ करता है। जीव जिन जिन शरीरोंसे जो जो यज्ञ आदि कर्म्म करता है, उसही शरीरसे उन कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। जैसे एक रसा-भूमि सब औषधियोंकी प्रयोजन-अनुसारिणी होती है, वैसे ही कर्म्मानुगामिनी बुद्धि अन्तरात्माको दर्शन करती है। बुद्धिपूर्व्वक लिप्सा होती है, लिप्सा होनेसे अभिसन्धि उत्पन्न होती है, अभिसन्धि पूर्व्वक कर्म्म और कर्म्ममूलक फल हुआ करते हैं; इसलिये फलको कर्म्मात्मक, कर्म्मको ज्ञेयात्मक, ज्ञेय वस्तुको ज्ञानात्मक और ज्ञानको चित् और जड़ रूपसे सदसदात्मक जाने। चित् और जड़ ग्रन्थिरूप फल, बुद्धि रूप ज्ञेय और सञ्चित कर्म्मोंके नष्ट होने पर जो फल हुआ करता है, वही दिव्य फल और ज्ञेय वस्तुमें प्रतिष्ठित ज्ञान स्वरूप है। योगी लोग जिसे देखते हैं, वह नित्य सिद्ध महत्तत्त्वही परम श्रेष्ठ है, विषयासक्त बुद्धिवाले मूर्ख मनुष्य उस बुद्धिस्थ महत् पदार्थको देखनेमें समर्थ नहीं होते।

पृथ्वीके रूपसे जलका रूप बड़ा है, जलसे अग्नि महत् है, अग्निसे पवन महान् है, पवनसे आकाश बृहत् है, मन उससे भी श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि बड़ी है, बुद्धिसे काल महान् हुआ करता है, कालसे वह भगवान विष्णु बड़े हैं; यह समस्त जगत् जिसने बनाया है। उस देवका आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं है। वह भगवान् अनादि, मध्यहीन और अनन्त हैं। इसही कारण वह अव्यय अर्थात् अपचय रहित हैं, उन्होंने सब दुःखोंको अतिक्रम किया है। दुःखही ज्ञातृज्ञेय विभागवत्-अन्तयुक्त कहके वर्णित हुआ है। जो हो, वह भगवान परब्रह्म कहके वर्णित हुए हैं, उनका आश्रयही परम पद है; इसे जानकर अनित्य दुःखमय कालके विषयसे विमुक्त पुरुष मुक्ति अवलम्बन किया करते हैं। ये सब शुद्ध चिदात्म स्वरूप पुरुष प्रमाण प्रमेय व्यवहार, रूप और सब गुणोंमें प्रकाश लाभ करते हैं; परब्रह्म निर्गुणत्व निवन्धन प्रागुक्त गुणोंसे परम श्रेष्ठ है; शम, दम, उपरमादि रूप निवृत्ति लक्षण निर्व्विकल्पक धर्म्म मालूम होनेपर मोक्ष हुआ करती है। ऋक्, यजु और समस्त सामवेद लिङ्ग शरीरको आश्रय करके जिह्वाग्रमें वर्त्तमान रहते हैं, ये यत्न साध्य होके भी विनाशी होते हैं; परन्तु ब्रह्म शरीर अवलम्बन करके उत्पन्न होनेपरभी यत्नसाध्य नहीं है; क्योंकि उसका आदि मध्य और अन्त नहीं है। ऋक्, यजु और साम आदि सबकी आदि कही हुई है और जिनकी आदि है, उनका अन्तभी देखा जाता है, परन्तु ब्रह्मकी आदि किसीने भी स्मरण नहीं की है। ब्रह्मका आदि अन्त नहीं है, इसीसे वह अव्यय और अनन्त हैं; अव्यय होनेसेही उसमें दुःख नहीं है, और दुःख न रहनेसेही उसे मान

अपमान आदि कुछ भी नहीं है। जिस मार्गसे परब्रह्मके समीप गमन किया जा सकता है। मनुष्य लोग अदृष्ट, अनुपाय और कर्म्मके प्रतिबन्धन निबन्धनसे उस मार्गको देखनेमें समर्थ नहीं होते। विषयोंके सन्सर्ग और योगस्थल स्थित योगीके सङ्कल्प मात्रसे उपस्थित पदार्थोंके दर्शन निबन्धनसे अविरक्त योगी मनही मन जो ऐश्वर्य्य सुखका अभिलाष करते हुए परब्रह्मका दर्शन नहीं कर सकता। दूसरे लोग विषय दर्शन करनेसे ही उसे उपभोग करनेकी अभिलाषा करते हैं; इसलिये विषयाभिलाषी लोग परब्रह्मको निर्व्विषय कहके उसे जाननेकी इच्छा नहीं करते। जो पुरुष मूढ़ताके कारण वाह्य विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह योगियोंको प्राप्त होने योग्य विषयको कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धुएंके जरिये अग्निका अनुमान करनेकी तरह सत्य कामत्व आदि आन्तरिक गुणोंके सहारे अनुमानसे परब्रह्मको जानना योग्य है, हम लोग ध्यान निर्म्मल शुद्ध-बुद्धिके जरिये परब्रह्मको जान सकते हैं, परन्तु बचनसे उसे कहनेमें समर्थ नहीं होते; क्योंकि उपादान इन्धके अभेदके कारण विषयाकारसे परिणत दर्शनका दर्शनसे ज्ञान उत्पन्न होता है ब्रह्माकार चित्तवृत्ति रूप ज्ञानके जरिये शरीर आदिमें आत्मभ्रमके निमित्त कलुषित बुद्धिको निर्म्मल अर्थात् सब संशयोंसे रहित करके बुद्धिके जरिये मन और मनके सहारे इन्द्रियोंको निर्म्मल करके चयरहित चैतन्यमात्र परब्रह्मका दर्शन प्राप्त हुआ करता है। ध्यान परिपाक समुत्थित बुद्धिहीन मनुष्य विचारात्मक मनके सहारे समुद्र अर्थात् श्रवण मनन विशिष्ट अप्राप्त प्रार्थनारहित निर्गुण आत्माको प्राप्त होते और जैसे वायु काष्ठान्तर्गत अग्निको उद्दीपित न करके उसे परित्याग करता है, वैसेही अप्राप्त प्रार्थनाके जरिये व्याकुलचित्त मनुष्य लोग आत्माको जाननेमें असमर्थ होकर उसे परित्याग करते हैं। सब विषयोंके आत्मामें लीन होनेपर मन बुद्धिसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मको जाननेमें समर्थ हो जाता है; और पृथक् रूपसे सब विषयोंका ज्ञान होनेपर मन सब समयमें ही बुद्धि कल्पित ब्रह्मलोक पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य प्राप्तिका निमित्त हुआ करता है। इसलिये आत्मामें सब विषयोंके प्रविलापन विधानसे जो लोग प्रवृत्त होते हैं, वे सब विषयोंके नष्ट होनेसे ब्रह्म शरीरमें लीन होते हैं। मन बचनसे अगोचर अव्यक्त पुरुष निर्लिप्त होकर भी देहादि उपाधि सम्बन्ध निबन्धन कर्म्म समवायीकी भांति दीखता है, फिर अन्त समयमें वह अव्यक्तत्व प्राप्त हुआ करता है। यह आत्मा बुद्धिशील ग्लानियुक्त प्रसिद्ध इन्द्रियोंके सहित असंसृष्ट रहके संस्वष्टकी तरह स्वशरीरमें निवास करता है, यह चिदाभास सब इन्द्रियोंके सहित संयुक्त तथा लिङ्ग शरीर पाके स्थूल देहाकारसे परिणत पञ्च भूतोंका आश्रय करता है; परन्तु विश्वभूत अव्यय अन्तर्य्यामीके सम्पर्कसे हीन होनेपर असमर्थके कारण गमन आदि कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं होता। मनुष्य इस पृथ्वीका अन्त देखनेमें समर्थ नहीं होते, परन्तु यह जाना जाता है। कि इसका अन्त अवश्य ही है। जैसे समुद्रकी नौका वायुके सहारे इधर उधर डगमगाकर वायुके जरिये ही किनारे लगती है; वैसे ही कर्म्मके जरिये उह्यमान संसार सागरमें जीवको सब कर्म्म ही चित्त शुद्धि आदि उपायके सहारे परम पारमें उतार देते हैं। जैसे सूर्य्य किरणोंके जरिये जगत् व्याप्तित्व गुण प्राप्त करके अन्त समयमें किरणमण्डलके नष्ट होनेपर निर्गुण होता है, वैसे ही जीव इस लोकमें मननशील और सुख दुःखमें निर्व्विशेष होकर गुणरहित अव्यय ब्रह्ममें प्रवेश करता है। मनुष्य संसार मण्डलमें पुनरावृत्ति रहित, सुकृतशालियोंकी परमगति, जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारण, अवि-

नाशी, आदि मध्य और अन्त रहित, अपरिणामी विचलन विवर्ज्जित स्वयम्भू परब्रह्मका दर्शन करके परम मोक्ष पाता है।

२०६ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ महा प्राज्ञ पितामह! आकाश आदि पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण कार्य्य मात्रके कर्त्ता, उत्पत्ति रहित, सर्व्वव्यापी, देह धर्म्म जरा आदिसे अपराजित, पृथ्वी पालक, इन्द्रिय विजयी, समुद्रके जलमें शयन करनेवाले पुण्डरीक लोचन केशवका स्वरूप मैं प्रकृत रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! जमदग्नि-पुत्र राम, महर्षि नारद और कृष्णद्वैपायनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। असित, देवल, महातपस्वी बाल्मीकि और मार्कण्डेय मुनि श्रीकृष्णके विषयमें उत्तम, महत् और अद्भुत कथा कहा करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! षड़ैश्वर्य्य पूर्ण सर्व्वव्यापी केशव ही अन्तर्य्यामी रूपसे सबके नियन्ता हैं, वह विभुही सर्व्वमय पुरुष हैं, यह अनेक प्रकारसे सुना जाता है; परन्तु लोकके बीच ब्राह्मण लोग महात्मा माधवके जिन सब कार्य्योंको जानते हैं, वह अनन्त होने पर भी उसमेंसे कुछ महात्म्य कहता हूं सुनो। हे राजन्! पुराण जाननेवाले पुरुष गोविन्दके जिन सब कर्म्मोंको कहा करते हैं, इस समय मैं उसेही कहूंगा। सर्व्वभूतमय महात्मा पुरुषोत्तमने वायु, अग्नि, जल, आकाश और पृथ्वी इन पञ्च महाभूतोंकी सृष्टि की है। उस सर्व्वभूतेश्वर महानुभाव प्रभु पुरुषोत्तमने पृथ्वीकी सृष्टि करके जलके बीच शयन किया था। मैंने सुना है, सर्व्वतेजोमय पुरुषोत्तमने जलके बीच शयन करके सब जीवोंके आश्रय तथा सर्व्वभूतोंके अग्रज अहंकारको मनके सहित उत्पन्न किया; वह अहंकार ही सर्व्वभूतों तथा भूत भविष्यत् दोनोंकोही धारण कर रहा है।

हे महाबाहो! अनन्तर उस महानुभाव अहंकारके प्रकट होनेपर भगवान्‌की नाभीसे सूर्य्यके समान एक दिव्य पद्म उत्पन्न हुआ। हे तात! सब लोकोंके पितामह भगवान ब्रह्मा सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसही कमलसे उत्पन्न हुए। हे महाबाहो! उस महात्मा ब्रह्माके उत्पन्न होने पर तमोगुणसे प्रथम कार्य्यभूत योग-विघातक मधु नाम महा-असुरने जन्म लिया, वह प्रचण्डमूर्त्ति और उग्र-कर्म्म करनेवाला महा असुर ब्रह्माको मारनेके वास्ते उद्यत हुआ, तब चिदात्मा पुरुषोत्तमने ब्रह्माकी उन्नति साधन करते हुए उस दानवका बध किया। उस असुरके बध करनेके कारण उसही समयसे सब देवता, दानव, और मनुष्य लोग योगियोंमें श्रेष्ठ भगवानको "मधुसूदन" कहा करते हैं। अनन्तर ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष, इन सात मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे तात! अग्रज मरीचिने कश्यप नाम ज्येष्ठ मानस पुत्र उत्पन्न किया। हे भारत! ब्रह्माने अंगूठेसे मरीचि नामक जिस जेठे पुत्रको उत्पन्न किया था, उनसे भी जो अधिक तेजस्वी और ब्रह्मवित् हुए, उन्हींका नाम दक्ष प्रजापति हुआ। हे भारत! उन दक्ष प्रजापतिके पहिले तेरह कन्या उत्पन्न हुईं, उनके बीच दिति सबसे जेठी है। सब धर्म्मोंको विशेष रूपसे जाननेवाले पवित्र कीर्त्ति महा यशस्वी मरीचि-पुत्र कश्यप उन सबकोही स्वामी हुए। महाभाग धर्म्मज्ञ दक्ष प्रजापतिने उक्त कन्याओंके अतिरिक्त और दश कन्या उत्पन्न करके धर्म्मको प्रदान की। हे भारत! वसुगण, अत्यन्त तेजस्वी रुद्र-गण, विश्वदेव, साध्य और मरुद्गण धर्म्मके पुत्र हैं। प्रजापति दक्षके उक्त तेईस कन्याओंके अतिरिक्त और सत्ताईस कन्या उत्पन्न हुईं;

महाभाग चन्द्रमाने उन सबकाही पाणिग्रहण किया। कश्यपकी दूसरी स्त्रियोंने गन्धर्व्व तुरग, पशु, पची, किम्पुरुष, मत्स्य, उद्भिज्ज और वनस्पतियोंको प्रसव किया अदितिसे महाभाग देवताओंने जन्म ग्रहण किया, भगवान् बिष्णु वामन रूपधारण करके उन लोगोंके नियन्ता हुए। उनके विक्रमके प्रभावसे देवताओंको श्रीवृद्धि और दितिपुत्र असुर तथा दनुनन्दन दानवोंकी पराजय हुई थी। दनुने बिप्रचित्ति आदि दानवोंको उत्पन्न किया; दितिसे महाबलवान असुरोंने जन्म ग्रहण किया। मधुसूदन विष्णुने ऋतुके अनुसार दिन रात्रिका बिभाग, पूर्व्वान्ह और अपरान्ह आदि उत्पन्न किया, उन्होंने आलोचना करके बादल और स्थावर जङ्गम जीवोंसे युक्त अखण्ड भूमण्डलकी सृष्टि की। हे भरत-श्रेष्ठ युधिष्ठिर! अनन्तर महाभाग प्रभु मधुसूदनने फिर मुखसे अनगिनत ब्राह्मण, भुजासे असंख्य चत्रिय, ऊरुसे सैकड़ों वैश्य और दोनों पावोंसे बहुतसे शूद्र जाति उत्पन्न की। वह महा तपस्वी भगवान् इसी प्रकार चारों वर्णोंको स्वयं उत्पन्न करके विधाताको सर्व्वभूतोंके अध्यच पदपर अभिषिक्त किया। उन्होंनेही वेदविद्या बिधाता अमित तेजस्वी ब्रह्माको और सब भूतों तथा मातृगणोंके अध्यच बिरूपाचको उत्पन्न किया था। सर्व्व भूतात्मा मधुसूदनने पापात्मा पुरुषोंके शासन करनेवाले प्रेतराजको, निधिरचाके लिये कुवेरको और जलजन्तुओंके स्वामी वरुणको उत्पन्न किया तथा इन्द्रको सब देवताओंके अध्यच पदपर नियुक्त किया। मनुष्योंको देहधारणके निमित्त जिन्हें जैसी अभिलाष थी; वे उस ही प्रकार जीवित रहते थे; उन लोगोंको यमका भय नहीं था।

हे भरतश्रेष्ठ! उस समय उन लोगोंमें मैथुन धर्म्म नहीं था, संकल्पसेही सन्तान उत्पन्न होती थी। हे प्रजा नाथ! अनन्तर त्रेतायुगमें स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्शसे सन्तान उत्पन्न होते थे, उन लोगोंमें भी मैथुन धर्म्म नहीं था। हे राजन्! फिर द्वापरयुगमें प्रजाके बीच मैथुनधर्म्म प्रवृत्त हुआ और कलियुगमें मनुष्य द्वन्द्वरूपसे मिलित हुए हैं। हे तात नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र! यह भगवान् ही भूतपति और सर्व्वाध्यच रूपसे वर्णित हुए हैं। जो लोग गृह न बनाकर उदासीन भावसे निवास करते थे, अब उनका विषय कहता हूं सुनो। दचिण पथमें उत्पन्न हुए समस्त अन्ध्रक, गुह उपाधिधारी चाण्डाल-जाति विशेष, पुलिन्द, शवर, चुचुक और मद्रकजातिके लोग पहिले उदासीनभावसे निवास करते थे। दूसरे जो लोग उत्तरओर उत्पन्न हुए थे, उनका भी विषय कहता हूं सुनो। यवन, काम्बोज, गान्धार, किरात और वर्व्वर जाति, ये सब पापाचारी होकर इस पृथ्वीपर भ्रमण किया करते हैं। हे नरनाथ! इन लोगोंके धर्म्म चाण्डाल, कौए और गिद्धोंके समान हैं। हे तात भरतश्रेष्ठ! ये लोग सत्ययुगमें इस भूमण्डलपर बिचरण नहीं करते थे, त्रेतायुगसे ये लोग वृद्धिशील हुए हैं। अनन्तर त्रेता और द्वापर युगके महाघोर सन्धिकाल उपस्थित होनेपर राजा लोग परस्पर मिलित होकर युद्ध विग्रहमें अत्यन्त आसक्त हुए थे। हे कुरुवर! महात्मा विष्णु नित्यसिद्ध होनेपर भी इस ही प्रकार उत्पन्न हुए थे। सर्व्व-लोकदर्शी देवर्षि नारदने भगवान् विष्णुके विषयमें इस ही प्रकार कहा है। हे भरतश्रेष्ठ महाबाहु नरनाथ! महर्षि नारदने भी श्रीकृष्णके परम नित्यत्वको माना है। यह महाबाहु सत्यविक्रम पुण्डरीकाच केशव इस ही प्रकार अचिन्तनीय हैं; ये साधारण मनुष्य नहीं हैं।

२०७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पहिले कौन कौनसे प्रजापति थे, और कौन कौनसे महा-

भाग प्रत्येक ऋषि किन किन दिशाओंमें वास करते थे।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! इस लोकमें जो लोग प्रजापति थे और जो सब ऋषि जिन दिशाओंमें वास करते थे, यह विषय जो कि तुम मुझसे पूछते हो, उसे सुनो। एक मात्र आदि पुरुष भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भू और सनातन हैं; उन महात्मा स्वयम्भु ब्रह्माके सात पुत्र हुए, उनका नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और स्वयम्भूके समान महाभाग वशिष्ट, ये सातो प्रजापति कहके पुराणमें वर्णित हुए हैं। इनके अनन्तर जो सब प्रजापति थे, उनका विषय कहता हूं। अत्रिवंशमें सनातन ब्रह्मयोनि भगवान् प्राचीनवर्हि उत्पन्न हुए थे, उनसे दश प्रचेता उत्पन्न हुए; दक्ष नाम प्रजापति उन दशोंके एक मात्र पुत्र हैं, लोकके बीच उनका दक्ष और कश्यप यह दो नाम कहे गये हैं। मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, उनका दो नाम है, कोई कोई उन्हें अरिष्टनेमि और कोई कश्यप कहते हैं। जिन्होंने दिनके परिमाणसे सहस्र युग पर्य्यन्त उपासना की थी, वह वीर्य्यवान श्रीमान् राजा सोम अत्रिके औरससे पुत्र हैं। भगवान् अर्य्यमा आदि जो सब कश्यपके पुत्र हैं, वे सबही जगत स्रष्टा और आत्मपयिता है। हे अच्युत! शशबिन्दुके दश हजार भार्य्या थीं, उन एक एक भार्य्यासे एक एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे; इसही प्रकार उस महात्माके एक लाख सन्तान हुई। उन्होंने उन पुत्रोंके अतिरिक्त दूसरे किसीको भी प्रजापति करनेकी इच्छा नहीं की। प्राचीन ब्राह्मण लोग प्रजा समूहको शशबिन्दवी कहा करते हैं; प्रजापतिके उस महावंशसे वृष्णिवंश उत्पन्न हुआ है। ये सब यशस्वी पुरुष प्रजापति रूपसे वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर जो सब देवता लोग त्रिभुवनके ईश्वर हैं, उनका विषय कहता हूं सुनो। भग, अंश, अर्य्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, महाबल, विवस्वान त्वष्टा; पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपके पुत्र हैं। दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दश नामसे वर्णित होते हैं, ये महात्मा अष्टम मार्त्तण्डके पुत्र हैं। पहिले वे लोग और विविध देवता लोग भी पितृगण कहके वर्णित हुए हैं। महायशस्वी श्रीमान् विश्वरूप त्वष्टाके पुत्र हैं। अज, एकपाद, अहिर्व्रध्न, विरूपाक्ष, रैवत, बहुरूप हर, सुरेश्वर, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त और अपराजित पिनाकी, ये सब महाभाग पहले अष्टवसु कहके वर्णित हुए हैं। इसी प्रकार सब देवता प्रजापति मनुके पुत्र हैं; ये लोग पहिले देवता और पितृगण, इस दो प्रकारके रूपसे निर्द्दिष्ट हुए हैं सिद्ध और साध्य, इन दोनोंके बीच एक शील निबन्धन, दूसरे यौवनके कारण ऋतुगण और मरुद्गण नामसे देवताओंके आदिगण कहके गिने गये हैं। येही विश्वदेवगण और दोनों अश्विनी तनय वर्णित हुए; उनके बीच आदित्यगण क्षत्रिय, मरुद्गण वैश्य और उग्र तपस्यामें अभिनिविष्ट दोनों अश्वनीकुमार शूद्र रूपसे स्मृत हुए हैं, और यह निश्चित है, कि अङ्गिराके पुत्र देवता लोग ब्राह्मण हैं; यही सब देवताओंके चातुर्व्वर्ण्य कहे गये। जो लोग प्रातःकालमें उठकर इन सब देवताओंका नाम लेते, वे स्वकृत वा अन्यकृत सब पापोंसे छूट जाते हैं; यवक्रीत, रैभ्य, अर्व्वावसु, परावसु, उषिज, काक्षीवान् और बल, ये कई एक अंगिराके पुत्र हैं। महर्षि कण्व और वर्हिषद मेधातिथिके पुत्र हैं। हे तात! वे लोक्यभावन सप्तर्षि लोग पूर्व्वदिशामें निवास करते हैं। उन्मूच, विमूच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय, प्रमुच, दृढ़व्रत, भगवान् इध्मवाह और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान अगस्त्य, ये सब ब्रह्मर्षि लोग सदा दक्षिण दिशामें वास किया करते हैं। उषङ्ग कवष, धौम्य, वीर्य्यवान् परिव्याध, महर्षि एकत, द्वित,

वित और अत्रिके पुत्र भगवान् निग्रहानिग्रह समर्थ सारस्वत, ये सब महात्मा पश्चिम दिशामें निवास करते हैं। आत्रेय, वसिष्ठ महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक पुत्र विश्वामित्र और महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि, ये साती ऋषि उत्तर दिशाका आश्रय कर रहे हैं। जिस दिशामें जो लोग निवास कर रहे हैं, वे सब तीग्म तेजस्वी ऋषि लोग वर्णित हुए। ये सबही जगत्की सृष्टि करनेमें समर्थ, महात्मा और साचो स्वरूप हैं, इसही प्रकार ये महात्मा लोग प्रत्येक दिशाओंका आश्रय करके स्थित हैं। मनुष्य इन लोगोंका नाम लेनेसे सब पापोंसे छूट जाते हैं ; ये लोग जिस जिस दिशामें निवास कर रहे हैं, मनुष्य उसही दिशाके शरणागत होनेसे सब पापोंसे मुक्त और स्वस्तिमान् होकर निज गृहमें लौटते हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यपराक्रमी महाप्राज्ञ पितामह ! मैं अव्यय ईश्वर श्रीकृष्णका माहात्म्य विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषप्रवर ! श्रीकृष्णका जैसा रूप महत् तेज और जिस प्रकार इनके पूर्व्वकृत कर्म्म हैं, वह सब आप प्रकृत रूपसे वर्णन करिये। हे महाबल ! भगवान्ने तिर्य्यग् योनिमें अवतार लेके किन कार्य्योंके निमित्त कैसा रूप धारण किया था, उसे भी आप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें मैंने मृगयाके निमित्त यात्रा करके मारकण्डेय मुनिके आश्रममें निवास किया था, वहां उपस्थित होके सहस्रों मुनियोंको बैठे हुए देखा। अनन्तर उन्होंने मधुपर्कसे मेरा अतिथिसत्कार किया ; मैंने उनके उस सत्कारको ग्रहण करके ऋषियोंको प्रणाम किया। उस ही स्थानमें महर्षि कश्यपके जरिये चित्त प्रसन्न करनेवाली यह दिव्य कथा कही गई थी; तुम एकाग्रचित्त होकर उस कथाको सुनो। पहिले समयमें क्रोध लोभसे युक्त बलदर्पित नरक आदि सैकड़ों दानवश्रेष्ठ सब महासुर और दूसरे युद्धदुर्म्मद बहुतेरे दानव लोग देवताओंकी परम समृद्धि देखकर असहिष्णु हुए थे। हे राजन् ! देवता और देवर्षि लोग दानवोंसे पीड़ित होकर इधर उधर स्थित होनेपर भी सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए। देवताओंने घोररूप महाबलवान दानवोंसे परिपूरित पृथ्वीको अत्यन्त पीड़ित देखा। पृथ्वीको उस समय भारसे अत्यन्त आक्रान्त, अप्रहृष्ट और दुःखित होकर डूबती हुई देखकर अदितिनन्दन देवता लोग अत्यन्त भयभीत होकर ब्रह्माके निकट जाके यह वचन बोले, हे ब्रह्मन् ! हम लोग दानवोंका दारुण पीड़न किस प्रकार सहेंगे ?

स्वयम्भू ब्रह्मा देवताओंका वचन सुनके उन लोगोंसे बोले, हे देवता लोगो ! मैंने इस विषयमें विधि प्रदान की है ; वरके प्रभावसे बलसे मतवाले अत्यन्त मूढ़ दानव लोग देवताओंके भी अधर्षणीय वराहरूपी भगवान् अव्यक्तदर्शन विष्णुको नहीं जानते वे सब सहस्रों महाघोर अधम दानवलोग भूमिके अन्तर्गत होकर जिस स्थानमें वास कर रहे हैं, ये वराहरूपी विष्णु वेगके प्रभावसे वहां जाके उन सब दानवोंका संहार करेंगे। देवता लोग ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके परम हर्षित हुए। अनन्तर महातेजस्वी विष्णु वराहमूर्त्ति धारण करके भूगर्भमें प्रवेश करके दितिपुत्रोंकी ओर दौड़े। कालमोहित दैत्य लोग बलपूर्व्वक सहसा इकट्ठे होकर उस अमानुषबलको देखकर स्थिरभावसे खड़े रहे। अनन्तर उन सब लोगोंने एकबारही क्रुद्ध होकर सम्मुख जाके उस वराहको धारण किया और चारों ओर खींचने लगे। हे राजन् ! महावीर्य्यबलसे उन्मत्त वे सब महाकाय दानवेन्द्रगण उस समय उसका कुछ भी न कर

सके। अन्तमें वे सब दानवेन्द्रगण भयभीत और विस्मित हुए तथा सहस्र बार अपनेको संशययुक्त समझा।

हे भरत सत्तम! अनन्तर योगसहाय योगात्मा देवोंके देव भगवान्ने योग अवलम्बन करके दैत्य दानवोंको क्षोभित करते हुए ऊंचे स्वरसे निनाद किया, उस शब्दसे सब लोक और दशों दिशा अनुनादित हुईं उस शब्दसे सब लोगोंके अन्तःकरणमें क्षोभ उत्पन्न हुआ; इन्द्र आदि देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उस शब्दसे मोहित होकर अत्यन्तही निश्चेष्ट हुआ। अनन्तर सब दानव लोग उसही शब्दसे भीत, विष्णुके तेजसे विमोहित और चेतरहित होकर गिर पड़े, वराहरूपी भगवान्ने रसातलमें जाकर भी खुरसे देवताओंके शत्रुदानवोंका मांस, मेद और अस्थियोंको विदारण किया। वह भूतराट्, भूताचार्य्य महायोगी पद्मनाभ विष्णु उस महानादसे सदा भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिये चेष्टा करते हैं, इसहीसे सनातन नामसे वर्णित हुए हैं। अनन्तर सब देवताओंने जगत्पतिसे कहा, हे देव! हे प्रभो! यह निनाद कैसा है, हम इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, यह क्या शब्द है। यह किसका शब्द है, जिससे जगत् विह्वल होरहा है। सब देवता और दानव इस शब्दके प्रभावसे मोहित होरहे हैं। हे महाबाहो! इतनेही समयमें वराहरूपधारी विष्णु महर्षियोंसे स्तुतियुक्त होकर रसातलसे उत्थित हुए, पितामह बोले, यह महाकाय, महाबल, महायोगी, भूतात्मा, भूत भावन, सर्व्वभूतेश्वर, आत्माके भी आत्मा, मननशील दानवारि कृष्णने मुख्य मुख्य दानवोंका बध करके सब विघ्नोंका नाश किया है; इससे तुम सब कोई स्थिर होजाओ। यह अपरिमित प्रभावयुक्त, महाद्युति महाभाग, महायोगी, भूतभावन, महात्मा पद्मनाभ दूसरेसे न होने योग्य साधु कार्य्य सिद्ध करके स्व-स्वभावसे समागत हुए हैं। हे सुरसत्तमगण! इसलिये तुम लोगोंको शोक सन्ताप अथवा भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। येही विधि, येही प्रभाव और यही सत् क्षयकारक काल स्वरूप हैं; इन्हीं महानुभाव भगवान्ने सब लोकोंको धारण करते हुए शब्द किया था; सब भूतोंके आदिभूत सब लोकोंके नमस्कृत वह महाबाहु पुण्डरीकाक्ष अच्युत ईश्वर यही विद्यमान हैं।

२०८ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप मेरे समीप मोक्ष-विषयके परमयोगको वर्णन करिये। हे वक्तृवर! मैं उक्त विषयक यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, गुरुके सहित शिष्यका मोक्ष-वाक्य संयुक्त जो वार्त्तालाप हुआ था प्राचीन लोग उस पुराने इतिहासका इस विषयमें प्रमाण दिया करते हैं। परम मेधावी अत्यन्त सावधान किसी शिष्यने तेजस्वी सत्यसन्ध जितेन्द्रिय ऋषिसत्तम महानुभाव सुखसे बैठे हुए किसी आचार्य्य ब्राह्मणका चरण छूके हाथ जोड़के खड़ा होकर कहा। हे भगवन्! यदि आप मेरी उपासनासे प्रसन्न हुए हों, तो मुझे जो कुछ महा संशय है, मेरे समीप उस विषयको वर्णन करना आपको उचित है। हे द्विजसत्तम! मैं किस उपादान और कौन निमित्त कारणसे उत्पन्न हुआ हूं, आप भी किस उपादान वा निमित्त कारणसे उत्पन्न हुए हैं? उस परम कारणके स्वरूपको पूर्ण रीतिसे कहिये और उपादान कारण पञ्चभूतोंके समान होने पर भी किस लिये क्षय और उदय विषम रूपसे दीख पड़ता है। वेद और लोकमें जो व्याप्य।व्यापक भावसे वर्त्तमान है, आप वह सब विषय प्रकृत रूपसे वर्णन करिये।

गुरु बोला, हे महाप्राज्ञ शिष्य ! सब विद्या और समस्त आगमोंकी जो सम्पत्ति है, जो वेदके बीच परम गुह्य भावसे वर्णित है, वह अध्यात्म विषय कहता हूं सुनो। भगवान् वासुदेव सब वेदोंके आदिभूत प्रणव हैं ; वेही सत्य, ज्ञान, यज्ञ, तितिक्षा और आर्ज्जव स्वरूप हैं। वेद जाननेवाले पण्डित लोग जिस सनातन पुरुषको विष्णु कहके जानते हैं, वही सृष्टि और प्रलयके कर्ता अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म हैं ; उसही ब्रह्मने विष्णि वंशमें अवतार लिया है, इस विषयका इतिहास मुझसे सुनो। अपरिमित तेजसे युक्त देवदेव विष्णुका महात्म्य ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंको, वैश्य वैश्योंको और महामना शूद्र शूद्रोंको सुनावें। तुम परम कल्याणकारी कृष्णके उपाख्यानको सुननेके योग्य पात्र हो, इसलिये उसे सुनो।

हे पुरुषप्रवर ! आदि और अन्तहीन जो परम श्रेष्ठ कालचक्र है, उसे ही पण्डित लोग अक्षय, अव्यय अमृत, शाश्वत ब्रह्म चैतन्य रश्मिके जरिये सर्व्वव्यापी अन्नमय आदि पञ्च पुरुषसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। उत्पत्ति और प्रलय लक्षण इस त्रैलोक्य चक्रारूढ़ पिपीलिकाकी भांति वह सर्व्वभूतेश्वरमें सब तरहसे वर्त्तमान हैं। उस परिणामरहित परम पुरुषने फिर सृष्टिके आरम्भमें महदादि कार्य्योंके लयस्थान प्रकृतिको निर्म्माण करके पितरगण, देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, पन्नग, असुर, और मनुष्योंको उत्पन्न किया है, तथा वेदशास्त्र और शाश्वत लोक धर्म्मका विधान किया है। जैसे ऋतुकालमें पर्य्यायक्रमसे अनेक प्रकार ऋतुचिन्ह दीख पड़ते हैं, अर्थात् प्रतिवर्ष वसन्तकालमें आमके वृक्ष, ग्रीष्मकालमें मल्लिका और वर्षाके समय कदम्बके वृक्ष नियमपूर्व्वक फूलते हैं, वैसे ही युगके आरम्भमें जीवसमूह अपने अपने पूर्व्वलक्षणोंको धारण किया करते हैं, आदि युगमें काल सम्पर्कके कारण जो जो प्रकाशित होता है, लोकयात्रा विधानके लिये वही ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। पूर्व्वयुगमें जो कुछ था, युगके आरम्भमें महर्षियोंने पहिले स्वयम्भूकी आज्ञानुसार तपस्याके सहारे इतिहासके सहित उन्हीं सब वेदोंको प्राप्त किया था।

वेद जाननेवाले, भगवान् ब्रह्मा देव और बृहस्पतिने सब वेदाङ्गोंको जाना था ; असुराचार्य्य भार्गवने जगत्के हितकर नीतिशास्त्र कहा, महर्षि नारदने गन्धर्व्वविद्या, भरद्वाजने धनुर्व्विद्या गर्गने देवर्षिचरित और कृष्णात्रेयने चिकित्सा-शास्त्र जाना था। ऋषियोंने परस्पर विवादमान होकर जो न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा दर्शन बनाये हैं, उनके बीच युक्ति, वेद और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ऋषियोंके जरिये जो ब्रह्मवर्णित हुआ है, उसकी ही उपासना करनी चाहिये। देवता वा ऋषि लोग उस आदि कारणसे रहित परब्रह्मको नहीं जानते थे, सर्व्व शक्तिमान जगत्‌विधाता एक मात्र नारायण ही उसे जानते थे। नारायणसे ऋषियों और मुख्य मुख्य सुरासुरों तथा प्राचीन राजर्षियोंने उस दुःखराशिके महौषध स्वरूप परब्रह्मको जाना था।

जब प्रकृति पुरुषके आलोचित महदादि कार्य्योंके प्रसवोन्मुखी होती है उसके पहिले धर्म्माधर्म्म युक्त जगत् सब तरहसे वर्त्तमान रहता है। जैसे तलवर्त्ती आदि कारणसे एक दीपकसे सहस्रों दीपक प्रज्वलित हुआ करते हैं, वैसे ही प्रकृति पूर्व्वदृष्ट युक्त महदादि कार्य्य उत्पन्न करती है। अहङ्कारसे शब्द तन्मात्र आकाश, आकाशसे वायु; वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है। ये आठो मूल प्रकृति हैं, जगत् इन सबमें ही स्थित है। पुरुषाधिष्ठित अष्टमूल प्रकृतिसे पञ्च ज्ञानइन्द्रिय पञ्चकर्म्म-इन्द्रिय आदि पञ्च विषय और एकमात्र मन उत्पन्न होता है, इन षोड़श पदार्थोंको षोड़श विकार कहते हैं कान, त्वचा, नेत्र,

जीभ और नासिका, ये पांचो ज्ञान इन्द्रिय हैं। पद पायु, उपस्थ, हाथ और वाक्य ये पांचो कर्म्म इन्द्रिय हैं; शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो ज्ञानेन्द्रियके विषय हैं। चित्त इन सबमें व्यापकभावसे स्थित है और मन उन शब्द आदि समस्त विषयोंमें श्रोत्रादि रूपसे स्थित होरहा है इसे जानना योग्य है।

इस ज्ञानके विषयमें यह मनही जिह्वास्वरूप होता है और शब्द प्रयोग विषयमें मन ही वाक्यस्वरूप हुआ करता है, मन विविध इन्द्रियोंके सहित संयुक्त होकर महदादि घट पर्य्यन्त सब व्यक्त पदार्थोंका स्वरूपत्व लाभ करता है, दशों इन्द्रिय, मन और पञ्चभूत, इन षोड़श पदार्थोंको विभागके अनुसार देवता कहके जाने। मनुष्य शरीरके बीच अध्यासीन ज्ञानकर्त्ताकी उपासना किया करते हैं। जलका कार्य्य जिह्वा, पृथ्वीका कार्य्य नासिका, आकाशका कार्य्य कान, अग्निका कार्य्य नेत्र और वायुका कार्य्य त्वचा है, इन्हें सब भूतोंमें सर्व्वदा विद्यमान जानना चाहिये। पण्डित लोग मनको सत्वका कार्य्य कहा करते हैं; सत्व प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है परन्तु सब भूतोंके आत्म भूत ईश्वरमें उपाधि रूपसे निवास करता है; इसलिये बुद्धिमान मनुष्य उस विषयका ज्ञान किया करते हैं। ये सब सत्व आदि पदार्थ स्थावर जङ्गमात्मक जगत्को आश्रयपूर्व्वक धारण कर रहे हैं, जो देव प्रकृतिसे भी परम श्रेष्ठ है, पण्डित लोग उसे सर्व्व प्रवृत्ति रहित कूटस्थ कहा करते हैं। शब्द आदि विषयोंसे युक्त, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक बुद्धि, मन, देह और प्राण इस नवद्वार पवित्र पुर आक्रमण करके जीवात्मा शयन कर रहा है, इसही कारण उसे पुरुष कहा जाता है। वह अजर और अमर है, वेद उसे मूर्त्त और अमूर्त्त, इन दोनो रूपोंसे वर्णन किया करते हैं; वह सर्व्व व्यापक और सर्व्वज्ञत्वादि गुणोंसे युक्त है। वह सूक्ष्म और सब भूतों तथा सत्वादि गुणोंका आश्रय है। उपाधिके कारण छ्रस्वही हो, वा महान ही होवे; पर जैसे दीपक वाह्य पदार्थोंको प्रकाशित किया करता है, ज्ञान स्वरूप पुरुषको भी सब जीवोंमें उसही प्रकार जानो। जिसके रहनेसे कान शब्द सुननेमें समर्थ होते हैं, वही सुनता और वही देखता है, यह शरीर उन शब्दादि ज्ञानका निमित्त कारण मात्र है, वही सब कर्म्मोंका कर्त्ता है। काठमें छिपी हुई अग्नि जैसे काठके काटनेसे नहीं दीखती, वैसेही शरीरमें रहनेवाली आत्माको देह विदीर्ण करनेपर भी नहीं देखा जाता। उपायके सहारे जैसे काठको मथनेसे उसमेंसे अग्नि दीख पड़ती है, वैसेही योगरूप उपायके जरिये शरीरस्थ आत्माको इस शरीरसेही देखा जा सकता है; जैसे नदियोंमें जल और सूर्य्यमण्डलमें किरण सदा संयुक्त रहती हैं, वैसे ही जीवोंके शरीर आत्माके सहित संयुक्त हैं, योगाभावसे देह सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। पञ्चइन्द्रिय युक्त स्वप्न-कालकी भांति मरनेके अनन्तर शरीर त्यागके देहान्तरमें गमन करता है; यह शास्त्र दृष्टिके सहारे मालूम हुआ करता है। जीव पहले अपने किये हुए बलवान् कर्म्मोंसे प्रेरित होकर जन्म लेता है, और कर्म्मोंसेही देहान्तरमें गमन किया करता है। जैसे मनुष्य शरीर त्यागके एक शरीरके अनन्तर दूसरा शरीर पाता है, वैसेही निज कर्म्मके अनुसार जन्म लेनेवाले दूसरे जीव भी एक शरीरसे देहान्तरमें गमन करते हैं, इसे फिर कहूंगा।

२१० अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, पण्डित लोग स्थावर जङ्गमात्मक चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीवोंको अव्यक्तप्रभव और अव्यक्त निधन कहा करते हैं, अर्थात् जीवोंकी देहान्तर प्राप्ति और पूर्व्वदेहका वियोग गृहसे गृहान्तरमें गमनकी तरह विस्पष्ट

नहीं है। आत्मा अव्यक्त है, मन उसही अव्यक्त आत्माका स्वरूप है, अर्थात् दूसरे चन्द्रमाकी भांति आत्मामेंही कल्पित है, इससे मनका लक्षण भी विस्पष्ट नहीं है; इसलिये यह जानना चाहिये, कि मन कल्पित उत्पत्ति निधन और अव्यक्त है। जैसे अश्वत्थ बीजके अन्तर्गत अत्यन्त छोटे अंशके बीच बृहत् वृक्ष अन्तर्भूत रहता है। फिर कुछ समयके लिये वह व्यक्त रूपसे दीखता है, अव्यक्तसे दृश्य-वस्तु मात्रका सम्भव भी वैसाही है। जैसे अचेतन लोहा अयस्कान्त अर्थात् चुम्बक पत्थरकी ओर दौड़ता है, वैसेही पूर्व्व संस्कारके कारण कर्म्म-जनित धर्म्माधर्म्म तथा अज्ञान आदि भी अभि-व्यक्त शरीरके अनुगत हुआ करते हैं। प्रागुक्त न्यायके अनुसार अविद्याजनित काम कर्म्मवा-सना देह और इन्द्रिय आदि अचेतन पदार्थ सब तरहसे संहत होकर कारण स्वरूप चेतयिता परब्रह्मका कारणत्व लक्ष्य किया करते हैं, और कारण रूप परब्रह्मके निकटसे सत्व, चित्त और आनन्दत्व आदि आत्मधर्म्म सब तरहसे शरीरमें सङ्गत होते अर्थात् देहान्तर प्राप्ति होनेपर आत्मानात्म गुणसमूह पहलेकी भांति संहत हुआ करते हैं, भूमि, आकाश, स्वर्ग, भूतगण, सब प्राण, शम और काम आदि अथवा इन सबके अतिरिक्त दूसरे कोई पदार्थ जगत्की उत्पत्तिके पहिले कुछ भी न थे, अन्तमें भी अज्ञान उपाधि संहत जीवमें सङ्गत होनेमें समर्थ न होंगे अर्थात् भूमि आदि सब पदार्थ नित्यसिद्ध जीवके सहित कभी सङ्गत नहीं हो सकते। अनादि नित्य सर्व्वगत मनके कारण अनिर्व्वचनीय आत्माको जो मनुष्य पशु आदि शरीरोंमें तदात्म प्रतीति हुआ करती है, वह माया कार्य्य कहके वेदमें वर्णित है। जीव पूर्व्व वासनाके वशमें होकर कर्म्ममें प्रवृत्त होता है, वासनासे कर्म्म और कर्म्मसे वासना, यह जो सदा प्रवहमान अनादिनिधन महत् चक्र संग्र-हके जरिये वर्त्तमान है, जीव स्वरूप आत्मा वासना समूहमें संयुक्त होकर उन कार्य्योंको संग्रह कर रहा है। अव्यक्त बुद्धिवासनासमूह जिसकी नाभी अर्थात् नाभीकी भांति अन्तरङ्ग, व्यक्त देहेन्द्रिय आदि जिसके अर अर्थात् नाभी और नेमिके सन्धानकारक काष्ठोंकी तरह बहि-रङ्ग, ज्ञात क्रिया विकार आदि जिसकी नेमि अर्थात् नेमिकी भांति व्यापक, रञ्जनात्मक रजोगुण जिसका अक्ष अर्थात् पहियेकी तरह चलनेवाला है, वही जन्म मरण प्रवाहरूप संघातचक्र चेतज्ञके जरिये अधिष्ठित होकर अविचलित रूपसे वर्त्तमान है। जैसे तिलको पेरनेवाले तेली लोग प्रीतिपूर्व्वक तिलोंको चक्रके बीच आक्रमें दुःख सब भोग रजोगुणके आक्रमण निवन्धनसे इस संघात चक्रमण करके पेरते हैं, वैसेही अज्ञानसे समस्त जगज्जनोंको निष्पीड़न कर रहा है। वह संघातस्वरूप चक्र फल तृष्णाके कारण अभिमानसे परिगृहीत होकर कर्म्म करता है, कार्य्य और कारण, इन दोनोंके संयोग उपस्थित होनेसे वह कार्य्य ही कारण रूपसे समर्थित होता है। रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति कार्य्यकारणकी विषमसत्तासे कारणमें कार्य्य और कार्य्यमें कारण प्रवेश संघ-टित नहीं होता। कार्य्योंके अभिव्यक्त निमित्त अदृष्टादि सहाययुक्त काल ही हेतु रूपसे समर्थ हुआ करता है। कर्म्मयुक्त पहले कही हुई अष्ट प्रकृति और षोड़श विकार पुरुषके अधि-ष्ठानसे सदा संहत हुए रहते हैं। जैसे वायुके जरिये धूलि उड़ती है, वैसे ही पूर्व्व देहसे विभ्रष्ट जीव, राजस वा तामस संस्कारयुक्त और कर्म्म तथा पूर्व्व प्रज्ञासे संयुक्त होकर चेतज्ञको लक्ष्य करते हुए लोकान्तरमें गमन किया करता है। जैसे निरजस्क वायु सरजस्क नहीं होता, रज, सत, तमोगुणसे देहेन्द्रिय भूत सूक्ष्म भावनिवह पूर्व्वोक्त कर्म्म और पूर्व्व प्रज्ञा आदि आत्माको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होतीं। महान् आत्म-

कहीं कभी उक्त सब भाव स्पष्ट नहीं होते अर्थात् जैसे रजोहीन वायुमें सरजस्कत्वकी भ्रान्ति हुआ करती है, आत्मामें देह आदि सङ्ग भी उसही प्रकार भ्रान्तिके कार्य हैं। विद्वान् पुरुष वायु और धूलिके पृथक् भावकी तरह जीव वा पृथक् भाव जानकर भी देहादिके आत्माके सहित आत्माके तदात्म ज्ञानके अभ्यासके कारण शुद्ध स्वरूप आत्मको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा विभु होकर भी स्वभावमें वह इत्यादि रूपसे उत्पन्न हुए सब सन्देह "पुरुष असङ्ग" इत्यादि मन्त्र वर्णसे विच्छिन्न आत्मा देह तिरिक्त है। इसे जानके भी साम्राज्य कामी राजा जैसे राजसूय यज्ञके जरिये शरीरमें कृत्रिम मूर्द्धाभिषिक्त लक्षणकी उपेक्षा करते हैं, वैसेही मुमुक्षु मनुष्य विद्या साधनके समय कर्त्तृत्वादि विशेषणकी अपेक्षा करते हैं, किन्तु समय पर उसे परित्याग किया करते हैं। जैसे अग्निमें जले हुए बीज फिर नहीं जमते, वैसेही अविद्या आदि क्लेशोंके ज्ञान रूपी अग्निसे जलनेपर आत्मा फिर शरीर ग्रहण नहीं करती।

२११ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, जिस प्रकार कर्मनिष्ठ मनुष्योंको प्रवृत्ति लक्षण धर्म अभिलषित है, वैसेही विज्ञाननिष्ठ पुरुषोंकी विज्ञानके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें रुचि नहीं होती। वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कार्य और शम, दम आदि विषयोंमें निष्ठावान् वेद नित्याशाली पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष महत् प्रयोजनके कारण स्वर्ग और मोक्ष, इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मोक्षकीही कामना किया करते हैं। कर्मत्यागरूप व्यवहार साधुओंके आचरित कहके गर्हित नहीं है, निवृत्ति लक्षणवाली बुद्धिकी अवलम्बन करनेसे मनुष्य मोक्ष पाते हैं। शरीराभिमानी मनुष्य मोहके कारण रजोगुण और तमोगुण जनित क्रोध लोभ आदिके सहित संयुक्त होकर सब विषयोंको ग्रहण किया करता है; इसलिये जो लोग शरीरके सङ्ग सम्बन्धकी अभिलाष करें उन्हें अशुद्ध आचरण करना उचित नहीं है। कर्मके जरिये आत्मज्ञानका द्वार बनाते हुए मनुष्य कर्म जनित स्वर्ग आदि शुभ लोकोंके सुख सम्भोगको स्वीकार न करे। जैसे लोहमिश्रित पाकहीन सुवर्ण शोभित नहीं होता, वैसेही जिस पुरुषने राग आदि दोषोंको जय नहीं किया, उसमें विज्ञान प्रकाशित नहीं होता। जिस पुरुषने धर्मपथको अवलम्बन करके काम क्रोधका अनुसरण करते हुए लोभके वशमें होकर अधर्म आचरण करता है, वह मूलके सहित विनष्ट होता है, इसलिये धर्मपथको कारण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य रागाधिक्यके शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें आसक्त न होवें। क्रोध, हर्ष और विषाद, रज, सत और तमोगुणसे उत्पन्न हुआ करते हैं; सत, रज और तमोगुणके कार्यभूत पञ्चभूतात्मक शरीरमें जीव किसकी क्या कहके स्तुति करेगा। मूढ़ लोगही स्पर्श, रूप, रस आदि विषयोंमें आसक्त हुआ करते हैं, वे उलटी बुद्धिके कारण देहको पृथ्वीका विकार नहीं समझते। जैसे मट्टीमय गृह मृत्तिकासे लिप्त होता है, वैसेही यह पार्थिव शरीर मट्टीके विकार अन्नादिका उपयोग करके जीवित रहता है। मधु, तेल, दूध, घृत अनेक प्रकारके मांस, नमक, गुड़ अनेक तरहके धान्य और फल मूल सजल मृत्तिकाके विकार मात्र हैं। जैसे कान्तारवासी सन्न्यासी मिष्टान्नादिके भोजनमें अनुराग न करके देहयात्रा निर्वाहके निमित्त अस्वादिष्ट ग्राम्य आहार किया करता है, वैसेही संसार कान्तारवासी मनुष्य परिश्रममें तत्पर होकर वेद आदि श्रवण निर्वाहके निमित्त रोगीके औषध सेवन

करनेकी तरह आहार करे, इन्द्रियोंकी प्रीतिकारी वस्तुको भोजन करनेमें अनुरक्त न होवे। यथार्थ वचन, अन्तर्वाह्य शौच, सरलता, वैराग्य, अध्ययनजनित तेज, मनको जय करनेमें पराक्रम, सन्तोष, क्षमा, वेद सुननेसे बुद्धि और मनके जरिये क्रियमाण साधु और असाधु आलोचना रूपी तपस्याके सहारे सब विषयमय भावोंको अवलोकन करके उदार चित्त होकर शान्तिकी इच्छा करते हुए इन्द्रियोंको संयत करे। सब जन्तु सत, रज और तमोगुणसे मोहित होके अज्ञानके वशमें होकर चक्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं; इसलिये अज्ञान सम्भव दोषोंकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा करके अज्ञान प्रभव दुःख अहंकारको परित्याग करे। सब महाभूत, इन्द्रियां, सत, रज, तम, गुण, जीवके सहित तीनो लोक और कर्म्म अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् ये सब अहंकार-कल्पित हैं। जैसे इस लोकमें नियमित काल ऋतुगुणको प्रदर्शित करता है, वैसेही अहंकारको भी भूतगुणमें कर्म्म प्रवर्त्तक जानो। अहंकारकी तरह अप्रकाश अज्ञान सम्भव तमोगुण सम्मोहजनक, सत्वगुण प्रीति जनक और रजोगुण दुःखजनक है, इसी प्रकार तीनों गुणोंको जानना योग्य है। सत, रज और तमोगुणके कार्य्यभूत विशेष गुणोंको सुनो। प्रमाद, हर्षजनित प्रीति, निःसन्देह, धृति और स्मृत, इन सबको सतोगुण जाने; और काम, क्रोध, प्रमाद, लोभ, मोह भय, क्लम, विषाद, शोक अनुराग, अभिमान, दर्प, अनार्य्यता, इन्हें राजस और तामस गुण जानना चाहिये। इसही प्रकार दोषोंके गौरव और लाघवकी परीक्षा करके अपनेमें इनके बीच कौन कौनसे दोष हैं, कौन कौन दोष नष्ट हुए हैं और कौन कौनसे दोष बाकी हैं, उन्हें एक एक करके सदा आलोचना करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राचीन मुमुक्षु मनुष्योंने किन किन दोषोंको मनसे परित्याग किया था, किन किन दोषोंकी बुद्धिबलसे शिथिल किया था; कौन कौनसे दोष अपरिहार्य्य हैं, कौन कौनसे दोष उपस्थित होकर भी निष्फल होते हैं, और विद्वान् पुरुष किन किन दोषोंके बलाबलकी बुद्धि और युक्तिके सहारे आलोचना करें? इस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, शुद्ध चित्तवाले मनुष्य मूलच्छेदनके सहित दोषोंका नाश करें। जैसे वास्यधारा लोहनिगड़को काटके स्वयं विनष्ट होती है, वैसेही ध्यान संस्कृता बुद्धि सहज तामस दोषोंसे उत्पन्न हुई वस्तु मात्रकाही विनाश करते हुए स्वयं नष्ट हुआ करती है। राजस, तामस और कामरहित शुद्धात्मक, सत्व, ये सब गुण शरीरधारियोंके देह-प्राप्ति विषयमें बीज स्वरूप हैं; परन्तु जितचित्त लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिका उपाय सत्वमात्र है; इसलिये चित्त विजयी मनुष्योंको रजोगुण और तमोगुण त्यागना उचित है। रजोगुण और तमोगुणसे निर्मुक्त बुद्धिही निर्म्मलताको प्राप्त होती है अथवा बुद्धि वशीकरण निमित्त विहित मन्त्रयुक्त यज्ञादि कर्म्मोंको कोई कोई दुष्कृति कहा करते हैं, अर्थात् यज्ञादि कर्म्मोंमें जीवहिंसा रहनेसे वह दुरदृष्ट विधायक कहके किसी किसी मतावलम्बी मनुष्योंने उसे निन्दित कार्य्य रूपसे गिना है, यथार्थमें वे मन्त्रयुक्त कार्य्यही वैराग्यके निमित्त हुआ करते हैं और शुद्ध धर्म्म स्वरूप शम दम आदिकी रक्षाके विषयमें यज्ञादिही धर्म्म रूपसे विहित है; यज्ञादिके अतिरिक्त पशुहिंसाही अनर्थका कारण हुआ करती है, विधि विहित हिंसामें वैसी अनर्थ हेतुता न रहनेपर भी यदि हिंसासे कुछ बुराई उत्पन्न हो, तो वह सामान्य प्रायश्चित्तसे दूर की जाती है। जिसका यज्ञ आदिकोंसे बहुतसा पुण्य सञ्चय हुआ है, उसका थोड़ा पाप

प्राय.उससे दूर हो सकता है। सुखसमुद्रमें मग्न मनुष्य अल्पदुःख सहनेमें अवश्यही समर्थ हुआ करते हैं। हिंसाबिहारमें सदा अनुरक्त तन्द्रा और निद्रायुक्त मनुष्य रजोगुणके जरिये अर्थयुक्त कार्य्योंको प्राप्त करते और समस्त कामोंको सेवा करते तथा तमोगुणके सहारे लोभयुक्त क्रोधज कार्य्यों की सेवन किया करते हैं। सतोगुण अवलम्बी श्रद्धा और विद्यायुक्त पवित्रचित्तवाले श्रीमान् मनुष्य बुद्धिसे सात्विक भावकी आलोचना किया करते हैं; इसलिये वैदिक कर्म्मोंमें काम, क्रोध आदिके हेतुभूत राजस और तामस भाव परित्याग हैं, और सात्विक भाव अवश्य सेवन करने योग्य हैं।

२१२ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! रज और तमोगुणसे आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान स्वरूप मोह उत्पन्न होता है, मोहसे क्रोध, लोभ, भय और दर्प प्रकट होते हैं, इन सबको नष्ट करतेही मनुष्योंका अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राचीन लोग अविनाशी ह्रासहीन सर्व्वाश्रय देवसत्तम पञ्चकोशातीत अव्यक्त विभु परमात्माको विष्णु कहके जानते थे, अब भी शुद्धचित्तवाले पुरुष उसे वैसाही जानते हैं। उसही विष्णुकी मायासे जिनकी इन्द्रियां विकृत हुई हैं, वे सब मनुष्य ज्ञान भ्रष्ट हैं; इसलिये कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होकर बुद्धिकी विपरीततासे विक्षिप्तचित्त होते हैं; विक्षिप्तचित्तता क्रोधका धर्म्म है; क्रोधसे काम उत्पन्न होता है, कामसे धीरे धीरे लोभ, मोह अभिमान, उच्छृङ्खलता और अहंकार प्राप्त होता है अहंकारसे जननादि सब कार्य्य स्वीकार किये जाते हैं, जननादि क्रियासे स्नेह सम्बन्ध उत्पन्न होता है, स्नेह होनेसे ही अन्तमें शोक उत्पन्न हुआ करता है और जन्म मरण लक्षण सुख दुःख कार्य्यका आरम्भ होता है। जन्मके कारण शुक्र शोणितसे उत्पन्न पुरीष, मूत्र, क्लेदयुक्त शोणित समूहमें आविल गर्भवास हुआ करता है। उस समय जीव तृष्णामें फंसके और क्रोध आदिसे बद्ध होकर उससे पार होनेके लिये योषिद्गणको संसार पटका कारण समझता है।

स्त्रियां स्वाभाविक ही सन्तानोत्पत्तिके क्षेत्रभूत हैं पुरुष क्षेत्रज्ञ हैं, इससे मनुष्य यत्नपूर्व्वक स्त्रियोंका संसर्ग परित्याग करे। शत्रुको मारनेके लिये मन्त्रमयी शक्तिकी तरह घोररूपिणी ये स्त्रियेंही मूर्ख लोगोंको मोहित करती हैं, इन्द्रियोंके जरिये कल्पित यह सनातनी मूर्त्ति मृत्तिकाके बीच घड़ेकी भांति सूक्ष्मरूपसे रजोगुणमें अन्तर्हित होरही है; इस लिये तृष्णात्मक रागरूप बीजसे सब जन्तु उत्पन्न होते हैं। जैसे पुरुष स्वेदज, मनुष्य संस्कारहित अनात्मभूतजातीय कीटोंको परित्याग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य नामधारी अनात्म, सुतसंज्ञक कीड़ोंको परित्याग करे। रेत और स्वेदरूप स्नेह हेतुसे स्वभाव वा कर्म्म योग निबन्धनसे जन्तुगण देहसे उत्पन्न होते हैं, बुद्धिमान पुरुष उनकी उपेक्षा करे। प्रवृत्ति और प्रकाशात्मक रजोगुण सतोगुण अज्ञानात्मक तमोगुणमें लीन हुआ करते हैं, उसही अज्ञानका निवासस्थल ज्ञानमें अज्ञान अध्यस्त होकर बुद्धि और अहङ्कारका व्यापक होता है। बुद्धिमान लोग ज्ञानमें अध्यस्त उस अज्ञानको ही देहधारियोंका बीज कहा करते हैं और उस बीजका ही नाम देही है वह देही कालके अनुसार कर्म्मसे इस संसारमें सब प्रकारसे वर्त्तमान है।

जैसे जीव सपनेमें देहधारीकी भांति मनही मन क्रीड़ा करता है, वैसेही कर्म्म गर्भगुणके जरिये जननीके जठरमें क्रीड़ा करता है। मांसपिण्डमय शरीरमें जीव प्रकट होके पूर्व्ववासनासे जिन जिन विषयोंको धारण करता है, रागयुक्त

चित्तसे अहङ्कारके जरिये उनकी उन्हीं विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। आत्मरूपसे उत्पन्न हुए जीवके शब्दवासनाके कारण श्रवणेन्द्रियरूप वासनासे दर्शन इन्द्रिय, गन्धग्रहणकी इच्छासे घ्राणेन्द्रिय और स्पर्श वासनासे त्वगिन्द्रिय उत्पन्न होती है, और जीवकी देहयात्रा निर्व्वाहके निमित्त प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्चवायु शरीरको आश्रय करती हैं। मनुष्य शरीर और मानस दुःखके आदि, मध्य और अन्तके सहित पूरी तरहसे निष्पन्न श्रोत्रादि युक्त शरीरसे पूरित होकर जन्म ग्रहण किया करता है। गर्भमें देह और इन्द्रिय आदिका अङ्गीकार तथा उत्पन्न होनेके अनन्तर अभिमानसे देहकी तरह दुःखकी वृद्धि होती है, और मरनेके अनन्तर भी दुःखवर्द्धित हुआ करता है। इन सब कारणोंसे दुःखका निरोध करना उचित है जो दुःखको रोकना जानते हैं, वे मुक्त होते हैं।

जरीगुणसे ही इन्द्रियोंकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती है अर्थात् रजोरूप प्रवृत्ति निरोधके जरिये इन्द्रिय-निरोधके कारण दुःखकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुष शास्त्र दृष्टिसे विधिपूर्व्वक इसकी परीक्षा करके सन्सारमें विचरें। ज्ञान इन्द्रिय सब इन्द्रियोंके विषयोंको प्राप्त होनेपर भी तृष्णारहित पुरुषके निकट नहीं जा सकती। इन्द्रियोंके क्षीण होनेपर जीव फिर देह सन्सर्ग ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता।

२१३ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं शास्त्र दर्शनके सहारे यथा क्रमसे इन्द्रिय जय विषयका उपाय कहूंगा, उसे जानके मनुष्य दम आदिका अनुष्ठान करनेसे परम गति पावेंगे। सब जीवोंके बीच मनुष्यकी श्रेष्ठ कहा जाता है, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, द्विजोंके बीच मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणको श्रेष्ठ कहते हैं, वेदशास्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंने सर्व्व भूतोंके आत्मभूत सर्व्वज्ञ सर्व्वदर्शी और यथार्थ वस्तुके निश्चयको जाना है, इसीसे वे सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे नेत्रहीन मनुष्य अकेले अत्यन्त क्लेश पाता है, वैसेही ज्ञानहीन मनुष्य भी इस सन्सारमें अनेक दुःख पाते हैं। इसलिये ब्रह्मवित् पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ हैं। धर्म्मकी इच्छा करनेवाले मनुष्य शास्त्रके अनुसार इष्टपूर्त्त आदि धर्म्मोंकी उपासना किया करते हैं, परन्तु ये लोग इन सब धर्म्मोंके फलस्वरूप मोक्षाख्या निरतिशय धर्म्मके अतिरिक्त पीछे कहे हुए गुणोंकी उपासना नहीं करते, धर्म्मज्ञ लोग प्रवृत्ति निवृत्ति स्वरूप सब धर्म्मोंमें ही वाक्य शरीर और मनकी पवित्रता, क्षमा, सत्य, धृति और स्मृति, इन सबको शुभ गुण कहा करते हैं। ब्रह्मचर्य्य जोकि ब्रह्मका रूप कहके स्मृत हुआ है, वही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्य उससे परम गति पाता है। जो पञ्चप्राण मन, बुद्धि और दशो इन्द्रिय इस सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे रहित है, जो शब्द और स्पर्शहीन है, जिसे कानसे सुना नहीं जाता, और नेत्रसे देखा नहीं जाता, वही शुद्ध अनुभव स्वरूप परब्रह्म है; निर्व्विकल्प अवस्थाके सहारे उस परब्रह्मको जान सकते हैं। और वाक्शक्ति जिसे कहनेमें समर्थ नहीं है, जो विषयेन्द्रियोंसे रहित होकर केवल मनमें निवास करता है, वह पाप स्पर्शसे रहित सविकल्पक अवस्थाके सहारे जानने योग्य ब्रह्मकी श्रवण मनन युक्त बुद्धिसे निश्चय करे। जो पूर्ण रीतिसे ब्रह्मचर्य्य कर सकते हैं, वे मोक्ष लाभ करते हैं, मध्यम भावसे ब्रह्मचर्य्य करनेवाले मनुष्य सत्य लोकमें गमन करते हैं और जो लोग कनीयसी वृत्ति अवलम्बन करते हैं; वे ब्राह्मण विद्वान् होते हैं। ब्रह्मचर्य्य अत्यन्त दुष्कर व्रत है, इसलिये उस विषयमें जो उपाय

है वह मेरे समीप सुनो। ब्रह्मचारी ब्राह्मण उत्पन्न और सम्वर्द्धित काम, क्रोध आदिको निग्रह करे; योषित सम्बन्धीय कथाको न सुने, वस्त्र हीन स्त्रियोंको ओर न देखे, स्त्रियोंके तनिक भी दृष्टि पथकी अतिथि होनेपर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके अन्तःकरणमें राग उत्पन्न हुआ करता है। स्त्रियोंके विषयमें अनुराग उत्पन्न होनेपर कृच्छ्रव्रतका आचरण करे अर्थात् तीन दिन सबेरे, तीन दिन सामको और तीन दिन अयाचित भोजन करे; फिर तीन दिन तक, अनाहारी रहे; तीन दिन जलके बीच प्रविष्ट करे। सपनेमें यदि वीर्य्य स्खलित हो, तो जलमें डूबके मनही मन तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसी प्रकार ज्ञानयुक्त श्रेष्ठ मनके जरिये अन्तर्भूत रजोमय पापोंको एकबारही जला दे। जैसे शरीरके भीतर मलवाहिनी नाड़ी दृढ़रूपसे बन्धी है, वैसेही शरीरके बीच आत्माको देहबन्धनसे दृढ़बद्ध जाने। सब रस नाड़ियोंके जरिये मनुष्योंके बात पित्त, कफ, रक्त, त्वचा, मांस, नसें, हड्डी और मज्जायुक्त देहको तृप्ति करते हैं इस शरीरमें पञ्चइन्द्रियोंके निज निज विषयोंको ग्रहण करनेवाली दश नाड़ी हैं, उनसे दूसरी सहस्रों नाड़ियोंका सम्बन्ध है। जैसे वर्षाकालमें नदियां समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही ये सब रसरूपी जलसे युक्त नाड़ीरूपी नदियां देह समुद्रको तृप्त किया करती हैं। हृदयके बीच एक मनोवहा नाड़ी है, वह नाड़ी मनुष्योंके सर्व्वशरीरसे संकल्पजनित शुक्रको चलाकर उपस्थकी ओर लाती है। सब शरीरको सन्तापित करनेवाली नाड़ियां उस मनोवहा नाड़ीके अनुगत होकर तैजस गुणको ढोती हुई दोनों नेत्रोंके निकटवर्त्ती होती हैं। जैसे दूधके बीच स्थित मक्खन मथानीसे मथा जाता है, वैसेही देहके सङ्कल्प और इन्द्रिय जनित स्त्रियोंके दर्शन तथा स्पर्शनसे शुक्र मथित हुआ करता है। सपनेमें योषित-संग न रहने पर भी जब मन स्त्री विषयक संकल्पसे अनुराग लाभ करता है, तब मनोवहा नाड़ीके जरिये देहसे संकल्पके कारण शुक्र झरने लगता है। महर्षि अत्रि भगवान् उस शुक्रके उत्पत्ति विषयको विशेषरूपसे जानते हैं; अन्न रस, मनोवहा नाड़ी और संकल्प, ये तीनों शुक्रके बीज हैं, और इन्द्र इनका अधिष्ठाता है, इसही निमित्त इन्हें इन्द्रिय कहते हैं। जो लोग जीवोंके शुक्रके उद्रेकके कारण अनुलोम और प्रतिलोम गमनसे सङ्करकारिणी गतिका विषय विचार करते हैं, वे विचारपूर्व्वक विराग और वासना हीन होकर पुनर्जन्म नहीं पाते। जो लोग शरीरके निर्व्वाहके लिये कर्म्म किया करते हैं, वे मनके सहारेही सुषुम्ना नाड़ी मार्गसे योगबलसे तीनों गुणोंकी समता लाभ करके अन्तकालमें जीवन परित्याग करके मुक्त होते हैं। विश्वासमय मनका ज्ञान होगा क्यों कि मनही सब विषयाकारसे जन्म ग्रहण करता है। महात्माओंके प्रणव मन्त्रके उपासना-सिद्ध मन नित्य रजोगुण रहित और ज्योतिष्मान् है; इसलिये उस मनके विनाशके लिये पाप रहित निवृत्त लक्षण कर्म्मका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें रजोगुण और तमोगुणको परित्याग करनेसे मनुष्य इच्छानुसार गति लाभ किया करते हैं, तरुण अवस्थामें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जरा अवस्थामें निर्व्वल होजाता है, जो कच्चबुद्धिवाले मनुष्य कालक्रमसे संकल्पको संहार करते हैं, वे दुर्गम मार्गकी भांति देहेन्द्रिय बन्धनको अतिक्रम करके दोष दर्शनके अनुसार उसे परित्याग कर अमृत भोग किया करते हैं।

२१४ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, दुःख दायक इन्द्रिय विषयोंमें अनुरक्त मनुष्य अवसन्न हुआ करते हैं, और जो

सब महात्मा उस विषयमें अनासक्त रहते हैं, वे परम गति पाते है; बुद्धिमान् मनुष्य सब लोगोंकी जन्म, मृत्यु, जरा, दुःख और आधि-व्याधिसे युक्त देखकर मोक्ष साधनमें यत्नवान होवें। ज्ञानवान् मनुष्य मन, वचन और शरीरसे पवित्र रहके अहंकार रहित, प्रशान्त और निरपेक्ष होकर भिक्षा करते हुए अनायासही विचरे। जीवोंके ऊपर दयाके कारण यदि मनके बन्धनको देखें, तो जगत्के कर्म्मफल भोगका निमित्त जानके उस विषयमें भी उपेक्षा करें।

जो कुछ पुण्य वा पापकर्म्म किया जाता है, उसकाही फल भोग करना पड़ता है; इसलिये मन, वचन और कर्म्मसे शुभ कर्म्मोंको सिद्ध करे। अहिंसा, सत्य वचन, सर्व्व भूतोंके विषयमें सरल व्यवहार क्षमा और सावधानता, ये सब जिनमें विद्यमान हैं, वेही सुखी होते हैं, इससे शास्त्रालोचनासे पवित्र बुद्धिके जरिये मन स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे। जो सब प्राणियोंके सुखदायक इस अहिंसा आदि परम धर्म्मको दुःख रहित जानते हैं, वे सर्व्वज्ञ पुरुषही सुखी होते हैं; इसलिये शास्त्रसे शुद्ध हुई बुद्धिके जरिये मनको स्थिर करके सर्व्वभूतोंमें धारणा करे; दूसरेके अनिष्ठका विचार न करे, अपने अयोग्य राज्य आदिकी अभिलाषा न करे, नष्ट वा भावी स्त्री पुत्रादिके लिये चिन्ता न करे; अव्यर्थ प्रयत्नके सहित मनको ज्ञान साधन और श्रवण मनन आदि विषयोंमें लगावे। वेदान्त वाक्य सुनने और अमोघ परिश्रमके सहारे वही मन उस समय आत्मस्वरूपके निकटवर्त्ती होगा। सत्य वचन कहनेकी अभिलाषा करनेवाले सूक्ष्मदर्शी पुरुष हिंसा रहित अपवादहीन सत्य वचन कहें। अविक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंकी शठता और निठुरता त्यागके अनृशंस वा पिशुनतारहित सत्य वचन कहना भी उचित है। सब ऐहिक विषय वचनसे ही बद्ध हैं, वैराग्यके कारण यदि कुछ कहना पड़े, तो प्रसन्न मन और बुद्धिके जरिये अपने हिंसा आदिक तामस कर्म्मोंको प्रकाश करे, क्यों कि पुण्य वा पाप निज मुखसे प्रकाशित करनेसे नष्ट हुआ करते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति परतन्त्र इन्द्रियोंके जरिये कर्म्ममें प्रवृत्त होनेपर इस लोकमें महा दुःख पाकर अन्त समय नरकमें गमन करते हैं; इसलिये मन, वचन और शरीरसे जिस प्रकार आत्माकी धीरज हो वैसा ही आचरण करे। जैसे चुराये हुए मांसभार ढोनेवाले चोर जानेके मार्गोंको राजपुरुषोंके जरिये रुकनेकी आशङ्कासे मांसके बोझको त्यागके प्रतिकूल दिशामें गमन करके बन्धनसे अपनी रक्षा करते हैं, वैसेही मूर्ख मनुष्य कर्म्म-भार ढोते हुए कामादिके सम्मुख होकर संसार भयसे कामादिको त्यागनेपर बन्धनसे छूटते हैं। जैसे चोर लोग चोरीकी वस्तुओंको परित्याग करके बाधारहित दिशामें गमन करते हैं, वैसे ही मनुष्य रजोगुण और तमोगुणके सब कार्य्योंको त्यागके सुखलाभ किया करते हैं। जो चेष्टारहित, सर्व्वसङ्ग विमुक्त, निर्ज्जन स्थानमें वास करनेवाले, थोड़ा भोजन करनेवाले, तपस्वी और संयतेन्द्रिय हैं, ज्ञानसे जिनके सब क्लेश भस्म होगये हैं, जो योगाङ्गोंके अनुष्ठान विषयमें अनुरक्त हैं, वेही बुद्धिमान् मनुष्य चित्त वृत्ति निरोधके जरिये अवश्यही परम पद पाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। धैर्य्यशाली बुद्धिमान् मनुष्य "मैं ब्रह्म हूं" इस वचनके निमित्त बुद्धिवृत्तको निःसन्देह रूपसे निग्रह करे, बुद्धिके जरिये संकल्पात्मक मन और मनसे मनरूपी शब्दादि विषयोंको निग्रह करनेमें यत्नवान होवे; और जो इन्द्रियोंको निगृहीत तथा मनको वशमें करता है, इन्द्रियां उसके समीप प्रकाशित होतीं और आनन्दित होके उस योगीश्वरमें प्रवेश करती है। इन सब इन्द्रियोंके संङ्ग जिसका मन संयुक्त हुआ है,

उसके समीप वह परब्रह्म प्रकाशित होता है और उन सब इन्द्रियोंके अपगत होनेपर सत्व-भावमें स्थित आत्मा ब्रह्मरूपसे कल्पित हुआ करता है। अथवा योगी यदि योग ऐश्वर्य्यसे आत्माको न जान सके, तो चित्तवृत्ति-निरोध आदि मुख्य योगतन्त्रोंके सहारे उसे जाननेका उपाय करे, योगका अनुष्ठान करते करते जिस प्रकार चित्तवृत्ति शुद्ध होवे, उसका ही आचरण करना उचित है। योगी पुरुष केवल योग ऐश्वर्य्यको ही उपजीव्य न करके पर्य्यायक्रमसे भिक्षासे प्राप्त हुए चावलोंके किनके कुलथ्य माष, तिलकल्क, अनेक तरहके शाक, उष्णोदपरुवर चूर्ण, सत्तू और फलमूल आदि भोजन करके जीवन धारण करें; देशकालके अनुसार उसमें भी जैसे नियमकी प्रवृत्ति हो, परीक्षा करके उसमें अनुवर्त्तन करना योग्य है। प्रारब्ध कर्म्मोंको अन्तरायके जरिये उपरोध करना उचित नहीं, अग्निकी भांति धीरे धीरे ज्ञानकी उद्दीपन करना चाहिये ज्ञानसे प्रदीप्त ज्ञानस्वरूप पर-ब्रह्म सूर्य्यकी तरह प्रकाशित होता है ज्ञाना-धिष्ठान अज्ञान जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों कालोंमें स्थित रहता है, और बुद्धिके अनुगत ज्ञान अज्ञानसे अर्थात् आत्मभिन्न आत्मरूप विपर्य्ययसे आकृष्ट हुआ करता है। आत्मा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्था-ओंसे प्रतीत होनेपर भी असूय पुरुष पृथकत्व और संप्रयुक्तत्व निबन्धनसे आत्माको दूषित करते हुए उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते, वे लोग पृथकत्वको अपृथकत्व सोमा जानके रागरहित होनेसे मुक्त होसकते हैं। कालविजयी मनुष्य जरा मृत्युको जीतके अ यय अविनाशी अमृत-स्वरूप सनातन ब्रह्मको जान सकते हैं।

२१५ अध्याय संमाप्त।

—— ——

भीष्म बोले, जो निष्काम ब्रह्मचर्य्य आचरण करनेकी सदा अभिलाष किया करते हैं, उन स्वप्नदोषदर्शी योगियोंको सब प्रकारकी निद्रा परित्याग करना योग्य है, क्यों कि जीव स्वप्न-कालमें रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होता है, तथा निष्पृह होकर देहान्तर प्राप्त होनेकी तरह आचरण किया करता है। ज्ञानाभ्यास निबन्धन जाननेके लिये पहले वह स्मरण हुआ करता है। अनन्तर विज्ञानमें अभिनिवेशके कारण योगी पुरुष सदा जाग्रत रहते हैं। इस विषयमें कोई कोई यह वितर्क किया करते हैं, कि स्वप्नकालमें जीव यथार्थमें विषययुक्त न होकर भी जो विषय विशिष्टकी तरह दीखता है, और प्रलीन इन्द्रियोंके रहित देहवानकी भांति वर्त्तमान रहता है, इसका क्या भाव है? इस विषयके सिद्धान्त पक्षमें प्राचीन लोग कहा करते हैं, योगीश्वर हरिही स्वप्नके यथार्थ तत्वको जानते हैं, और वह जिस प्रकार जानते हैं, उसीही युक्ति संगत मानके महर्षि लोग वर्णन किया करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं, इन्द्रियोंके श्रमसे सर्व्वप्राणि प्रसिद्ध स्वप्न हुआ करता है; स्वप्नकालमें इन्द्रियोंकी उपरति होने पर भी संकल्पस्वभाव मनका विश्राम नहीं होता, इसलिये स्वप्न विषयमें वही प्रसिद्ध प्रमाण है, यह फिर प्रकाशित होता है।

जाग्रत अवस्थामें कार्य्योंमें आसक्त चित्तवाले मनुष्योंका जैसा सङ्कल्प होता है, वैसाही स्वप्न-कालमें मनोगत मनोरथ ऐश्वर्य्य भोग हुआ करता है, इसलिये मनोरथवृत्तिकी तरह स्वप्न-वृत्ति भी शरीरका सङ्कल्पमात्र है, तब जाग्रत अवस्थामें इन्द्रियोंके जरिये विक्षेपके कारण पूर्ण रूपसे विषयज्ञान नहीं होता, स्वप्नमें उसके अभाव विशेष रूपसे विषय ज्ञान हुआ करता है, इसमें इतनाही प्रभेद है। पूर्व्वके अनन्त जन्मोंके संस्कारोंसे विषयासक्त चित्तवाला पुरुष उन स्वप्न आदि ऐश्वर्य्योंको भोग करता और वह उत्तम पुरुष मनमें अन्तर्हित सब विषयोंको प्रकाशित किया करता है। सत, रज और

तमोगुणमेंसे जो गुण पूर्व्व कर्म्मके जरिये उपस्थित होते हैं, वही गुण कर्म्मसे संस्कृत मनको यातिङ्गणोंके आकार आदि स्वप्नमें नियुक्त करता है; फिर रूप दर्शनके अनन्तरही जिस प्रकार सुख आदिके अनुभव होते हैं, उसहीके अनुसार राजस, तामस और समस्त सात्विकभाव उस पुरुषके निकट उपस्थित हुआ करते हैं। अनन्तर पुरुष अज्ञानसे राजस और तामस भावके जरिये वात, पित्त और कफ प्रधान शरीरका दर्शन करता है, पूर्व्व वासनाकी प्रबलताके कारण, वह देह दर्शन पुरुषके विषयमें योगके अतिरिक्त अपरिहार्य्य है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। मन प्रसन्न इन्द्रियोंके सहित जिन जिन विषयोंका सङ्कल्प करता है, स्वप्न समय उपस्थित होने पर मनोदृष्टि होकर उन्हीं विषयोंको देखा करता है। मन उपादानके कारण सर्व्वभूतोंमें व्यापक और प्रतिघात रहित होकर वर्त्तमान है, वह अपने प्रभावसेही आत्माको जान सकता है, आत्मामेंही आकाश आदि सब भूत प्रतिष्ठित हैं। स्वप्न दर्शनका द्वारभूत स्थूल देह मनमें अन्तर्हित होता है, सदसदात्मक साक्षी स्वरूप मन उसही शरीरको अवलम्बन करके उसहीमें सोता है, और आत्मामें जाके प्रवेश करता है, सर्व्वभूतोंका आत्मभूत अहङ्कार आत्मामें प्रतिबिम्ब रूपसे निवास करता है, इसलिये पण्डित लोग आत्माको अहंकार गुणसे अस्पृष्ट समझते हैं; परन्तु सुषुप्तिकालमें साक्षी चैतन्यके शुद्ध अवस्थामें निवास करनेसे अहंकार आदि सब लयको प्राप्त होते हैं। मनके सहारे सङ्कल्पसे जो लोग ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य आदि ऐहिक गुणोंके अन्यतमकी अभिलाषा करते हैं, वे चित्तप्रसाद जनित शुद्ध मनको वैसाही जानें, मनमेंही आकाश आदि निवास करते हैं। इसही प्रकार विषय आदिकी आलोचनारूपी तपयुक्त मन अर्कको तरह अज्ञान अन्धकारके पारमें निवास किया करता है। देहधारी जीव ऐसे ही प्रकृतिका कारण ब्रह्मरूप और वह जीव ही कारणभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर महेश्वर अर्थात् शुद्ध ब्रह्म भूत हैं। देवता लोग अग्निहोत्र आदि तपस्याके अधिष्ठान और असुर लोग तपोघ्न अन्धकार अर्थात् दम्भ दर्प आदिके अवलम्बन हैं। रज और तमोमय देवासुरोंके निमित्त प्रजापतिने इस ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको गुप्त कर रखा है। पण्डित लोग कहा करते हैं, सत, रज और तमोगुण देवता तथा असुरोंमें विद्यमान हैं, उनमेंसे सत्वको देवगुण और रज तमको असुरगुण जानना चाहिये। जो सब पवित्र चित्तवाले मनुष्य सात्विक और असात्विक भावोंसे श्रेष्ठ, ज्ञानस्वरूप, अमृतस्वरूप, स्वप्रकाश और सर्व्वव्यापी परब्रह्मको जानते हैं; वे परमगति पाते हैं। तत्वदर्शी पुरुष ईश्वर सगुण वा निर्गुण है, इसे ही युक्तियुक्त रूपसे कह सकते हैं और सब विषयोंसे इन्द्रियोंको खींचकर अक्षर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होते हैं।

२१६ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, परम ऋषि नारायणके जरिये व्यक्त और अव्यक्त भावसे जिसका तत्व वर्णित हुआ है, जो लोग स्वप्न, सुषुप्ति और सगुण निर्गुण ब्रह्मभावको नहीं जानते, वे उस परब्रह्मको नहीं जान सकते। जन्म ग्रहण करके मृत्युके मुखमें पड़नाही व्यक्त है और मोक्षपदको अव्यक्त जानना चाहिये; परम ऋषि नारायणने यह कहा है, कि देहेन्द्रिय अहङ्कारादिका निवृत्तिलक्षण धर्म्म ही अव्यक्त शाश्वत ब्रह्म है। उस ब्रह्ममें स्थावर जङ्गमात्मक सब जगत् स्थित है, प्रजापतिने प्रवृत्तिलक्षण धर्म्मका विषय कहा है, पुनरावृत्तिका नाम प्रवृत्ति और परम गतिको निवृत्ति कहते हैं; निवृत्ति परायण मननशील मनुष्य उस ही परम

गतिको पाते हैं; जो लोग मुक्ति और संसारको निश्चय रूपसे देखनेकी अभिलाषा करते हैं, वे सदा आत्मतत्त्व विचारमें अनुरक्त होवें; वक्ष्यमाण रीतिसे प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको जो जानना उचित है, प्रकृति और पुरुषसे भिन्न महत् ईश्वर है, बुद्धिमान पुरुष विशेष रूपसे क्लेशादिकोंसे अपरामृष्ट उस परमात्माको देखें इस प्रकृति और पुरुषको आदि और अन्त नहीं है, तथा इन दोनोंको प्रमाणान्तरोंके जरिये नहीं जाना जा सकता। वे दोनों ही नित्य अविचलित और महत्‌से भी महत् हैं, दोनोंके इस ही प्रकार सामर्थ कहे गये, अब इनका वैधर्म्म विषय कहता हूं। सृष्टिकार्य्यसे व्याप्त त्रिगुणात्मिका प्रवृत्तिसे पुरुषका विपरीत लक्षण जानने अर्थात् पुरुष सृष्टिकार्य्यमें निर्लिप्त और निर्गुण है, वह निर्गुण होनेसे प्रकृति तथा महदादि विकारोंके कार्य्योंको देखता है, पर स्वयं दृश्य नहीं है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् पुरुष और ईश्वर दोनोंही चिद्रूप हैं; इसलिये ज्ञापक गुणादि विहित और अत्यन्त विविक्त होनेसे उसे नहीं जाना जा सकता। जो अविद्याके जरिये कर्म्म जनित बुद्धि गृहीत होती है, वह अविद्या ही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धमें ज्ञापक आविर्भाव लाभ करके कर्त्तव्य रूपसे इन्द्रिय आदिके जरिये जिन जिन कार्य्योंको करती है, उसही योनिप्रद कर्म्मोंके सहित संयुक्त हुआ करती है और यह कर्त्ता व्यवहारमें तृतीय होनेपर भी परमार्थ ज्ञान स्वरूप होता है, शब्द प्रत्ययसे कौन हूं, ये कौन हैं इत्यादि व्यवहार मात्र होते हैं। जैसे कर्णने अपनेको कौन्तेय न जानकर सूर्य्यसे पूछा, कि कौन्तेय कौन है? शेषमें सूर्य्यके कहनेसे अपनेको ही कौन्तेय जाना था, वैसेही अज्ञानी लोग "ब्रह्म कौन है?" ऐसाही पूंछा करते हैं, ज्ञानवान् पुरुष "मैंही ब्रह्म हूं" ऐसा ही जानते हैं। जैसे उष्णीषयुक्त पुरुष तीनों वस्त्रोंसे परिपूरित होता है, वैसे ही यह देही सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे परिपूरित हुआ करता है; इसलिये पहले कहे हुए अनादि अनन्तत्व, चिज्जड़ता असंहतत्व और कर्त्तृत्व इन चारों कारणोंसे प्रकृति पुरुषके साधर्म्य वैधर्म्म, और जीव तथा ईश्वरके साधर्म्म, वैधर्म्म, इन चारोंको जानना उचित है। जो लोग उक्त विध ज्ञानको अतिक्रम नहीं करते, वे सिद्धान्तके समयमें मोहित नहीं होते। जो लोग हृदयाकाशमें स्थित ब्राह्मी श्रीको कामना करते हैं, वे अन्तर्बाह्यमें पवित्र होकर शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधान आदिक शारीरिक तथा मानस नियमोंके जरिये निष्काम योगका आचरण करें। प्रकाशयुक्त अन्तर्भूत योगबलके सहारे तीनों-लोक व्याप्त हो रहे हैं; योगबलके जरिये हृदयाकाशमें सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित हुआ करते हैं; योगका विकाशही ज्ञानका कारण है, यह लोकमें विख्यात है, कि योगी लोग सनातन भगवान्‌का दर्शन करते हैं। जो कर्म्म रज और तमोगुणका नाशक है, वही योगका असाधारण लक्षण है। ब्रह्मचर्य्य और अहिंसाको शारीरिक योग कहा जाता है, और वचन तथा मनको पूर्ण रीतिसे निग्रह करना मानस योग कहके वर्णित हुआ करता है। विधि जाननेवाले द्विजातियोंके समीपसे अन्न ग्रहण करनाही योगियोंके विषयमें श्रेष्ठ है, आहारनियमके जरिये राजस पाप शान्त हो जाते हैं। युक्त अन्न खानेवालोंकी इन्द्रियें शब्द आदि विषयोंमें वैमनस्य अर्थात् वैराग्य लाभ करती हैं, इसलिये जब तक आहारका प्रयोजन हो, तबतक अन्न ग्रहण करना चाहिये। इसही प्रकार योगयुक्त मनके जरिये धीरे धीरे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, अन्तकालमें पुण्यक्षेत्रमें वास करते हुए अत्यन्त यत्नके सहित उसही ज्ञानको सिद्ध करे।

यह जीव वाह्यइन्द्रिय-प्रवृत्तिसे रहित और

समाधि समयमें स्थूल शरीरको परित्याग करके भी देहवान् होके शब्दादिविशिष्ट सूक्ष्म शरीरसे विचरता है, अनन्तर कार्य्योंके जरिये अव्याहतचित्त और वैराग्यके कारण सूक्ष्म भोग भी निस्पृह होकर प्रकृतिमेंही लय होजाते हैं। देह त्यागके समयसेही असावधानता आदिके अभाव निबन्धनसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी बाधाके सबब जीव तत्क्षणही मुक्त होता है, मूल अज्ञानका नाश न होनेसे जीवोंके जन्म मृत्यु हुआ करते हैं। शुद्ध ब्रह्मके साक्षात्कार विषयमें धर्म्माधर्म्म अनुसरण नहीं करते; जो लोग आत्मासे भिन्न आत्मज्ञान किया करते हैं, उनकी बुद्धि महदादि पदार्थोंके नाश और दोनोंकी आलोचना करती है, वे मोक्ष साधनमें समर्थ नहीं होते। योगी लोग आसन आदिके स्खलनके सहारे देह धारण करते हुए बुद्धिके जरिये मनको सब विषयोंसे हटाके नेत्र आदि इन्द्रिय-गोलकोंसे प्रच्युत प्राण और इन्द्रिय आदिकी सूक्ष्मताके कारण उनको आत्मस्वरूपसे उपासना करते हैं। योग शोधित बुद्धिवाले कोई मनुष्य आगमोंके अनुसार अर्थात् इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, इत्यादि वेद वचनके अनुसार चरम सीमामें निज महिमासे प्रतिष्ठित परब्रह्मको बुद्धिके जरिये जानके शास्त्र और आचार्य्यके उपदेशसे उसमें एकाग्रचित्त हुआ करते हैं। कोई कोई धारणाके विषय मूर्त्तब्रह्म कृष्ण, विष्णु, आदिके सहित तदात्म-सम्बन्धसे अथवा सेव्य सेवक भावसे निबद्ध आत्माकी उपासना करते हैं। दूसरे लोग उपनिषत् प्रसिद्ध बिजलीके प्रकाशकी तरह सकृत्प्रभात परिणामहीन निर्गुण परब्रह्मका बार बार अनुभव किया करते हैं। अविमुक्त उपासनासे जिनके पाप जल गये हैं, वे अन्तकालमें ब्रह्मत्व लाभ करते हैं, और वेही सब महानुभाव उपासक लोग परम गति पाते हैं। सोपाधिक ब्रह्मके व्यावर्त्तक विशेषणको शास्त्रदृष्टिके सहारे हेयरूपसे देखे। अव्यक्तही ब्रह्मका चरम विशेषण है, उसे स्थूल देहके अध्यासरहित और अपरिग्रह अर्थात् सर्व्व आसक्तिसे विमुक्त जाने। धारणा सक्त मानस योगीके हृदयाकारसे आरम्भ करके उससे पृथक् सूत्रात्मा रूपसे मालूम करे। जिन लोगोंका चित्त स्वरूप परब्रह्ममें संयुक्त हुआ है वे मर्त्यलोकसे विमुक्त होते और ब्रह्मस्वरूप होकर परम गति पाते हैं।

वेद जाननेवाले पुरुष इसी प्रकार धर्म्मको ब्रह्मप्राप्तिका एकमात्र उपाय कहा करते हैं। चाहे कोई किसी प्रकारसे जानके ईश्वरकी उपासना क्यों न करें, सभी परम गति प्राप्त किया करते हैं। जिन्हें, रागादिरहित अचल अर्थात् दृढ़ शास्त्रीय और परोक्ष ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वे श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते और वैराग्यके अनुसार मुक्त होते हैं। आशाहीन ज्ञानतृप्त और पवित्रचित्तवाले योगी लोग सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त, जन्मरहित, अव्यक्तसंज्ञक, दिव्यधाम-स्थित, सर्व्वव्यापी ब्रह्मके निकटवर्त्ती हुआ करते हैं। वे अविनाशी महानुभाव पुरुष हरिको शरीरस्थ पञ्चकोशके अन्तर्गत जानके फिर दूसरी बार उससे निवृत्त नहीं होते; वे लोग उस अव्यय अविनश्वर परमधाम पाके निरवच्छिन्न आनन्द अनुभव करते हैं। रसरीमें सर्पभ्रमकी तरह यह जगत् है वा नहीं इत्यादि रूपसे अनिर्व्वचनीय जगत्का मिथ्यापन जानना उचित है; परन्तु समस्त जगत् तृष्णामें बद्ध होकर चक्रकी तरह परिवर्तित होता है। जैसे मृणालसूत्र कमलके डांडीके बीच सर्व्वत्र वर्त्तमान रहता है, वैसेही आदि और अन्तरहित तृष्णाके तागे सदा देहमें विद्यमान हैं। जैसे सीनेवाला सुईके सहारे वस्त्रोंमें तागा चलाता है, वैसेही तृष्णासूचीसे संसारसूत्र निबद्ध होरहा है। जो लोग महदादि विकाररूप कार्य्यमें होमल कारण प्रकृति और कार्य्य-

निर्लिप्त सनातन पुरुषको विधिपूर्व्वक जानते हैं, वेही तृष्णारहित पुरुष मुक्त होते हैं। जगत्की गति भगवान् नारायण ऋषिने जीवोंके ऊपर कृपा करके इस मोक्ष साधन विषयकी स्पष्ट करके कहा है।

२१७ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहार दर्शिन्! मिथिलापति जनकवंशीय मोक्षवित् जनदेवने किस प्रकारके व्यवहारोंके जरिये मनुष्योंके भोगने योग्य भोगोंको परित्याग करके मुक्तिलाभ की थी?

भीष्म बोले, व्यवहारदर्शी जनदेवने जिस प्रकार व्यवहारके सहारे मोक्षलाभकी थी, उस विषयमें प्राचीन लोग यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। मिथिलानगरीमें प्रजानाथ जनदेव शरीर त्यागनेके अनन्तर जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्राप्ति होती है, उस ही प्रकार धर्म्म विषयोंकी चिन्तामें तत्पर थे। उनके स्थानमें अनेक प्रकारके उपासनामार्ग-प्रदर्शक और लोकायत पाषण्डियोंके तिरस्कार करनेवाले सैकड़ों आचार्य्य सदा निवास करते थे। उन सब पाषण्डियोंके बीच कोई कोई देह नाश निबन्धनसे आत्माका नाश स्वीकार करते थे, कोई शरीरको ही अविनाशी कहके स्थिर करते थे, इसही प्रकार विविध विषयोंमें ऐक्यमत न रहने तथा परलोक, पुनर्जन्म और आत्मतत्व विषयमें विशेष निश्चय न होनेसे वह शास्त्रदर्शी राजा उन लोगोंके विषयोंमें विशेष रूपसे सन्तुष्ट नहीं था। अनन्तर कपिलापुत्र पञ्चशिख नाम महामुनि समस्त पृथ्वी पर्य्यटन कर एकत्र बास न करके उस मिथिला नगरीमें उपस्थित हुए। वह समस्त सन्न्यासधर्म्मके तत्वज्ञान निश्चय विषयके जो सब प्रयोजन हैं, उन्हें पूर्ण रीतिसे निर्णय कर सकते थे; उन्हें सुख दुःख आदि कुछ न था और सब संशय नष्ट हुए थे। पण्डित लोग उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय कहते थे; वे यदृच्छाक्रमसे मनुष्योंके बीच निवास करते और अत्यन्त दुर्लभ नित्यसुखकी खोजमें तत्पर रहते थे। सांख्य मतावलम्बी दार्शनिक पण्डित लोग जिसे परम ऋषि प्रजापति कपिल कहा करते हैं, बोध होता है, वही पञ्चशिख रूपसे लोगोंको विस्मययुक्त करते थे। प्राचीन लोग जिसे आसुरीके प्रथम पुत्र और चिरजीवी कहते हैं; जिन्होंने हजार वर्ष सम्पाद्य मानसयज्ञका अनुष्ठान किया था, जिन्होंने आसुरीके निकट समासीन कपिल मतावलम्बी मुनिमण्डलीके समीप उपस्थित होकर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय पञ्चपुरुष जिसमें निवास करता है और जिन्होंने स्वयं हाथ और मस्तक आदि अवयवोंसे रहित कहके अव्यक्त और अवाध्यत्व निबन्धन परमार्थ स्वरूप उस परब्रह्म विषयक ज्ञानका विस्तार किया था। जिन्होंने आत्मज्ञानके निमित्त आसुरीके निकट बार बार प्रश्न किया था, उससे आसुरीने शरीर और जीवकी स्पष्टता समझके दिव्यदृष्टि लाभ की थी; वेद और लोकमें प्रसिद्ध जो एक मात्र अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आसुरीने उस ही मुनिमण्डलीके बीच उस अव्यय पुरुषको जाना था। पञ्चशिख उस ही आसुरीके शिष्य थे वह किसी मानुषीका दूध पीकर वर्द्धित हुए थे कपिलानाम्नी कोई कुटम्बिनी ब्राह्मणी थी, वह उसहीका पुत्रत्व स्वीकार करके उसके स्तनका दूध पीते थे, उसहीसे उनका कापिलेय नाम हुआ और उन्होंने नैष्टिकी बुद्धि लाभकी। भगवान् मारकण्डेयने इसही प्रकार मेरे समीप उनकी उत्पत्ति, कापिलेय नामका कारण और असाधारण सर्व्वज्ञत्वका विषय कहा था। धर्म्मज्ञ पञ्चशिखने परमश्रेष्ठ ज्ञानलाभ करके मिथिलाधिपतिके आचार्य्योंकी समबुद्धि जानके

युक्तिधाराकी वर्षाके सहारे सैकड़ों आचार्य्योंको मोहित किया। राजा कापिलेयको देखनेसे ही उनपर भक्तिके कारण अनुरक्त होकर पूर्व्वोक्त आचार्य्योंकी परित्याग करके उनहीके अनुगामी हुए, कपिलापुत्र पञ्च इन्द्रियोंके प्रवाहयुक्त मनोनिग्रहमें निष्ठावान थे; पञ्चरात्रनाम विष्णुत्व प्रापक यज्ञ विषयके जाननेवाले थे अर्थात् समस्त कर्म्मोंका अनुष्ठान किया था। अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोषके विषयको विशेष रूपसे जानते थे, अन्नमय आदि पञ्चकोषोंके आश्रय आत्माकी उपासना करते थे; शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और सावधान होकर आत्मासे ही आत्माका दर्शन करते थे; इसीसे शान्त आदि पञ्चगुणोंसे युक्त थे; इसहीसे वह पञ्चशिख नामसे प्रसिद्ध हुए।

जनक बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! लोक और वेदमें प्रसिद्ध जो अद्वितीय अविनाशी ब्रह्म अनेक रूपसे दीखता है, आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये, आपने ही उसे यथार्थ रूपसे जाना है।

भीष्म बोले, महर्षि पञ्चशिख धर्म्मपूर्व्वक विनययुक्त और तत्त्व ज्ञानके उपदेश धारण करनेमें अत्यन्त समर्थ उस मिथिलापतिसे सांख्य शास्त्रमें कहे हुए परम मोक्षका विषय कहने लगे; उन्होंने पहले उनके समीप जन्म विषयक सब दोषोंको प्रदर्शित करके यागादि कर्म्मोंके दोष कहे और यागादि कर्म्मोंके दोष कहके ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब लोकोंके दोष वर्णन किये। जिसके लिये कर्म्मकी सृष्टि और सब कर्म्मोंके फलकी आकांक्षा होती है, वह अविश्वसनीय मोह विनाशी अस्थिर और सत् वा असत् रूपसे निश्चित नहीं है, यह भी कहा।

लोकायत नास्तिकोंका यह मत है, कि सर्व्वलोकसाक्षी देहरूपी आत्माका नाश प्रत्यक्ष दीखने पर भी शास्त्र प्रमाणके कारण देहसे पृथक् आत्मा है, ऐसा जो वादी कहा करता है, वह पराजित होता है। आत्माका मृत्यु स्वरूप नाश और दुःख जरा रोग आदिसे आंशिक नाश है; जैसे गृहके निर्म्मल अवयवोंके धीरे धीरे नष्ट होनेपर गृह नष्ट होता है, वैसेही इन्द्रिय आदिके विनाशके जरिये शरीरकाही नाश हुआ करता है। ऐसा होने पर भी जो लोग मोहके वशमें होकर आत्माको देहसे पृथक् अन्य पदार्थ समझते हैं, उन लोगोंका मत समीचीन नहीं है। 'लोकमें जो नहीं है' यह यदि सिद्ध हो, तो बन्दीगण जो राजाको अजर अमर कहके स्तुति किया करते हैं, वह भी सिद्ध हो सकता है। असत् पदार्थ है, वा नहीं, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर मनुष्य कौनसा कारण अवलम्बन करके लोकयात्राका निश्चय करेगा? अनुमान और शास्त्र-प्रमाणका मूल प्रत्यक्ष है, उस प्रत्यक्षके जरिये शास्त्र बाधित हुआ करता है और अनुमान तुच्छ प्रमाण है; देहसे पृथक् स्वतन्त्र आत्मा नहीं है; इस विषयकी चिन्ता करनी वृथा है, नास्तिकोंके मतमें जीव शरीरसे स्वतन्त्र नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, इन चारों भूतोंका संयोग होने पर जैसे बट-बीजके क्षुद्र भागके बीच पत्ते, फूल, फल, छाल, रूप और रस आदि अन्तर्हित रहते हैं, वैसेही रेत "वीर्य्य" के बीच मन, बुद्धि, अहंकार चित्त, शरीरका रूप और गुण आदि अन्तर्हित रहके उत्पन्न होते हैं, अथवा जैसे एक मात्र गोभुक्त तृणोदकसे विभिन्न स्वभाव दूध और घी उत्पन्न होता है, अथवा अनेक वस्तुओंसे मिला हुआ कल्कको दो तीन रात्रि पकने पर जैसे उसमेंसे मदशक्ति उत्पन्न हुआ करती है, वैसेही पहले कहे हुए चारों तत्त्वोंके संयोगसे रेतसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे दो काष्ठोंके घिसनेसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही चारों भूतोंके संयोगसे उसका प्रकाशक चैतन्य जन्म ग्रहण किया

करता है। जड़ पदार्थोंसे चैतन्यकी उत्पत्ति असम्भव नहीं है, तार्किक मतसे आत्मा और मन जड़ होने पर भी दोनोंके संयोगके कारण जैसे स्मरणादि रूप ज्ञान उत्पन्न होता है, इस विषयमें भी वही प्रमाण है। जैसे अयस्कान्त-मणि लोहेको आकर्षण करती है, वैसेही उक्त रूपसे उत्पन्न हुआ चैतन्य इन्द्रियोंको चलाया करता है। जैसे सूर्य्यकान्तके संयोगद्वारा सूर्य्य किरणसे अग्नि प्रकट होती है, वैसेही भोक्तृत्व और अग्निका जलशोषकत्व संघातके जरियेही सिद्ध होता है; इसलिये देहसे पृथक जीव नहीं है, यह युक्तिसङ्गत है। लोकायत नास्तिकोंका जो युक्तियुक्त मत वर्णित हुआ, वह अत्यन्त दूषित है, क्यों कि शरीरके मृत होने पर भी आत्माका विनाश नहीं होता; देहसे अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें यही प्रमाण है, कि यदि देह चेतन हो, तो मृत शरीरमें भी चैतन्यकी प्राप्ति हो सकती है, जब कि ऐसा नहीं दीखता है, तब चैतन्य अवश्यही देह धर्म्म नहीं है। जिसके वर्त्तमान् रहनेसे शरीर नष्ट नहीं होता और जिसके न रहने पर देह नष्ट होता है, वह अवश्यही शरीरसे स्वतन्त्र है; और लोका-यत नास्तिक लोग शीत, ज्वरकी निवृत्तिके लिये मन्त्रप्रतिपाद्य देवताके निकट प्रार्थना किया करते हैं, वह देवता यदि भूतमयी हो, तो घट पट आदिकी तरह दृष्टिगोचर होसके, परन्तु लोकान्तर गमन करने योग्य सूक्ष्म शरीरको स्वीकार न करनेसे उनके मतमें देव-ताकी सिद्धिही सम्भव नहीं है। इसके अति-रिक्त जिस समय जो शरीर भूतान्तरमें आविष्ट होता है, उस समय उस शरीरकी पीड़ासे देहका मुख्य अधिष्ठाता पीड़ित नहीं होता; परन्तु जो आविष्ट हुआ है, उसीही उस देहके अभिमान निबन्धनसे पीड़ा हुआ करती है; अविष्टके अपगमसे मुख्य शरीरही वाधित होता है; इसलिये दृष्ट-विरोधके कारण देहको आत्मा नहीं कहा जाता; मृत होनेपर कर्म्मकी निवृत्ति होती है, इससे कृत कर्म्मोंका नाश और अकृत कर्म्मोंके आगमरूप दोषको विशिष्ट रूपसे स्वीकार करना होता है, अर्थात् जिस शरीरसे जो दोष करता है उस देहके नष्ट होनेपर उसके किये हुए कर्म्म भी नष्ट होते हैं, और नवीन शरीर उत्पन्न होनेपर अकृत कर्म्मोंका फल भोग हुआ करता है, इससे लौकायतिक मत अत्यन्तही युक्तिविगर्हित है। मूर्त्त पदार्थसे अमूर्त्त ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे पृथ्वी आदि चारों भूतोंसे आकाशकी उत्पत्ति होसकती है; इसलिये अमूर्त्तके सहित मूर्त्तकी सदृशता कभी सम्भव नहीं है।

सौगत-मतावलम्बी नास्तिक लोग अविद्या, कर्म्म, वासना, लोभ, मोह और दोषनिसेवणको पुनर्ज्जन्मका कारण कहा करते हैं। वे लोग लोकायत नास्तिकोंके अभिमत चारों भूतोंके वाह्यसङ्घातसे आध्यात्मिक सङ्घातरूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा संस्काराख्या पञ्चस्कन्धात्मक ऐहिक और पारलौकिक व्यवहारास्पद जीव स्वीकार करते हैं; इसलिये उनके मतमें देहके नाशसेही आत्म विनाशरूप दोषकी सम्भावना नहीं है। यद्यपि ये लोग दूसरेकी तरह स्थिर भोक्ता वा प्रशासिता चेतन स्वीकार नहीं करते हैं, तोभी अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षड़ायतन अर्थात् चित्तका आश्रय शरीर, स्पर्श, पीड़ा, तृष्णा, उपादान, जन्म, जाति, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेवना, दुःख और मनस्ताप, इन अठारहों दोषोंको कभी कभी संक्षेपसे कभी विस्तारके सहित वर्णन किया करते हैं। ये लोग घटाय-न्त्रकी भांति आवर्त्तमान होकर सङ्घातको स्वाश्र यत्व रूपसे अधिक्षेप करते हैं; उसही सङ्घातो-त्पत्तिके कारण लोकयात्रा निर्व्वाह होनेसे स्थिर आत्माकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। उनके मतमें पूर्व्वकृत कर्म्म और तृष्णाजननस्नेह, अविद्या क्षेत्र शरीरके वार वार उत्पत्तिका

बीज और कारण रूपसे वर्णित हुआ है। उस अविद्या आदि कलापके सुषुप्ति प्रलयके संस्कार-स्वरूपमें निमित्तभूत होके स्थिति करने और एकमात्र मरण धर्म्मयुक्त देहके जलने वा नष्ट होनेपर अविद्या आदिसे दूसरा शरीर उत्पन्न होता है, सौगत लोग इसेही सत्संचय अर्थात् मोक्ष कहा करते हैं।

इस विषयमें यही आपत्ति है, कि मुक्ति होनेपर भी क्षणिक विज्ञान आदिके स्वरूप, जाति, पाप-पुण्य और बन्ध मोक्षसे जबकि पृथकत्व होता है, तब किस प्रकार इस विज्ञानसे वह विज्ञान प्रत्यभिज्ञान होसकता है। एक पुरुष मुमुक्षु, दूसरा साधनाविष्ट है और अन्यपुरुष मुक्त हुआ, यह अत्यन्त ही असंगत वचन है। ऐसा होनेसे दान, विद्या, तपस्या और बलके निमित्त लोगोंकी प्रवृत्ति न होती; क्यों कि एक पुरुषके दानादि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेपर फल भोगके समय उसके अभावमें दूसरे फल भोग करने लगे यह कभी सम्भव नहीं है। यह सम्भव होनेसे एकके पुण्यसे दूसरे सुखी और दूसरेके पापसे अन्य पुरुष दुःखी हो सकते हैं; इसलिये ऐसे दृश्य विषयोंके जरिये अदृश्य विषयोंका निर्णय करना युक्तिसंगत नहीं होता है। एकका ज्ञान दूसरेके ज्ञानके समान नहीं होता; इसलिये जिसमें वैनाशकके जरिये ये सब दोष उत्पन्न न हों, उसके लिये यदि क्षणिक विज्ञानवादी नास्तिक लोग ज्ञानधाराकी स्वजातीयता कहनेकी इच्छा करें, तब उत्पाद्यमान सदृश ज्ञानका उपादान क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले ज्ञानको वे लोग सिद्धान्त पक्षमें निक्षेप करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्यों कि उन लोगोंके मनमें ज्ञानका क्षणिकत्व निबन्धन उत्तर ज्ञानके उत्पादन विषयमें समर्थ नहीं है। यदि उस ज्ञानकाही नाश हो, तो मूषलके जरिये नष्ट हुए शरीरसे दूसरा शरीर उत्पन्न होसके। ऋतु, सम्वत्सर, युग सर्दी, गर्म्मी प्रिय और अप्रिय आदि जैसे अतीत होके फिर उत्पन्न होते देखे जाते हैं, वैसेही ज्ञानधाराकी अनन्तताके कारण ऋतु आदिकी भांति मोक्ष बार बार आगत और निवृत्त होती है, इसलिये क्षणिक-विज्ञानवाद अनेक दोषोंसे ग्रस्त होनेसे युक्तिसंगत नहीं हैं। जरा और मृत्युके जरिये आक्रान्त अनित्य धर्म्माश्रय दुर्ब्बल शरीर गृहकी भांति नष्ट होता है।

इन्द्रियां, मन, प्राण, मांस, रुधिर, हड्डी आदि आनुपूर्व्विक नष्ट और असम्मिलित हुआ करती हैं, लोकयात्रामें व्याघात और दानधर्म्मादि फलकी अप्राप्ति होनेपर उसही कारणसे आत्म-सुखार्थ सब लौकिक और वैदिक व्यवहार भी नष्ट होते हैं। मनमें अनेक प्रकारके तर्क उत्पन्न हुआ करते हैं; तर्क उत्पन्न होनेपर युक्तिके सहारे देहसे पृथक् दूसरा कौन आत्मरूपसे निर्द्धारण किया जासकता है। जो लोग अभिनिवेश-पूर्व्वक विचार करते हैं, उनकी बुद्धि किसी अनिर्व्वचनीय वस्तुमें निविष्ट होती है, निविष्ट होनेपर उसमें ही वृक्षकी तरह जीर्ण हुआ करती है। इसही प्रकार इष्ट और अनिष्टके जरिये सब जन्तु ही दुःखित होरहे हैं। जैसे हाथीवान हाथियोंको आकर्षण करता है, वैसे ही दुःखोपहत जीवसमूह शास्त्रके जरिये वशीभूत हुआ करते हैं। बहुतेरे मनुष्य अत्यन्त सुखयुक्त विषयोंको अभिलाष करके शुष्क होते हैं; अन्तमें महत् दुःख भोगते हुए विषय परित्याग करके मृत्युके वशमें हुआ करते हैं। जिसका अवश्य ही विनाश होगा और जीवनका निश्चय नहीं है, उसे बन्धु बान्धव और विभिन्न परिवार समूहका क्या प्रयोजन है। जो सबको परित्याग करके गमन करते हैं, वे क्षणकालके बीच लोकान्तरमें पहुंचके फिर दूसरी बार नहीं लौटते। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु, ये पञ्चभूत सदा शरीरका प्रतिपालन करते हैं; इसलिये इस पञ्चभूतात्मक शरीरके तत्वकी

जाननेसे किसमें अनुराग होगा? इस विनाशी शरीरमें तनिक भी सुख नहीं है। राजा जनदेवने यह भ्रम प्रमादसे रहित अकपट आत्मसाक्षी वचन सुनके विस्मययुक्त होकर फिर पूर्व्वपक्ष करनेकी इच्छा की।

२१८ अध्याय समाप्त।

---

भीष्म बोले, जनकवंशीय जनदेवने पञ्चशिखका वचन सुनके मरनेके अनन्तर फिर जन्म और मोक्ष होती है वा नहीं। फिर उस विषयमें प्रश्न किया।

जनकदेव बोले, हे भगवन्! यदि मरनेके बाद किसीको सुषुप्ति वा मूर्च्छावस्थाकी तरह विशेष विज्ञान न रहे, तो ज्ञान वा अज्ञानमें कुछ विशेष नहीं रह सकता। हे दिजोत्तम! देखिये यम और नियम आदि सभी आत्मनाश पर्य्यवशायी अर्थात् आत्मनाश होनेसेही सब नियमादि नष्ट हुआ करते हैं; इसलिये चाहे मनुष्य प्रमत्त हो वा अप्रमत्त हो हो, उसमें विशेष क्या है। मोक्ष होनेसे यदि दिव्याङ्गना आदिका सन्सर्ग होनेपर भी वह स्वर्गादिकी तरह विनाशी हो, तब किस निमित्त कर्म्म करे और क्रियमाण कार्य्यकी घटना ही किस प्रकार होगी, इस विषयमें यथार्थ रूपसे क्या निश्चय है।

भीष्म बोले, अतिक्रान्तदर्शी महर्षि पञ्चशिखने अज्ञानाच्छन्न विभ्रान्त आतुरकी भांति राजाको फिर वचनसे धीरज देके कहने लगे। इस सन्सारमें देह नाश होनेसेही पर्य्यवसान नहीं होता और देह विशेषके नाश होनेसे जो शेष हुआ, वह भी नहीं है; परन्तु अविद्याके सहारे आत्मामें आरोपित बुद्धि और इन्द्रिय आदि केवल रस्सीमें सर्पभ्रमकी तरह मालूम होती है, ऐसे अनर्थकी निवृत्ति और कण्ठमें पड़े हुए बिस्मृत कण्ठहारकी भांति स्वरूपानन्दकी प्राप्ति होनेसे ही कृत कृत्यता हुआ करती है। यह प्रत्यक्ष दृश्यमान् देह इन्द्रियों और चित्तके मिलनजनित सङ्घातसे एक दूसरेका आश्रय करके कार्य्यमें वर्त्तमान रहता है। जिसमें सब कार्य्य लीन होते हैं, उसे उपादान कहते हैं, वह उपादान पांच प्रकारका है; जल, आकाश, अग्नि, वायु और पृथ्वी; सांख्य मतके अनुसार ये पांचो उपादान स्वभावसे ही स्थिति करते हैं और स्वभावसे ही पृथक् हो जाते हैं। ये आकाश आदि पांचो उपादान संयुक्त होकर शरीराकारसे परिणत हुआ करते हैं, अर्थात् शरीरके अन्तर्गत जो आकाशका भाग है वही आकाश है; जो प्राण है, वही वायु है; जो उष्मा है, वही अग्नि है, जो रक्तरस आदि स्नेहवत् पदार्थ हैं, वही जल और जो अस्थि आदि कठोर पदार्थ हैं, वही पार्थिव अंश हैं; यह शरीर जरायुज आदि भेदोंसे अनेक प्रकारका है। ज्ञान, जठराग्नि और प्राण ये त्रिविध-पदार्थ सर्व्वकर्म्म संग्राहक हैं; इन्द्रिय और इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषय प्रकाशक स्वभाव-विशिष्ट हैं, घटाकार वृत्ति चेतनाही संकल्पादि रूप मन है, यही ज्ञानके कार्य्य हैं, वायुके कार्य्य प्राण आदि पञ्चवायु हैं, खाने और पीनेकी वस्तुओंको परिपाकके जरिये इन्द्रियादिका उपचय करना जठराग्निका कार्य्य है। इससे ज्ञान, अग्नि और वायुसे इन्द्रिय आदि प्रकट हुई हैं। कान, त्वचा, जीभ, नेत्र और नासिका, ये पांचो इन्द्रिय चित्तगत गुण लाभ किया करती हैं। सुख, दुःख, सुखाभाव और दुःखाभाव स्वरूपोंसे विज्ञानयुक्त चेतनावृत्ति विषयोंकी उपादेयत्व, हेयत्व और उपेक्षणीयत्व भेदसे तीन प्रकारकी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांचो विषय मूर्त्तिके सहित संयुक्त होकर मृत्यु काल पर्य्यन्त ज्ञान सिद्धिके निमित्त षड्-विषय कहके प्रसिद्ध हुआ करते हैं। कान आदि इन्द्रियोंसे सम्प्राप्त निबन्धनसे जिन सब विषयोंमें अर्थ निश्चय होता है, उसीको पण्डित

लोग मोक्षका बीज और मोक्षप्रदत्व हेतु अव्यय महत् बुद्धि कहा करते हैं। इन आत्मातिरिक्त विषयोंको जो लोग आत्मभावसे देखते हैं, उनका असम्यक दर्शनसे अनन्त दुःख शान्त नहीं होता "यही" इत्यादि रूपसे जो दीखता है, वह आत्मा नहीं है, क्यों कि दृश्य वस्तु कभी द्रष्टाकी आत्मा नहीं होसकती। इस कारण 'मैं और मेरा' इत्यादि वचन भी सिद्ध नहीं होते; तब अहंकार देहेन्द्रिय आदि जो आत्मामें अभेद रूपसे मालूम होती हैं, वह सीपमें रौप्यबुद्धिके समान भ्रम मात्र है। "यही मैं अन्धा हूं, मैं गोर वर्ण हूं" इत्यादि वचनमें जब आत्माका सम्बन्ध नहीं है, तब "मेरे पुत्र, मेरीस्त्री।," ये सब वचन भी मिथ्या हैं; इसलिये जो दुःखसन्तति मालूम होरही है, उसका अवलम्ब क्या है, क्यों कि आत्मा असङ्ग और अहंकार मिथ्या है, इससे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भांति निरधिष्ठान दुःखसन्तति भी अवश्यही अहङ्कारकी तरह सत्य नहीं है; अब जो वक्ष्यमाण त्याग प्रधान शास्त्र तुम्हारे मुक्ति विषयमें निमित्त होगा, वह परमश्रेष्ठ सांख्यशास्त्र सुनो। मुक्तिके लिये सदा उद्यत पुरुषोंको सब कर्म्म और विभव आदिको परित्याग करनाही नित्यकर्म्म है, और जो लोग त्यागको स्वीकार न करके शान्तिपरायण होते हैं, पण्डित लोग उन लोगोंके अविद्या आदि क्लेशोंका दुःखदायक समझते हैं। सुखकी सामग्रियोंको परित्याग करनेसे सब कर्म्म सिद्ध होते हैं, भोग त्याग करनेसे व्रतकी सिद्धि हुआ करती है, सुख त्याग करनेसे तपस्या और योग उपदेश प्राप्त हो सकता है, और समस्त परित्याग करनेसे त्यागकी पराकाष्ठा हुई। दुःखोंको नाश करनेके लिये उस सर्व्वत्यागका ईश्वरहित मार्ग प्रदर्शित होता है। त्याग स्वीकार न करनेसे दुर्गति हुआ करती है। बुद्धिमें विद्यमान मनके सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका विषय कहके प्राणके सहित पञ्च कर्म्मेन्द्रियोंका विषय कहता हूं।

दोनों हाथ कर्म्मेन्द्रिय, दोनों पाव गमनेन्द्रिय और शिश्न सन्तानोत्पादन तथा आनन्द जननेन्द्रिय, वायु पुरीष (मल) परित्याग आदिकी इन्द्रिय और वाक्य शब्दविशेष उच्चारणकी इन्द्रिय है, मन इन पांचो कर्म्मेन्द्रियोंमें संयुक्त है। इस ही प्रकार मनके सहित कर्म्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों इन ग्यारहोंको बुद्धिके सहारे शीघ्रही परित्याग करे; मनको परित्याग कर सकनेसे ही विषययुक्त कर्म्मेन्द्रियों परित्यक्त होती हैं; और बुद्धिको परित्याग करनेसे ही मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंका परित्याग सिद्ध हुआ करता है। शब्द क्रियाको सिद्ध करनेके लिये दोनों कान कारण, शब्द विषय और चित्त कर्त्ता रूपसे कहा जाता है; स्पर्श, रूप, रस और गन्धका विषय भी इसही प्रकार है। इसी भांति शब्दादि विषयोंकी अभिव्यक्तिके लिये सत्व आदि तीनों गुण, सब विषय और कारणको समनस्क करे, जो अनुभवको अभिव्यक्तिके निमित्त सात्विक राजसिक और तामसिक भाव पर्य्यायक्रमसे उपस्थित होते हैं, वह अनुभव ही प्रहर्ष आदि सब सात्विक प्रभृति कार्य्योंका साधन किया करता है। प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और शान्त-चित्तता, ये सब सात्विक गुण वैराग्यके कारण वा स्वाभाविक ही चित्तसे उत्पन्न होते हैं। असन्तोष, परिताप, शोक, लोभ और क्षमाहीनता, ये सब रजोगुणके चिह्न हैं, कभी कारणसे और कभी बिना कारणके ही दिखाई देते हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और तन्द्रा आदि विविध तामसगुण कारण वा बिना कारणके ही वर्त्तमान रहते हैं। जो शरीर और मनको प्रीतियुक्त करे, उसेही सात्विक गुण समझना चाहिये। जो विषय आत्माके असन्तोष और अप्रीतिकर हैं, उन्हें ही रजोगुणसे उत्पन्न हुए समझना चाहिये, और शरीर वा मनसे जो मोहयुक्त होके मालूम होता है, उसेही अवितर्क और अविज्ञेय तमोगुणका

कार्य्य निश्चय करे। आकाशके आश्रित श्रोत्र आकाशसे भिन्न नहीं हैं और श्रोत्राश्रित शब्द भी परस्परके सम्बन्धसे आकाशसे स्वतन्त्र नहीं होसकता, जब ऐसा हुआ, तब शब्दज्ञान होनेपर आकाश और श्रोत्र ये दोनों ही विज्ञानके विषय नहीं होते, क्यों कि जिसे शब्दज्ञान होता है, उसे शब्दज्ञानके समयमेंही श्रोत्र और आकाश विषयका ज्ञान समान नहीं होसकता, इससे ऐसा निश्चय नहीं है, कि श्रोत्र और आकाश अज्ञात ही रहे। एकका विज्ञान होनेसे दूसरेका ज्ञान नहीं होता, यह वचन कभी की युक्तिसङ्गत नहीं है। श्रोत्र और आकाशसे शब्द कभी स्वतन्त्र नहीं होसकता। इसलिये श्रोत्रादिके प्रविलापनसे शब्द और आकाश आदिका प्रविलापन युक्तियुक्त है; शब्द और आकाशादि स्मरणात्मक चित्त स्वरूप है; चित्त भी अव्यवसायात्मक मनसे भिन्न नहीं, इसलिये मनके लग्न होनेसे सभी लीन होते हैं। इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा नासिका, स्पर्श, रूप, रस और गन्धके सहित अभिन्न होकर चित्तभी मनःस्वरूप होता है; मनके लय होनेसे ये सब लीन होते हैं। इन्द्रियोंके विषय सुनना, छूना, देखना आदि कार्य्य एक समयमें ही सिद्ध होनेसे पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्म्मेन्द्रिय, इन दशोंके अनुगत मन ग्यारहवां होकर स्थिति करता है और बुद्धि ऊपर कही हुई दशों इन्द्रिय तथा ग्यारहवें मनको अनुगत होकर बारहवें रूपसे निवास किया करती है, जो लोग यह अङ्गीकार करते हैं, कि एक समयमें अनेक ज्ञान नहीं होता, उनका अनुभव युक्तिविरुद्ध है; क्यों कि गङ्गाजलमें शरीरका अर्द्धभाग डूबनेपर आधेहिस्से में सूर्य्यकिरणकी गर्म्मी और आधे भागमें शीतलता दोनों ही स्पष्ट मालूम होती हैं। प्रागुक्त पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्म्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि इन बारहोंको युगपत् भाव न होनेपर भी निन्द्रा रूप तमोमय सुषुप्ति-कालमें भी आत्माका नाश नहीं है, आत्माका अयोगपद्य ही वास्तवत्व है, युगपद्भाव केवल सपनेकी भांति भ्रानकृत है; इसलिये आत्माका जो युगपद्भाव है, वह लौकिक व्यवहार मात्र है। पारलौकिक नहीं है, स्वप्नदर्शी पुरुष पूर्व्वानुभव बासनासे सूक्ष्म इन्द्रियोंके विषय सङ्गतकी चिन्ता करते हुए सत, रज और तमोगुणसे युक्त होकर कामनाके अनुसार निज शरीरमें विचरते हैं। जो तमोगुणसे अभिभूत और जो प्रवृत्ति प्रकाशात्मक आत्माको शीघ्र ही संहार करके पहले कहे हुए युगपद्भावकी अनिश्चित नाश करता है, पण्डित लोग उसेही तामससुख कहा करते हैं। वह अज्ञान प्रधान तामससुख इस शरीरमेंही सुषुप्तिकालमें मालूम हुआ करता है; जो सुख आनन्द स्वरूप परब्रह्म इत्यादि वेदवोधित रूपसे विख्यात् है उससें तनिक भी द्वैत सुख न दीख पड़ने और अव्यक्त अनृत तमोगुणकी सत्ता न रहनेपर भी उसका अस्तित्व उपपन्न होता है। इन अहंकार आदिकोंको घटपट पर्य्यन्त दृश्यमान भोग्य वस्तुओंके निज कर्म्मके कारण उत्पत्ति प्रख्यात् हुआ करती है। कोई कोई अविद्यायुक्त पुरुषोंका अज्ञान वज्रपञ्जरकी तरह वर्द्धित होता है, और कोई कोई विद्वान् पुरुषोंके समीप वह अज्ञान तीनों कालमें भी आगमन करनेमें समर्थ नहीं होता। अध्यात्म विचारमें तत्पर पण्डित लोग संघात बीजभूत मनके बीच जो सत्ता है, उसे ही चैतन्य कहा करते हैं। अनादि अविद्या कर्म्मसे सत्य और मिथ्याका आत्म और आत्मभिन्न एकत्रीकरण निबन्धन व्यवहारमें वर्त्तमान चतुर्व्विध भूतोंके बीच शाश्वत आत्मा किस प्रकार नाशयुक्त होसकता है। आत्मा सर्व्वव्यापी नित्य पदार्थ है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता; इसलिये पहिले जो आत्माके नाश विषयमें शङ्का हुई थी उसका कोई अवलम्बन नहीं है। जैसे

नद और नदियें समुद्रमें मिलकर अपने नाम और रूपको त्यागके सागर जलमें लीन होती हैं, वैसेही महदादि घटपट पर्य्यन्त वाह्य वस्तु रूपी सब स्थूल पदार्थ उत्पत्तिकी विपरीतताके अनुसार सूक्ष्मभूतोंमें लयको प्राप्त हुआ करते हैं, और सूक्ष्मभूत विगुण कारण स्वरूपमें लीन होते हैं, इसीको सत्वसंचय कहा जाता है। इसही प्रकार देहरूप उपाधियुक्त जीव सब तरहसे आइनेके सुखको भांति ग्रहमाण होने पर और उपाधिके नष्ट होनेपर उसका किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं होसकता, और ज्ञान न होने पर भी जैसे दर्पणके अभावसे सुखका नाश नहीं होता, वैसेही उपाधिके न रहनेपर भी आत्माके नाशकी शङ्का करनी किसी प्रकार भी सम्भावित नहीं है। जो अप्रमत्त होकर इसी प्रकार मुक्तिका उपाय अवलम्बन करके आत्मध्यानमें तत्पर होते हैं, वे जलसे भोंगे हुए कमलपत्रके समान अनिष्टकारी कर्म्म फलोंसे लिप्त नहीं होते। जो अपत्य स्नेह और दैवीकर्म्म निमित्त अनेक प्रकारके दृढ़ पाशोंसे मुक्त हुए हैं, वे जिस समय सुख दुःख परित्याग करते हैं, उस समय पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय इन सत्तरह अवयवात्मक लिङ्ग शरीरसे रहित होते तथा मुक्त होकर परम गति पाते हैं। मनुष्य श्रुति प्रमाण "तत्त्वमसि" वाक्य और वेद शास्त्रोंमें कहे हुए मङ्गल साधन समदम आदिके सहारे जरा मृत्युके भयसे रहित होकर निवास करते हैं। पुण्य और पाप तथा मोहका कारण सुख दुःख नष्ट होनेपर आसक्ति रहित साधक लोग हृदयाकाशमें स्थित सगुण ब्रह्मको अवलम्बन करके अन्तमें निरवयव निर्लिप्त आत्माको अक्षितामात्र बुद्धि तलसे देखते हैं। जैसे उर्णनाभि कीट ततुमय गृहमें वर्त्तमान रहके निवास करता है, वैसेही अविद्याके वशीभूत जीव कर्म्म ततुमय गृहमें वास किया करते हैं। जैसे पांशुपिण्ड वेगपूर्व्वक पत्थरपर गिरनेसे चूर होजाता है, उसही प्रकार जीव मुक्त होके दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे रुरु नाम हरिन विशेष पुराने सींगोंको त्यागके और सर्प निज केंचुली परित्याग करके अलक्षित भावसे गमन करते हैं, वैसेही जीव मुक्त होकर दुःखोंको परित्याग किया करता है। जैसे जलमें गिरे हुए वृक्षको परित्याग करके पक्षी असक्त होके उड़ जाते हैं, वैसेही जीव सुख दुःखको परित्याग करते हुए लिङ्ग शरीरसे रहित और विमुक्त होकर परम गति लाभ कियाकरता है, मिथिलाधिपति जनकने सारे नगरको जलते हुए देखकर कहा था, कि इस अग्निदाहसे मेरा कुछ भी नहीं जलता है। राजा जनदेवने पञ्चशिख आचार्य्यके कहे हुए अमृत समान वचनको सुनकर सबको पर्य्यालोचना करके अर्थ निश्चय करते हुए परम सुखी और शोकरहित होकर विहार किया था। हे महाराज! जो लोग इस मोक्ष निश्चय विषयका सदा पाठ और अर्थके अनुसार पर्य्यालोचना करते हैं वह दुःखसे रहित होते और किसी उपद्रवको अनुभव नहीं करते और जैसे जनकवंशीय जनदेव पञ्चशिख आचार्य्यके शरणागत होकर मुक्त हुए थे, इस मोक्ष निश्चय विषयको पर्य्यालोचना करनेवाले पुरुष भी उस ही प्रकार मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

२१९ अध्याय समाप्त।

---

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! इस लोकमें मनुष्य किन कर्म्मोंके करनेसे सुखलाभ करता है। किन कर्म्मोंको करनेसे दुःखभागी होता और किस प्रकारके कर्म्मोंको करते हुए सिद्ध पुरुषोंकी तरह निर्भय होकर विचरता है?

भीष्म बोले, वेददर्शी वृद्ध लोग वाह्येन्द्रिय निग्रहरूपी दमगुणको ही प्रशंसा किया करते